ओ३म्

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण क्रमांक ..
4019

वैदिक सिद्धान्त दयानन्द महिला महा

व्याख्यानमाला

व्याख्याता :

श्री स्वामी नित्यानन्दजी सरस्वती

डा०
सम्पादक :
उमाकान्त उपाध्याय
विषय
दिनांक

प्रकाशक :
राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल,
मंत्री आर्य समाज कलकत्ता
१६, विधान सरणी, कलकत्ता-६

मूल्य सात रुपये

मुद्रक :
एसोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स
७/२, बीडन रो
कलकत्ता-७०००० ६

ओ३म्

'आर्य संसार' का वार्षिक विशेषांक अपने सहृदय पाठकों के हाथों में समर्पित करते हुए प्रसन्नता होती है, सन्तोष होता है। कई सारी कठिनाइयों के रहते हुए भी यह अंक सुन्दर रूप में प्रकाशित हो गया, प्रभु को कोटिशः धन्यवाद।

"आर्य समाज कलकत्ता" के अधिकारियों ने कई वर्ष पूर्व यह निर्णय लिया था कि वे आर्य समाज कलकत्ता के वार्षिकोत्सव के अवसर पर कोई स्थायी दुर्लभ साहित्य 'आर्यसंसार' के वार्षिक विशेषांक के रूप में अपने पाठकों, दानदाताओं, सहयोगियों को भेंट करेंगे। इस क्रम में दर्जनों दुर्लभ सुन्दर साहित्य हम अब तक भेंट कर चुके हैं। इस वर्ष का विशेषांक स्वा० नित्यानन्द जी सरस्वती की व्याख्यानमाला है। स्व० स्वामी जी अद्भुत पण्डित, वक्ता एवं विचारक थे। ये व्याख्यान आर्य समाज के आरम्भिक दिनों के हैं। उस समय की परिस्थिति और व्याख्यान-विषयों का अच्छा परिचय मिलता है। कई व्याख्यान स्थायी महत्व के हैं और आज के सन्दर्भ में भी उपयोगी हैं।

इस अंकके प्रकाशन के लिये एसोशियेटेड आर्ट प्रिन्टर्स' के सहयोगियों श्री राजकुमार मल्लिक एवं श्री चन्द्रकान्त झा का हम धन्यवाद करते हैं।

हमारे कृपालु पाठक इस व्याख्यानमाला के स्वाध्याय से पर्याप्त लाभान्वित होंगे, इस आशा एवं विश्वास के साथ यह अंक आपकी सेवा में समर्पित है।

उमाकान्त उपाध्याय

विषय सूची

	विषय	पृष्ठ
१	जीवात्मा	५
२	मनुष्य जन्मकी सफलता	१७
३	मानव ज्ञान स्रोत	२६
४	ईश्वरोपासना	४२
५	वैदिक धर्म पर पुराणोंका परिणाम	५६
६	देशाटन—विदेशगमन	६४
७	क्षत्रिय धर्म	१००
८	वेद स्वतः और अपौरुषेय सम्बन्धी विचार	१०५
९	वेदशास्त्रानुसार विवाहका समय	१२१
१०	विधवा विवाह शास्त्र सम्मत है वा नहीं	१४१
११	संस्कृत भाषाकी आवश्यकता	१६२
१२	संसारकी विचित्र गति	१६५
१३	आर्यसमाज क्या है	१७१
१४	ईश्वरावतार	१७६
१५	मूर्तिपूजा वेदिक तथा युक्तिसिद्ध नहीं हैं	१८२
१६	मनष्यका कर्त्तव्य	६६

॥ ओ३म् ॥

स्वामी नित्यानन्दजीका संक्षिप्त परिचय

स्वामी श्री नित्यानन्द जी का जन्म सम्बत् १९१७ विक्रमी में जोधपुर राज्यान्तर्गत जालोर नामक ग्राम में गुजराती श्रीमाली ब्राह्मण श्री पं० पुरुषोत्तम जी के घर माता श्री कृष्णाबाई के गर्भ से हुआ।

स्वामीजी का जन्म नाम रामदत्त था, स्वामीजी के अन्य तीन भाई और दो बहनें भी थीं। स्वामीजी के पिता साधारण तौर पर उत्तम स्थिति के गृहस्थ थे। स्वामीजीके बड़े भाई जिनका नाम शिवराम था वकील थे। स्वामीजीके पिता विद्वान् पुरुष थे। सम्बत् १९२९ में ५३ वर्षकी अवस्था में उनका देहान्त हुआ। पिता के देहान्त के बाद समस्त कुटुम्ब अहमदाबाद आ बसा। १७ वर्ष की अवस्था में स्वामीजी आगे के लिये विद्याभ्यासका कारण बनाकर घरसे निकल पड़े। इसके बाद बहुत समय तक फिर वे घर लौट कर नहीं गये।

घर से चल कर स्वामीजी अहमदाबाद, बम्बई, पूना, सितारा, गोदाबरी इत्यादि स्थानों का भ्रमण करते हुए काशी पहुँचे। ब्रह्मचर्य्यदीक्षा उन्होंने किससे प्राप्त की, इसका कुछ ठीक २ पता नहीं। परन्तु काशीमें उन्होंने महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य संन्यासी गोपालगिरिजी आदि के पास लगभग १२ वर्ष

तक विद्याभ्यास किया। सम्वत् १९३७ के करीब स्वामी श्रीविश्वेश्वरानन्दजी से उनकी पहिली भेंट हुई। उस समय स्वामी विश्वेश्वरानन्दकी अवस्था २६ वर्ष ही थी। तबसे ये दोनों स्वामी एक ही साथ रहते, एक ही साथ विद्याभ्यास करते, एक साथ प्रचार करते। अस्तु! स्वामीजी की बुद्धि इतनी तीव्र थी कि विद्याभ्यास करते समय प्रश्नोत्तर के अवसर पर उनके अध्यापको को भी अनेक उपदेश मिलते। इस कारण उनके अध्यापक उनसे सविशेष प्रेम रखते थे और स्वामी श्री विश्वेश्वरानन्दजी तो उनसे अप्रतिम स्नेह रखते थे।

विद्याभ्यास के अनन्तर प्रचारार्थ भ्रमण करते हुये ऋषि दयानन्दजी की मृत्यु के पश्चात् अजमेर नगर में पहली परोपकारिणी सभा हुई। उस उत्सव पर श्रीमान् स्वामी नित्यानन्दजी अपने गुरु स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी के साथ यहाँ पधारे थे। आर्यसमाज में प्रविष्ट होनेका वह आपका पहला ही मौका था। उस समय आपकी आयु लगभग २५ वर्षकी होगी। दोनों महानुभावों की दिव्य मूर्तियां बहुत सुन्दर और प्रभावशाली प्रतीत हुईं, इसलिये आर्यसमाजके कार्यकर्त्ताओंने आपसे वार्तालाप किया। जिससे ज्ञात हुआ कि आपके विचार आर्यसमाज के ही विचार हैं, पर अभी कार्य प्रारम्भ नहीं किया है। अजमेर के उस समयके कार्यकर्त्ताओं के निवेदनपर आपने प्रतिज्ञा की और नियम पूर्वक कार्य प्रारम्भ कर दिया। उस स्वामीकी आत्माको धन्य है कि जिसने आयुपर्यन्त अपनी प्रतिज्ञा निभाई। आपकी लगातार वैदिक धर्म की सेवा सबको विदित है। आपने पहिला ही पहिला किला बूंदी (राजपूताना) में फतह किया था। आपने बूंदी जैसी कट्टर पौराणिक रियासत में धार्मिक हलचल मचा दी और बीसों पौराणिक पण्डितों को शास्त्रार्थ में हराकर उनपर आर्यसमाज का सिक्का जमा दिया। आखिर शास्त्रार्थ में पराजित हो निरुत्तर होकर बूंदी महाराज चिढ़ने लगे और उन्होंने स्वामीजी को अपनी रियासत से निकलवा दिया; परन्तु ज्यों-ज्यों चन्दन घिसा जाता है त्यों त्यों उसकी सुगन्धि अधिक फैलती है उसी प्रकार स्वामीजी के इस निरादर से स्वामीजी का गौरव और भी बढ़ा और स्वामीजी की विद्वत्ताका नाद सारे भारत में फैल गया।

दूसरी देशी रियासतों में आपका मान होने लगा। और आप शाहपुरा, उदयपुर, दक्षिण हैदराबाद इत्यादि रियासतों में वैदिक धर्म का प्रचार जोर शोर से करते रहे। नरसिंहगढ़ महाराज तो आपको बहुत ही प्रतिष्ठा करते थे यहां तक कि जब महाराज जोधपुर विवाह करने पधारे तो बहुत ही आग्रहपूर्वक स्वामीजीको अपने साथ लाये और अजमेर ठहर कर धर्मोपदेश कराया और अजमेर—आर्य्य-समाज भवन के वास्ते एक सहस्र रुपये प्रदान किये। नरसिंहगढ़के पश्चात् स्वामी जी इन्दौर दर्बार में भी उपदेश देते रहे और यहाँ स्वामीजी के लिये वार्षिक भेंट मुकर्रर हो गई। इन्दौर से आप माइसोर महाराजको वैदिक धर्म का सन्देशा पहुँचाने गये। जहाँ इनकी विद्वत्ता और मधुरभाषिता का इतना प्रभाव पड़ा कि माइसोर महाराज ने इनके चार व्याख्यान फोनोग्राफ में भरवा दिये, जो अभी तक सुरक्षित हैं। फिर महाराजके साथ स्वामीजी मुख्य २ समाजों में दौरा करनेको निकले, परन्तु शोक कि कलकत्ते पहुँचने पर माइसोर महाराज का देहान्त हो गया और वैदिक धर्म के शीघ्र प्रचार होने की आशायें जहाँ की तहाँ रह गईं। माइसोर के पश्चात् स्वामीजी महाराज ने बड़ौदा महाराज के प्रति आर्य्यसमाज का सन्देशा पहुँचाया और एक वैदिककोष बनाने में सहायता प्राप्त की। इसी प्रकार स्वामीजीने देवास, धार, कोटा, अलवर, भरतपुर आदि अनेक रियासतों में वैदिक धर्मका प्रचार किया। कोटा रियासत में आलाराम सागर जैसे उद्दण्ड पौराणिक संन्यासीको आपने ही मजा चखाया था और कोटा महाराज से उस पर जुर्माना करवाया था। आपने नवीन इन्दौर महाराज को सदुपदेश दिया था और वैदिक कोषके लिये सहायता प्राप्त की थी। परन्तु शोक कि स्वामीजी महाराज वैदिक-कोष को अधूरा ही छोड़ कर ता० ८ जनवरी १९१४ अर्थात् पौष शुक्ल ११ संवत् १९७० विक्रमीको परलोक सिधार गये। स्वामीजी महाराज अपूर्व वक्ता होने के सिवाय संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, आदि भाषाओंके पूर्ण विद्वान् थे और सब ही भाषाओं में प्रभावशाली व्याख्यान देते थे। स्वामीजी ने छोटे मोटे कई ग्रन्थ रचे हैं, उनका रचित "पुरुषार्थ प्रकाश" बहुत ही विद्वत्ता से लिखा गया है और उसमें स्वामीजीकी पूर्ण योग्यता झलकती है। स्वामीजी ने

ने बम्बई प्रान्त में भी विशेष कार्य्य किया, जिसका फल यह हुआ कि उस प्रान्त में भी अब वैदिक धर्म के प्रति लोगों का अधिक अनुराग हो रहा है और जागृति के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आर्यसमाज का ऐसा कोई सा बड़ा प्रचारका मौका होता होगा जहाँ उक्त स्वा० नहीं पहुँचे हों, स्वामीजी ब्रह्मचारी थे और देशहितकार्य्य में सदा संलग्न रहते थे। सोशल कान्फ्रेन्स में एक आप प्रसिद्ध व्यक्ति थे। आपकी मृत्यु से आर्य्य समाज को वह क्षति पहुँची है जिसको पूर्ति होना वर्तमान में कठिन प्रतीत होता है। आजकल ऐसा कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता जो राजा महाराजाओं पर प्रभाव डाल सके और वैदिक धर्म का और सच्चे देशहित का सन्देशा पहुँचा सके।

—सम्पा०

स्वामी नित्यानन्द जी के देहान्त के यह जीवन परिचय १९२४ ई० में आदरणीय पश्चात् लिखा गया था। किसने लिखा था, यह भी पता नहीं है। ये विचार और विन्यास उन्हीं के हैं। हम उन्हें यथा पूर्व ही प्रकाशित कर रहे हैं।

ओ३म्

व्याख्यान माला

१

जीवात्मा

यह विषय बहुत गहन और सूक्ष्म है। योगी पुरुषोंके लिये भी अगम्य है। तथापि इस विषयमें ज्ञानी पुरुषोंका यथार्थ कथन क्या है, इसे आज मैं संक्षेपमें बतलाना चाहता हूँ। कई लोगों का कथन है कि—"शरीर ही आत्मा है। शरीर और आत्मा भिन्न नहीं।" इन्द्रिय-आत्मवादियों का यह कहना है कि—"शरीर की अपेक्षा इन्द्रिय उत्तम हैं और इसीलिये इन्द्रियाँ ही आत्मा हैं। इन्द्रियों से आत्मा कोई भिन्न नहीं।" मन-आत्मवादियों का यह कथन है कि—"आम्रफलका स्वाद जिह्वाको जान पड़ता है, सुगन्धि नासिकाको, रंग नेत्रोंको, कोमलता त्वक्-इन्द्रियको। परन्तु वह फल 'मिष्ट, सुगन्धित, पीला, कोमल, इत्यादि गुणों से युक्त है' यह बात एक ही समय में जाननेवाला इन्द्रियों से कोई भिन्न है और वह मन है।" इस युक्ति से मन आत्मवादी लोग इन्द्रियोंको आत्मा न मानकर मनको ही आत्मा मानते हैं। कुछ अन्य लोगों का कथन है, कि—मन आत्मा नहीं है। क्योंकि मन का काम तो संकल्प-विकल्प करना है। परन्तु निश्चयात्मक ज्ञान जिससे प्राप्त होता है वह बुद्धि है। इसलिये 'मन आत्मा नहीं है। किन्तु बुद्धि ही आत्मा है' ऐसा वे मानते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि प्राण ही आत्मा है। इसके अस्तित्व से प्राणी जीते हैं और यदि यह न हो तो प्राणी जीवित न रहें, इसलिये प्राण ही आत्मा है।" परन्तु यह कथन भी कितनों ही के मत से योग्य नहीं। क्योंकि निद्रा में प्राण रहता है, पर उसमें

ज्ञान-शक्ति नहीं रहती। प्राण तो एक प्रकार का जड़ वायु है, इसलिये यह आत्मा नहीं हो सकता। कितने ही लोग शून्य को आत्मा मानते हैं। कुछ एक कहते हैं—"शून्य को यदि आत्मा मानते हों तो, हम कहते हैं कि 'जो शून्य को जानता है वही आत्मा है।' क्योंकि पहले तो शून्य को जान ही नहीं सकते।' इस प्रकार प्रस्तुत विषय में बहुत से मतभेद हैं। वैदिक लोग आत्मा का लक्षण इस प्रकार बताते हैं—

'इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञान्यात्मनो लिङ्गम्' इति।

अर्थात् जो सुखकी इच्छा करता है, यही नहीं किन्तु उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है, तथा दुःखकी इच्छा न करते हुए उससे द्वेष करता है और जिससे सारे पदार्थोंका ज्ञान होता है वही आत्मा है। अब हमें यह देखना है कि—'वास्तवमें यह मत कहाँ तक सच है।' हमारे बड़े २ ऋषियोंने इस विषयपर बहुतही सूक्ष्म विचार किया है। वे महात्मा आज कलके पुरुषों की तरह न थे। वे चारों पुरुषार्थों को अच्छी तरह से जानते थे। इस क्षणिक संसारमें अहर्निश निमग्न न रहते हुए अरण्य में रहकर आत्मा और ईश्वर विषयपर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते थे। उन्होंने इस विषय पर अत्यन्त श्रम करके महान् आविष्कार किया है।

इस लिये 'उनका क्या कथन है' यह आप लोगों को ध्यान पूर्वक सुनना चाहिये। नास्तिक लोग प्रकृतिवादी हैं। उन्हें चैतन्यका ज्ञान नहीं। वे कहते हैं—"चैतन्य प्रकृतिका एक विकार है।" 'चैतन्य स्वतन्त्र नहीं' यह उनका मत है। अब हमें यह सिद्ध करना है कि—"जीव शरीर से भिन्न है।" जबतक शरीर में चैतन्य शक्ति है, तबतक ज्ञानशक्ति है, शरीर से उसका वियोग होते ही शरीर मृतप्राय हो जाता है। ज्ञानशक्ति शरीरका एक अंश अथवा विकार है। अतएव जबतक शरीर है तबतक ज्ञान शक्ति होनी ही चाहिये। पर ऐसा नहीं होता। जैसे, जहाँ दीपक होता है वहाँ प्रकाश भी होता है। दीपक से प्रकाश अलग नहीं हो सकता। इससे यह स्पष्ट है कि—'ज्ञानशक्ति शरीर से भिन्न है।' यह कैसे कहा जा सकता है कि शरीर और आत्मा एक ही है? जिसके

योग से ज्ञानोद्भव होता हैं उसीको जीवात्मा कहते हैं। हाथ, पैर, नाक, कान, इत्यादि अवयवों में ज्ञानशक्ति का अभाव है। इसी तरह शरीर स्वयं जीवात्मा नहीं। शरीर के नष्ट होते ही ज्ञानशक्ति का लोप हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि शरीर और ज्ञानशक्ति यह दोनों भिन्न भिन्न हैं। अब हमें यह विचारना चाहिये कि—"आत्मा शरीर का भाग है या उससे भिन्न है।"

यदि यह मान लिया जाय कि 'जीव पंचतत्त्वों का बना हुआ है' तो पहले यह देखना चाहिये कि पंचतत्वोंमें ज्ञान शक्ति है या नहीं। पृथ्वी, वायु, जल और आकाश इन पाँचतत्वों में से किसी में जब चैतन्यशक्ति नहीं, यह प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हुई बात है, तब यह कहना, कि इन पांचतत्वोंमें ज्ञानशक्ति है, बिलकुल-युक्तिशून्य है। अच्छा, एक मत यह भी पाया जाता है किजैसे आक्सिजन (प्राण वायु) और हाइड्रोजन वायुके मेलसे जल उत्पन्न होता है, उसी तरह इन पाँच तत्वों के संयोग से जीव शक्तिका प्रादुर्भाव होता है। अच्छा, अब हमें यह जाँच करनी चाहिये कि यह सिद्धान्त कहाँ तक सत्य है। जीवशक्ति प्रारम्भ के ही पाँच तत्वों में अंशतः है या मिश्रण के अनन्तर उत्पन्न होती है। जब प्रारम्भ से ही अंशतः पाँच तत्वों में यह शक्ति होगी, तभी मिश्रणके बाद भी उत्पन्न हो सकती है। यह स्वयं सिद्ध है। चैतन्य पृथ्वीमें है, अथवा वह पाँचतत्वों के मिश्रण होने के बाद उत्पन्न होता है।, इन दो बातों में से एक बात माननी ही चाहिये। जीवात्माको यदि पाँच तत्वोंका एक रूपान्तर माना जाय तो पाँच तत्वों में पहले ही से उसका अंशतः होना मानना पड़ेगा। अच्छा, अब इस विषय में विचार करना चाहिए कि जीव शरीरका एक अंश है, या जीव और शरीर दोनो पृथक्-पृथक् हैं। जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश सूर्य को नहीं छोड़ सकता और गुण गुणीको नहीं छोड़ सकता उसी प्रकार, यदि जीवको शरीर का एक गुण माना जाय, तो वह उसे छोड़ नहीं सकता। मतलब यह कि शरीर के मृत होने पर उसे शरीर से भिन्न न होना चाहिए। परन्तु शरीर के मृत होते ही जीवात्मा उससे विलग हो जाता है। इससे यह कदापि नहीं कह सकते कि वह शरीर का एक अंश है। कैसे शोक की बात है कि आजकल हम लोग अपने कर्त्तव्य कर्म की ओर ध्यान न दे

अज्ञानीकी तरह सिर्फ बकते ही रहते हैं, इसीसे अधिकांशमें हमारी विचार शक्ति का ह्रास हो गया है। अज्ञानता के कारण न हम यह जान सकते और न समझ ही सकते, कि हमारी स्थिति पहले कैसी थी और अब कैसी है। संस्कृत में जिसको योग कहते हैं और जिसका ज्ञान हमारे ऋषि-मुनियों के अनुग्रह से दूसरों को होता था वह अब यूरुप, अमेरिकादि देशों में "मेस्मरीजम" के नाम से प्रगट हुआ है। महाभारत, शान्ति पर्व में एक कथा है कि "राजा जनक के दरबार में सुलभा नामकी एक बाला योग-विद्यामें पारंगत होकर आई थी।"

तात्पर्य यह है कि अर्य्यावर्त में छोटी-छोटी बालिकाओं को भी योगविद्या का सम्पूर्ण ज्ञान था। योगविद्या के प्रभाव से आधुनिक विद्वानों के मतानुसार 'मेस्मरीजम' के द्वारा अपने शरीरकी भीतरी रचना जानी जा सकती है और उससे अनेक रोग भी अच्छे होते है। इन्द्रियों के द्वारा जो कार्य नहीं किया जा सकता, वह जिससे किया जाता है वह एक स्वतंत्र शक्ति होती है और वही आत्मा है। जिसे हम आत्मा मानते हैं, आधुनिक डाक्टर उसे "ब्रेन" कहते कहते हैं। वे ब्रेनको भी अन्य इन्द्रियों की तरह शरीर का अंश बतलाते है। तब तो, आधुनिक डाक्टरों के मतानुसार, जो मनुष्य स्थूल शरीरका हो उसकी आत्मा भी विशाल होनी चाहिए, पर शरीर की विशालता के अनुसार आत्मा विशाल नहीं होता। कई लोगों का कथन है कि "मेस्मरीजम" के योगसे विविध समाचारों का जानना और इसी तरह पूर्ण योगाभ्यास के साधन से पुनर्जन्मादि स्थितियोंका जानना असम्भव है। हमारे देश में सौ दोसौ वर्ष पहले यदि कोई कहता कि यूरुपमें बैल, घोड़ा इत्यादि से चलाई जानेवाली गाड़ी सिर्फ अग्नि और जल के योग से चलती है, तो लोग उसे मूर्ख और पागल कहते। रेल निकलने के पूर्व विमान की बात कोई सच न मानता। यही हाल पुनर्जन्म और आत्मा के अस्तित्व का भी समझिये।

हम लोग अपनी प्रगाढ़ अज्ञानता के कारणइस बातको बिलकुल सच नहीं मानते और हमारे बड़े-बड़े विद्वान जो अपने ग्रन्थों में ऐसी बड़ी बातें लिख गये हैं उन्हें हम सिर्फ मनोरंजक उपन्यास या अरबियन नाइट्की कहानियां मानते हैं।

पर वास्तव में पूर्वकालका यह हाल न था। जैसे सूर्यकी किरणें, जहाँतक जगह मिलती है, वहाँतक फैलती जाती है, उसी प्रकार योगियोंकी शक्ति योगके प्रभाव के अनुसार बढ़ती ही जाती है। आत्मा चर्मचक्षुसे नहीं देखा जा सकता। वह सिर्फ ज्ञानचक्षुसे ही देखा जा सकता है। शरीर और आत्मा दोनों भिन्न है जैसे तप्त लोह की अग्नि जब उससे अलग हो जाती है तब दिखाई नहीं पड़ती, पर वास्तवमें वह लोहे से अलग ही हैं; उसी प्रकार शरीर और आत्मा भी भिन्न-भिन्न हैं। अब यह देखना चाहिए कि इन्द्रियोंकी तरह आत्मा क्या एक भिन्न वस्तु है? प्रत्येक अवयवमें आत्मा नहीं होता। वस्तुतः सब अवयवोंमें आत्माकी शक्ति व्यापक रूपसे रहती है। फूल 'लाल, सुगन्धित और कोमल है, यह देखने और जांचने का काम केवल आत्माका है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि इन्द्रियां आत्मा नहीं। यही हाल मनका है। जैसे अक्षि (आँख) की शक्ति देखना है उसी प्रकार मनकी शक्ति जानना है। मन कुछ साक्षात् जीव नहीं है सारांश यही है कि—'जीव इन्द्रियोंसे सर्वथा भिन्न है।, ऋग्वेद में कहा है कि तीन पदार्थों के अन्दर सारी सृष्टिका समावेश है।

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते" इत्यादि। वे तीन पदार्थ प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा ये हैं। जीव शरीरसे भिन्न है। शरीरका नाश होता है, पर जीवका नाश नहीं होता। वह अनादि अविनाशी है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः' अर्थात् "अग्नि, पानी या शस्त्र उसका नाश नहीं कर सकते।" इससे सिद्ध होता है कि—'जीव अविनाशी है।' चींटीसे हाथी तक सबमें जीव है। "अहम् अस्मि" "I am" "मैं हूँ" यह प्रत्येक मनुष्य कहता है। अपने-अपने जीवकी रक्षाके लिये प्रत्येक प्राणी प्रयत्न करता है। इससे भी प्रगट होता होता है कि जीवका अस्तित्व सर्वमान्य है।

"Evolution Theory"

विकासवाद और "सांख्यशास्त्र" में सृष्टि-उत्पत्ति के विषय में वर्णन किया गया है। इस विषयमें चार्ल्स, डार्विन, हर्बट स्पेनसर इत्यादि अनेक तत्व वेत्ताओंने विचार किया है। सब पदार्थों का विचार करने के बाद सांख्यशास्त्र में

आत्माका विषय अत्युत्तम रीतिसे समझाया गया है। जैसे अन्नसे दूध, दूधसे दही, दही से माखन, माखनसे घी और घी से वाष्प आदि अनेक रूपान्तर होते हैं, उसी प्रकार शरीरकी भी दशा है। अन्नसे वीर्य, वीर्य से गर्भ, गर्भ से शरीर की उत्पत्ति, बादको बाल्यावस्था, शैशवावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था और अन्त में मृत्यु। इस प्रकार शरीर के अनेक रूपान्तर होते हैं। शरीर की सारी अवस्थाओं में आत्मा रहता है। उसके अनस्तित्वका अभाव है। हम सब पदार्थों को जानते हैं और जानना यह एक चैतन्यशक्ति का ही गुण है, वह चैतन्यशक्ति आत्मा के बिना हो नहीं सकती। सूर्य है तभी प्रकाश है, रातको सूर्य के न रहने से उसका प्रकाश भी नहीं रहता; जब प्रकाश दिखे तब जानना चाहिये कि सूर्य भी है। उसी प्रकार हम जानते हैं कि—हममें चैतन्यशक्ति है।' इससे स्पष्ट मालूम होता है कि आत्मा है। चैतन्यशक्ति है इसीलिये शरीर के सारे व्यापार होते हैं। वह यदि न हो तो उसी क्षण सारा मामला बिगड़ जाय। आधुनिक डाक्टर तो अभी इसी शंकामें पड़े हैं कि—'जीव है या नहीं।' परन्तु हमारे प्राचीन विद्वान वैद्य इस विषय में बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे। चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थों में जहाँ अष्ट धातुओंका वर्णन है वहाँ जीवका भी वर्णन है। आजकल के विद्वद्वर्य लोगों की बुद्धि साकार पदार्थों को ही जान सकती है; निराकार पदार्थों के जानने में वह कुण्ठित हो जाती है।

जिस पदार्थका ज्ञान इन्द्रियोंसे नहीं हो सकता, उसके लिये इन्द्रियोंका ही उपयोग करना कितनी भारी भूल है। हमारे पेटमें यदि दर्द हो तो उसे हमारी आँखें कैसे देख सकती हैं? और कान कैसे सुन सकते हैं? उसे जानने के लिये तो बुद्धि की ही आवश्यकता है। इसी प्रकार इन्द्रियों से परे वस्तु ज्ञान द्वारा ही जान लेनी चाहिये। वैशेषिक शास्त्रमें कहा है—"**आत्मन्यात्ममनसोः संयोग विशेषादात्मप्रत्यक्षम्**।" अर्थात् मन और आत्मा का विशेष सम्बन्ध होनेसे आत्मा का यथार्थ ज्ञान होता है। इनका विशेष सम्बन्ध यदि न हो तो वह ज्ञान नहीं होता। आत्मा और मनका सम्बन्ध सदैव का है। किन्तु इस सम्बन्ध से आत्म-बोधनहीं होता, ऐसा कणाद ऋषिका भी कथन है। प्राचीन पुरुष आजकल

के जेंटलमैनों की तरह होटलों में बैठ बर्फ, सोडा, शरबतादि वस्तुओंका भक्षण कर व्यर्थ रुपये मारनेवाले न थे। किन्तु उदरपोषणके निमित्त धान्य का एक एक कण खा निर्जन बनमें रहकर जनसमूह के लिये सर्वोपयोगी परमात्मवाद के विचार में अहर्निश मग्न रह कालक्रमण करते थे। अपनी सारी आयु उन्होंने इसी भाँति के सूक्ष्म विचारों में हमारे कल्याण के लिये व्यतीत की। अतएव उन महात्माओंके विचार अत्यन्त मूल्यवान् और महत्वपूर्ण हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर के समान ग्रन्थकारोंके एक दो ग्रन्थ पढ़कर आजकल के नवयुवक विद्वान् अपने प्राचीन ऋषियोंकी निन्दा करने लगते हैं यह कितने शोक की बात है! हमारे ऋषियोंने जो-जो मार्ग और जो-जो शिक्षा बतलाई है, उस पर अबलम्बित न रहते हुये जब हम उनके मार्ग के देखे बिना यह शंका निकालते हैं कि—"जीवात्मा है या नहीं" तब आपही बताइये इसमें किसका दोष है? हमारा वा हमारे गुरुजनों का? हमारे हाथ में एक लकड़ी है और हम वह लकड़ी एक अन्धे पुरुषको बतलाते हैं, तथा उसके विषय में हम उससे बहुत कुछ वर्णन करते हैं, तथापि उसके ध्यान में वह बात नहीं आती तो क्या इससे हमको यह मान लेना चाहिये कि 'वास्तवमें लकड़ी नहीं है?' अन्धेकी दृष्टि नहीं, इसमें हमारा क्या दोष? इसी प्रकार यदि हमें आत्माका ज्ञान न हो तो इससे यह नहीं कह सकते कि आत्माका अस्तित्वही नहीं।' न समझना अपनाही दोष है। 'हम आत्मसम्बन्धी विषय का यथायोग्य विचार नहीं करते, पर एकदम स्वच्छन्दता से निश्चय कर बैठते हैं।' यह उत्कृष्ट मार्ग नहीं हैं। आजकल के डाक्टरोंका मत है कि—"चैतन्यशक्ति ब्रेन (मस्तिष्क) में रहती है। क्रियाजनक और ज्ञान जनक तन्तु ब्रेन से निकल कर शरीर के सब भागों में फैले हुये हैं और उन्हींसे सारा व्यवहार चलता है।" इन भाइयोंसे हमें इतनाही पूछना है कि जब सारे शरीर में ज्ञानतन्तु फैले हैं तो, कल्पना करो कि हमारे हाथ में महाव्यथा कारक एक व्रण हुआ है, उसकी वेदना जागृतावस्थामें तो होती है परन्तु जब हम गाढ़ निद्रावश होते हैं तब हमें वह नहीं जान पड़ता इसका क्या कारण है? ज्ञानतन्तु उस समय भी तो अपनी-अपनी जगह में रहते हैं, परन्तु निद्रा

में दुःख का ज्ञान क्यों नहीं होता ? इससे हमें स्पष्ट मालूम होता है कि "ज्ञान-तन्तु और जीवात्मा दोनों भिन्न भिन्न हैं।" डाक्टरोंका यह कथन कि मस्तिष्क में ज्ञानशक्ति है, भ्रम से युक्त है। इनके कथनानुसार शरीर का प्रत्येक परमाणु ४० दिनों में अपना स्थान छोड़ कर दूसरी जगह चला जाता है, उनकी यह क्रिया बराबर अव्याहत होती रहती है। हाथ के परमाणु कितने ही वर्षमें पैरके तलवे में या शरीर के किसी अन्य मार्गमें चले जाते हैं। इस प्रकार सात वर्षों में वे सारे परमाणु निकल जाते और उनके स्थान में दूसरे नवीन परमाणु उत्पन्न होते है। यदि एक पुरुष एक वर्ष अथवा छः मास तक प्रतिदिन दो सेर पेड़ा खाय तो इस क्रम के अनुसार कितने मन पेड़े उसके पेट में होने चाहिए और उसका पेट कितना फूल जाना चाहिये ? परन्तु ऐसा नहीं होता। जिस प्रकार गंगाका जल आगे बढ़ता है और उनकी जगह नवीन जल आता है उसी प्रकार हमारे शरीर की भी दशा है। अर्थात् प्रत्येक वस्तुका रूपान्तर होकर अन्तमें वह नाश को प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार सात वर्षों में यदि शरीर के सब परमाणु निकल जाकर दूसरे नवीन उत्पन्न होते हैं तो यह देखना चाहिये कि हमारे उपर्युक्त दृष्टान्त के साथ इस बात का मेल कहाँतक मिलता है ? एक ब्राह्मणका छः वर्षका लड़का वेदाध्ययन के लिये काशी गया था। वह वहाँ रह कर साठ वर्ष की अवस्था तक अध्ययन करने के बाद अपने घरको लौटा। बालपनमें जो वस्तुएं उसके देखनेमें आई थीं उन सबका स्मरण उसे अब भी है, इतने दीर्घ समय में भी उनकी ज्ञानशक्ति और स्मरणशक्तिका नाश नहीं हुआ। ऐसी दशा में डाक्टरों के उपर्युक्त मतकी वास्तविकता कितनी है सो सहज ही मालूम हो सकती है। एक बार दो बार इस प्रकार क्रमशः दस बार जब ज्ञानतन्तु नवीन उत्पन्न होते हैं तब स्मरणशक्ति न रहनी चाहिए। पर वास्तवमें यह ठीक नहीं है। यदि परमाणु ही ज्ञानजनक तन्तु हो तो ज्ञानका नाश हो जाना चाहिए, पर ऐसा नहीं होता। ज्ञानतन्तु और आत्मा भिन्न २ हैं, इससे स्पष्ट होजाता है कि परमाणु शरीर से निकलते रहते हैं पर आत्मा उस समय बना रहता है, और केवल उसीसे ज्ञान होता है। इसी लिये ज्ञानकी प्राप्ति बड़े परिश्रम से होती है। वैदिक

लोग मानते हैं कि—"जीवकी उत्पत्ति और नाश नहीं होता।' कृश्चियन और मुसलमान जीवको आदि-अन्तयुक्त मानते हैं। उनका कथन सृष्टिनियम के सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि 'जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका नाश होना ही चाहिये' यह नियम है। जोवको जो अविनाशी मानते हैं वे पुनर्जन्म को भी मानते हैं, किन्तु कई लोग पुनर्जन्म स्वीकार नहीं करते ? यह विषय बहुत ही सूक्ष्म है। संस्कृतिमें इस विषय पर जो ग्रन्थ है उन्हें आजकल के हमारे बी० ए० एम० ए० समझ नहीं सकते। ईश्वर, जीवात्मा, पुनर्जन्म इत्यादि न मानने वालों से हमारा प्रश्न है, कि तुम्हारी शंकाका मूल हेतु क्या है ? प्रश्न करने में चार उद्देश्य रहते हैं। पहला जानकारी प्राप्त करने के लिये, दूसरा अनुमति लेने के लिये, तीसरा जानकारी कराने के लिये, और चौथा सिर्फ कुत्सित रीतिसे दोष निकालने के लिये। इन चार प्रकारोंमें से तुम्हरा प्रश्न किस प्रकारका है ? सच्चे धर्म जिज्ञासुपन से पूछने वाले बिरले ही है। परन्तु निन्दाका उद्देश रखकर पूछनेवाले असंख्य हैं। इस जगत् में सृष्टि के नियमानुसार प्रत्येक वस्तुका रूपान्तर होता है। उसी प्रकार जीवका रूपान्तर क्यों न होना चाहिए ? सूक्ष्म रीति और शान्तिचित्तसे विचार करने वाले को तत्काल मालूम हो जाता है कि पुनर्जन्म है या नहीं ? जैसे शरीरमें रज, मांस, उत्पत्ति, वृद्धि, नाश, इत्यादि भिन्न-भिन्न रूपान्तर होते हैं वैसे ही जीवकी भी दशामें रूपान्तर होना चाहिए। यही पुनर्जन्म है। एक जन्म छोड़ दूसरा धारण करना जीवका रूपान्तर कहलाता है। पुनर्जन्म न माननेवाले पुरुषोंका यह आक्षेप है कि— पुनर्जन्म का अस्तित्व है तो हमें पुनर्जन्मका स्मरण क्यों नही होता ? चूकि हमें पुनर्जन्म याद नहीं रहता, इस लिये यह मनाना चाहिये कि पुनर्जन्म नहीं।" उनका यह कथन ऊपरसे तो सच्चा भासता है, परन्तु इस शंकाका समाधान क्या है सो देखिये। जीव जिस जगहसे आता है, उस जगह का ज्ञान उसे नहीं रहता। मुसलमान लोग यह मानते हैं कि—"जीवको ईश्वर स्वर्ग से इस संसार में भेजता है तब वह माताके गर्भमें प्रवेश करता है" परन्तु 'हम कहाँ से आये' इसका ज्ञान उसे नहीं रहता। जीवका ज्ञान यदि जीवको नहीं होता, तो क्या हमें यह मानना

उचित है कि—'जीव है ही नहीं ?' जब हम छः महीनेके बालक थे, तब हमारी माँ कौन, और बहिन कौन यह न जानते थे। इससे क्या यह मानने योग्य है कि—हमारे माँ, बाप, भाई, बहिन इत्यादि कोई नहीं थे ?' यही हाल पुनर्जन्मका है। जैसे बीज में वृक्ष मौजूद है, परन्तु यदि पानी देकर वह जमीन में बोया न जाय और उसकी योग्य रक्षा न की जाय तो उसका वृक्ष नहीं बन सकता है। यही हाल जीवका भी समझना चाहिये। जीवकी दो शक्तियाँ हैं, सामान्यशक्ति और विशेषशक्ति। जाग्रतावस्था में सामान्यशक्ति और विशेषशक्ति यथास्थित होती है। स्वप्नावस्था में विशेषशक्ति सूक्ष्म स्वरूपमें रहती है और सुषुप्तिमें उसका लय होता है। इससे उस अवस्था में कुछ जाननेकी शक्ति नहीं रहती। जहाँ तक जीवकी शक्ति ठीक-ठीक अपनी जगह पर रहती है वहाँ तक वह सब जान सकता है। पर जब वह ठीक जगह पर नहीं होती तब वह कुछ भी नहीं जान सकता। बाल्यावस्थामें जो-जो बातें होती हैं उनका हमें स्मरण नहीं रहता। इससे यह कैसे मान सकते हैं कि—'उस समय कुछ था ही नहीं, अथवा जीव ही न था ?' वास्तवमें बात यह है कि उस समय ज्ञानशक्ति अत्यन्त ही सूक्ष्मावस्था में होती है। पातञ्जलि ऋषिने कहा है कि—'योगसे पुनर्जन्म जाना जा सकता है।' *

महाभारत में इस विषय के अनेक दृष्टान्त हैं। योगशक्ति खूब बढ़ानी चाहिए। पर हमारे समान मध्यम स्थिति के लोगों से यह नहीं हो सकता। कितनेही लोग एकदेशी अंगरेजी ग्रन्थ पढ़ उनके मनमाने झूठे साँचे विचार लेकर विद्वत्ताका आडम्बर दिखलाकर यह कहा करते हैं कि—'हमारे शास्त्रों में कुछ नहीं। वे बिलकुल झूठे हैं। पर हम समझते हैं, कि ऐसे लोगोंको अपने शास्त्रोंका कुछ पताही नहीं है। आज कलके शिक्षित लोगों के मुखसे जो

* महायोगेश्वर भगवान् कृष्णने भी गीता में अर्जुन से कहा है:—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥ अ० ४। ५॥

सदा यह वचन निकला करते हैं कि—'हमारे पूर्वज मूर्ख थे। हमारा धर्म कोरा आडंबरमात्र है; अत एव मिथ्या है। हममें पहले कुछ भी पुरुषार्थ नहीं था। ऐसे वचन कहना और उनको सुनना क्या थोड़े दुर्भाग्य की बात है? जब कि एक आधुनिक प्रामाणिक अंग्रेजी ग्रन्थकार हमारे कलाकौशल्यके विषयमें आदर प्रदर्शित करता है और अपने ग्रन्थमें स्पष्ट रीतिसे स्वीकार करता है कि—इसी देशसे सारी विद्या हमारे यहाँ आई है। तब हमारे भाई (अल्पज्ञानी) निन्दक ग्रन्थोंको पढ़कर अपनी निन्दा कर रहे हैं यह कैसी शोकजनक बात है? पहले अर्य्यावर्त सब कलाओंका मुख्य स्थल था। इस विषयमें प्रसिद्ध राजर्षि कवि भर्तृहरि कहते हैं :—

* पुरा विद्वत्ताऽऽसी दुपशमवतां क्लेशहतये।
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्धै विषयिणाम्।
इदानीं तु प्रेक्ष्य क्षितितल भुजः शास्त्राविमुखान्।
अहो कष्टं सापि प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति॥ १॥

एक कृश्चियन मिशनरी विशेषने अपने व्याख्यान में कहा था कि "यद्यपि हमारे धर्मशास्त्र (बाईबेल) मे पुनर्जन्मके विषयमें कुछ नहीं कहा गया, तथापि यह बात नहीं कि पुनर्जन्म माननेवाले हमसे कुछ प्रत्युत्तर न कर सकें। ईश्वर न्यायी है' यह जगत् के सारे शास्त्रोंका सिद्धान्त है। उससे कालत्रयमेंभी अन्याय नहीं हो सकता। तब फिर कोई अन्धा, कोई लगड़ा, कोई दरिद्री, इस प्रकार जो अनेक लोग दुःखी देख पड़ते हैं, इसका क्या कारण है? परमात्मा के न्यायी राज्यमें क्या वास्तवमें ऐसा हो सकता है? नहीं। सच तो यह है कि अपने शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार न्यायरीति से सबको दण्ड मिलनाही चाहिए

* अहा! कैसे दुःखकी बात है जो विद्या पहले पंडितों के चित्तका क्लेश दूर करनेका कारण थी, वही विद्या कालकी गति से विषयी लोगोंके विषयसुख सिद्ध होनेका कारण हुई और यह देखकर महान् कष्ट होता है कि आजकल राजाओंके शास्त्रविमुख होनेसे वह रही सही विद्या भी प्रति दिन अधोगति को ही प्राप्त होती जा रही है।

और यदि वह इस जन्मके अनुसार न हो तो अन्य-जन्म कृत कर्मका परिणाम होना चाहिए। अच्छा, पुनर्जन्म न माननेवालोंसे हमारा यह प्रश्न है कि जो पुण्य करता है वह तो स्वर्गको जाता है और जो पाप करता है वह नरक को प्राप्त होता है। पर जो न पुण्य करता है न पाप करता है, समताका आचरण करता है उसका मरने के बाद क्या होता हैं। स्वर्ग प्राप्ति होने के योग्य पुण्याचरण न करने से जब स्वर्ग नहीं मिलता, और नरक प्राप्त होने के योग्य पापा-चरण न करने से जब नरक भी नहीं मिलता तब उसकी क्या गति होती है ? इस प्रश्नका उत्तर कोई नहीं दे सकता। अतएव पुनर्जन्म लेना पड़ता है। इससे भी स्पष्ट है कि—'पुनर्जन्म अवश्य है' अन्य अनेक युक्तियोंसे सिद्ध हो सकता है पर समय बहुत हो गया है, इससे विशेष विवेचन करना मैं ठीक नहीं समझता।

इति शम्!

"वह सत्य नहीं कहाता, जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना 'सत्य' कहाता है।"

"जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है।"

"मनुष्य का आत्मा सत्याऽसत्य का जानने वाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।"

स्वामी दयानन्द सरस्वती

स० प्र० भूमिका में

२

मनुष्य जन्मकी सफलता

मनुष्य की प्रकृति अनेक प्रकार की है। परन्तु इस जगत्में सारी मनुष्य जातिका दो विभागोंमें समावेश हो सकता है। एक विद्वान् और दूसरे अविद्वान्। अविद्वान् लोग रेलवे के इंजिनकी गतिकी तरह चलनेवाले होते हैं। उनमें सारासार विचार का अभाव होता है। इंजिन केवल चलनाही जनता है; "अमुक स्थलमें कौनसा निश्चित स्थान है? यह इलाहाबाद या देहली है, इसका उसे लेशमात्रभी भान नहीं होता। बस, अविचारी लोगोंका आचरण भी ऐसा ही होता है। वे गतानुगतिकता के अनुसार केवल खानपानमें निमग्न रहकर अपनी सारी आयु व्यर्थ गंवाते हैं। हमारा कर्तव्य क्या है, हमारा जन्म सार्थक कैसे हो, इत्यादि विचारों की ओर उनका कुछ भी ध्यान नहीं रहता। यह मनुष्यमात्र को अवश्य ही जानना चाहिये कि हमारा कर्त्तव्य है?" अथर्ववेदमें कहा है :—

'यथा अहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथार्तवमृतुभिर्यान्ति साकम्।'

अर्थात् "जिस प्रकार रात, दिन तथा ऋतु एकेके बाद दूसरी आती है, उसी प्रकार हे मनुष्य! तू अपना कर्त्तव्य कर। तुम अपना कर्त्तव्य रातदिन नियमित समय पर करो। जिस प्रकार पाठशालाका विद्वान् शिक्षक एशियाखण्ड भूगोल पढ़ाते समय पहिले अपने शिष्योंको उसका सामान्य ज्ञान कराता है, फिर उसके बाद प्रत्येक देशविशेषका ज्ञान कराता है और इन बातोंका ज्ञान करानेके लिये जिस प्रकार नकशेकी सहायता लेता है, क्योंकि केवल पुस्तक के द्वारा भूगोलका ज्ञान उत्तम नहीं हो सकता, इसी प्रकार परम कृपालु ईश्वरने हम सबको वेदरूपी पुस्तक और सृष्टिरूपी नकशे के आधार से यह बतलाया है कि—"मनुष्यका कर्तव्य क्या है।" वही आज आप सब भाइयोंके समक्ष मैं

यथाशक्ति निवेदन करता हूँ। जिस पृथिवीके ऊपर हम सब निवास करते हैं, वह अपना कर्तव्य करने में कभी नहीं चूकती। प्रतिदिन चौबीस घंटे में वह अपने आसपास एक बार घूम आती है और वर्ष में एक बार सूर्यकी प्रदक्षिणा करती है। आप, तेज, वायु, आकाश, सूर्यचक्र इत्यादि भी अपने २ कार्यमें नहीं चूकते। अच्छा, यदि इन जड़ वस्तुओंकी ओर ध्यान न देकर चेतन प्राणियों को देखें तो वे भी अपना-अपना कर्तव्य योग्य रीतिसे करते रहते हैं। इसी प्रकार हमारी इन्द्रियां भी अपने-अपने कर्तव्य यथा नियम पालती रहती हैं। इस विस्तीर्ण ब्रह्माण्डमें ऐसी एक भी वस्तु दृष्टि पथ से नहीं गुजरती, जो अपना कर्तव्य न बजाती हो।

तब फिर सबसे श्रेष्ठ और ज्ञानी जो मनुष्य प्राणी है, वही यदि अपना कर्तव्य भूलकर व्यर्थ भूभाररूप होकर रहे तो कितने दुःख और सन्तापकी बात है? कर्त्तव्यका विषय बहुतही व्यापक है। हमारा कर्त्तव्य अनेक भांतिका है। परन्तु आत्म-रक्षा, जीविका, सन्तानरक्षा, समाज संस्था, मनोरञ्जन और धर्म तथा उपासना इन छः भागों में उसका समावेश होता है। इसी का हम अब संक्षिप्त रीतिसे विवेचन करते हैं, क्योंकि आप सब बहुश्रुत और विद्वान् हैं। चरक नामके ग्रन्थमें कहा है—

प्राणैषणा धनैषणा परलोकैषणेति। आसांतु खल्वेषणानां प्राणैषणा तावत् पूर्वतरमापद्यते। कस्मात्? प्राणपरित्यागे हि सर्वपरित्यागः।'

अर्थात् प्रत्येक मनुष्यको प्राणकी, धनकी और परलोककी, यह तीन प्रकार की इच्छा होती है। प्राण की रक्षा करना मनुष्यका पहला कर्त्तव्य है। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इन चारों की प्राप्ति होना मनुष्यजन्मकी सफलता है, और यह बात अवश्यही प्राणपर अवलम्बित है, यदि शरीर की आरोग्यता अच्छी न हो तो इनमें से किसीकी भी प्राप्ति न होगी। इसीलिये आत्मरक्षण मनुष्यका पहला कर्त्तव्य कर्म है। प्रत्येक मनुष्यको शरीर की आरोग्यता रखने के लिये तद्विषयक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

परन्तु इस प्रकारका ज्ञान प्राप्त करके तदनुसार अपनी देह की रक्षा करनेवाले आज कल हमारे देश में कितने लोग हैं ? गर्मी के दिनोंमें जब प्यास अधिक लगती है, तब उसे मिटाने के लिये बिना सोचे समझे गटगट बहुत सा पानी पीकर अपना शरीर बिगाड़नेवाले हम लोगों में कुछ थोड़े नहीं हैं। नियम है विरुद्ध चलकर अपना आरोग्य बिगाड़नेवालों के अनेक उदाहरण मिलेंगे। इस देश में ऐसे लोग कुछ कम नहीं हैं जो मजदूरी करके गरीबी और अति दुःखसे अपना तथा अपने कुटुम्बका निर्वाह नहीं करते, दिनभर मजदूरी करके दो तीन आने पैदा करनेवाला अपने बालबच्चोंका और अपना पोषण जब अच्छी तरह नहीं कर सकता तब वह दुःखी जीव – चाहे उसमें अन्नकी गठरी तीन कोस ले जाने की शक्ति न हो तो भी पेट भरनेके लिये दो मन अनाजकी गठरी छै कोस लेजाकर अपना स्वास्थ्य बिगाड़ता है और जल्दी मौत के पंजेमें फस जाता है।

अब मध्यम श्रेणी के लोगोंकी स्थिति देखिये। उनको प्रातःकाल आठ बजे नौकरी पर उपस्थित होना पड़ता है। बारह-बारह घंटा काम करना पड़ता है, तब कहीं निर्वाह भरके लिये दस पन्द्रह रुपये वेतन मिलता है। काम करते-करते शिथिल पड़ जाता है पर वह विचारा करे क्या ? खाने के लिये तो प्रति-दिन सुबह शाम चाहिये ही।

ऐसी मध्यम स्थितिके लोगों की दुर्दशा है। अब बड़े-बड़े विद्वानों की दशा निराली है। बी० ए०, एम० ए०, एल० एल्० बी० इत्यादि पदवियाँ प्राप्त करने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है तब कहीं उन्हें कोई अच्छी नौकरी या रोजगार मिलता है। पर शरीर से बिचारे क्षीण हो जाते हैं, इसलिये उनसे विशेष परिश्रम नहीं हो सकता। सिर्फ दिखाने भर के लिये यह लोग गाड़ीघोड़े में बैठे हुए फिरा करते हैं। यही उनका आनन्द है। उनको देखकर स्कूल के विद्यार्थी यह लालसा करते हैं कि हम भी बी० ए० एम० ए० हो जांय तो हमको भी ऐसे ही आनन्द करने को मिले। इस कारण अत्यन्त परिश्रम करके शरीर के आरोग्य का ध्यान न करते हुए विद्याभ्यास करते हैं। इसके सिवा स्कूल

और कालेजों में फिलासफी (दर्शनाशास्त्र) इत्यादि गहन विषय सीखने के लिये माथापच्ची भी करनी पड़ती है। फिर घर के कष्ट अलग ही हैं। स्वयं तो दुर्बल है और घर में सोलह सत्रह वर्ष की स्त्री भी है, गृहस्थी का काम सम्हालना ही चाहिये, यह भी एक बड़ा दुःख समझिये। बड़ी कठिनाई और परिश्रम से कहीं एक आध परीक्षा पास कर ली, अब नौकरी की चिन्ता लगी। उस में भी अवसर पर कामयाबी नहीं हुई। अब इसमें शरीरका क्या दोष है? मन खराब रहता है, आंखें अन्दर घुसी जाती हैं, और अन्न भी अच्छी तरह नहीं पचता! अन्तमें वह बेचारा शीघ्र ही यमलोक की यात्रा करता है!! मनुष्यगणना से वह बात जानी गई है, कि—"अन्य लोगों की अपेक्षा बेचारा गरीब ग्रेजुएट बहुत जल्दी मर जाता है" (वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली का यही कुफल है) क्या ईश्वर की उसके ऊपर कोई ऐसी निर्दयता थोड़ी ही है कि वह जल्दी मर जावे। उस परम दयालु ने तो कम से कम सौ वर्ष तक की मनुष्य की आयु, नियत की है। ग्रेजुएटों के जल्दी मर जाने का कारण यही है कि—'शिक्षा इत्यादि का बोझा उनके ऊपर बहुत भारी आ पड़ता है।' ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं, जो अपने शरीरका स्वास्थ्य ठीक रखने के विषय में कुछ विचार करते हों। प्रत्येक मनुष्य को वैद्यक सम्बन्धी थोड़ा बहुत ज्ञान होना ही चाहिये। आश्विन में करेला खाने से पित्त की वृद्धि होती है और कार्त्तिक में दही खाने से ज्वरादिक प्राप्त होता हैं। इसलिये इस बात का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को होना चाहिये कि अमुक ऋतु में अमुक वस्तु सेवन करने से प्रकृति ठीक रहती है। विशेष कर आधिव्याधिका मूल कारण हमारा प्रमाद ही है। व्याधिग्रस्त होने के बाद औषधोपाय करने से कितनी हानि होती है? ऐसे रुग्ण व्यक्ति को पुत्रकलत्र भी जो अत्यन्त प्रिय होते हैं नहीं सुहाते। कार्य की हानि, उपयोगी समय का नाश, औषधोपचार सम्बन्धी खर्च, घरके लोगों की चिन्तितावस्था, डाक्टरों का कष्ट इत्यादि अनेकानेक आफतें आ पड़ती हैं और फिर एक बार जो प्रकृति विगड़ जाती है तो फिर वह सुधरकर पूर्ववत् कभी नहीं होती। इसी लिये महर्षि पतंजलि ने योग शास्त्र में लिखा है कि— "हेयं दुःखमनागतम्" अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को यह

प्रयत्न करना चाहिये कि भविष्य में दुःख न आने पावे। सबसे पहला कर्त्तव्य शरीर की रक्षा करना है। व्याधि होने के पहिले ही सब भाइयों को सावधान रहना चाहिये। देखिये, यह कितनी लज्जा की बात है कि हमारे भाइयों को इस बात का जरा भी ज्ञान नहीं रहता कि हमें सदैव किस प्रकार के अन्न का सेवन करना चाहिये। मनुष्य की साधारण आयुमर्यादा १०० वर्ष की है। "**जीवेम शरदः शतम्**" ऐसा वेद में वर्णन है। "**आयुर्यजमदग्नेः**" इत्यादि इसके प्रमाण हैं। योगाभ्यास के बल से ३०० वर्ष पर्यन्त मनुष्य जी सकता है। परन्तु आजकल १००० में सिर्फ १० मनुष्य कदाचित् ऐसे निकलेंगे" जो १०० वर्ष तक जीवित रह सकते हों। इसका मुख्य कारण यही है कि हम ब्रह्मचर्य, आचरण, खान पान इत्यादि बातों पर बिलकुल ध्यान नहीं देते। मनुष्य प्राणी यदि यह अच्छी तरह जानता हो कि—"आत्मरक्षण क्या है और शास्त्र के अनुसार वह कैसे किया जाता है।' इस बात का ज्ञान रखनेवाला हो तो सौ वर्ष तक सहज ही जीवित रह सकता है। हमारा दूसरा कर्त्तव्य जीविका है। शरीर पोषण के लिये मनुष्य को कोई न कोई उद्यम करना ही चाहिये उद्योग के बिना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। सारा संसार उद्योग करता है, परन्तु बहुत थोड़े मनुष्य इस बात पर ध्यान रखते हैं कि—"उद्योग ठीक है या नहीं। अनेक लोग प्रारब्ध के ही भरोसे बैठनेवाले होते हैं। हिन्दू और क्रिश्चियन या मुसलमान आदि विजातीय लोगों के प्रारब्ध के मानने में मत-भेद है। हम अपने पूर्वजन्मोपार्जित कर्मको प्रारब्ध समझते हैं और यह लोग खुदा (ईश्वर) की इच्छा को प्रारब्ध मानते हैं। हम समझते हैं कि हमको जिस फल की प्राप्ति होती है वह सब पूर्वजन्म के कर्मानुसार है। परन्तु यह जानना चाहिये कि बिना उद्योग केवल भाग्य के भरोसे ही, फल प्राप्ति नहीं होती। महाभारत में लिखा है—

यथा क्षेत्रं मृदुभूतं अद्भिराप्लावितं तथा।
जनयत्यंकुरं कर्म नृणां तद्वत्पुनर्भवम्॥

शां० प० अ० ३२१ श्लो० ३२०॥

पूर्वजन्म का कर्म केवल बीजरूप है। वह बीज यदि उद्यम रूपीभूमि में बोया नहीं गया, किन्तु सन्दूक में रखकर डाल दिया गया तो उससे फल कैसे मिल सकता है? यदि वह योग्य स्थल में बोया गया है, खाद डाली गई है, जल सिंचन किया गया है, तो फल की आशा रखी जा सकती है। प्रकाश और दृष्टि इन दोनों के संयोग से वस्तु दृष्टिगोचर हो सकती है। केवल प्रकाश या केवल दृष्टि से इच्छित फल की प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार उद्योग और प्रारब्ध के संयोग से फल प्राप्ति समझनी चाहिए। केवल प्रारब्ध से कुछ फल नहीं मिलता। उद्योग को विशेष प्राधान्य दिया गया है। महाभारत में व्यास मुनि ने बतलाया है :—

यश्च दिष्टपरो लोके यश्चापि हठवादिकः।
उभावपि शठावेतौ कर्मबुद्धिः प्रशस्यते॥
योहिदिष्ठमुपासीनो निर्विचेष्टः सुखं शयी।
अवसीदेत्स दुर्बुद्धिरामो घट इवोदके॥

म० भा० व० प० अ० ३२।

जो पुरुष प्रारब्ध पर सारा विश्वास रखकर उद्योग नहीं करता और चुपचाप बैठा रहता है वह नष्ट हो जाता है। संसार में प्रारब्ध का अवलम्बन करके रहने वाला और "यद्भावि तद्भवति' जो होना होगा सो होगा" कहनेवाला मूर्ख है। उद्योग के बिना सब व्यर्थ है। उद्योग में बुद्धि लगानेवाला पुरुष श्रेष्ठ बनता है। इस समय हम सब जिस भवन में एकत्र हुए हैं वह कुछ आप ही आप प्रारब्ध से निर्माण नहीं हुआ। जब अनेक पुरुषों ने अनेक प्रकार का उद्योग किया है, तब यह मन्दिर अस्तित्व में आया है। 'उद्योग से क्या कार्य होता है और प्रारब्ध में विश्वास रखने से मनुष्य की क्या दशा होती है' यह बात इङ्गलैंड और हमारे भारतवर्ष की दशा देखने से सहजही मालूम हो सकती है। शुक्रनीति में कहा है—"**धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्। अशक्तः पौरुषं कर्तुं "क्लीवा दैवमुपासते**"॥ वे माहात्मा, कि जिनका चरित्र

बन्दनीय हैं उद्योग को ही श्रेष्ठ मानते हैं। पुरुषार्थहीन क्लीब या नपुंसक ही उद्योग को नहीं मानता, और प्रारब्ध का शोर मचाता तथा उद्योग नहीं करता है। कवि कहता है :—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी—
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।

उद्योग से लक्ष्मी की प्राप्ति और सब कार्यों की सिद्धि होती है। इसलिये सब भाइयों को सर्वथा सतत उद्योग करना चाहिये। उद्योग करने के बाद जो "यदि न सिद्धति कोऽत्र दोषः' ऐसा कविका बचन है इसका अर्थ बड़े २ पदवीधर विद्वान् कहते हैं कि—"यत्न करने के बाद यदि कार्य सिद्ध न हो तो इस में हमारा क्या दोष ? हमसे जितना बना उतना हमने किया; अब हमारा कोई दोष नहीं रहा।" परन्तु यह अर्थ करने में ये लोग बड़ी भूल करते हैं। कविका कहने का अभिप्राय वास्तव में ऐसा नहीं है।—"कोऽत्रः दोषः" अर्थात् "यत्नेको दोषः ? अर्थात् यत्न करनेमें कौनसी त्रुटि रह गई ?

हमारे लिये क्या सर्वशक्तिमान् ईश्वरको उद्योग करना चाहिये ? हमको जो रोटीकी सदैव आवश्यकता रहती है वह क्या ईश्वर कर दिया करे ? ईश्वरका काम पृथ्वी आदि सृष्टिकी सब वस्तुओंकी रचना करना है और वह उसने किया है और करता भी है। जीवका काम जीवको करना चाहिये। 'ईश्वर देगा तो हम खायेंगे ऐसा कहना भ्रमसे भरा है। उद्योग अनेक प्रकारका है, जिसको जो अच्छा लगे उसे वह करना चाहिये। सारांश, शरीरकी रक्षाके लिये उद्योग सबको करना ही चाहिये प्रत्येक मनुष्यको ब्रह्मचर्य व्रतका आचरण करके कमसे कम २५ वर्षतक विद्याध्ययन करना चाहिये। इसके बाद धनोपार्जन करके फिर विवाह करना चाहिये। प्राचीन काल में यही प्रणाली थी। आजकल बहुतसे "जैंटिलमैन" धर्म छोड़ द्रव्योपार्जन करने लगते हैं। धर्मत्याग करने पर अधिक धन मिलता

हो तो भी उसका त्याग नहीं करना चाहिये। जिस धर्मसे परिणाम में दुःख प्राप्त हो वह सच्चा धर्म नहीं। ऐसे धर्मका त्यागही करना चाहिये। जिस धर्म से अपना हित है उसीको धर्म कहना चाहिये। और वास्तवमें धर्म है भी वही। इस समय सात-सात, आठ-आठ वर्ष के बच्चोंका, जिन्हें यह भी नहीं मालूम कि विवाह क्या है और उसका क्या उपयोग है, विवाह कर देते हैं यह कितनी खेदजनक बात है? राजपूतानेमें एक अच्छे गृहस्थ के घर उत्सव था। उसे मैंने स्वयं देखा। वर पाँच छः वर्ष की अवस्थाका था। विवाहका मुहूर्त रातका था। वर कन्या ऊंघने लगे। तब उनको एक तरफ सुला दिया। फेरे फिरने के पहले की सारी विधि पुरोहित महाराजने समाप्त करली थी। अब तो फेरा तो वरराजाको ही फिरना चाहिये। इसलिये उसका बाप उसके पास जाकर उठाने लगा। कहा—भाई! अब फेरा खाने समय आ गया; परन्तु वर बेचारे को यह ज्ञान कहा था कि फेरा कैसा खाया जाता है? उसके मन में यह आया कि मेरा पिता "फेरा"* अर्थात् 'पेरा' खानेके लिये उठाता है। वह बोला "पिताजी! मुझे भूख नहीं लगी है।" वरराजाका का एक चार-पांच वर्ष का छोटा भाई, जो पासही पड़ा था, बोला उठा "पिताजी चलो, मैं चलता हूँ; मुझे भूख लगी है।" तात्पर्य सिर्फ इतना ही है कि विवाह के समान उत्तम विधियां भी यथायोग्य पालन नहीं की जातीं। "मैं आपके बिना कुछ भी नहीं करूंगी। आपको छोड़ अन्यकी ओर चित्ताकर्षण नहीं होने दूंगी" इत्यादि प्रतिज्ञा वधूको विवाहके समय करनी पड़ती है। उसी प्रकार 'तेरी सम्मतिके बिना 'धर्मं च अर्थं च कामे च नाति चरामि'। इत्यादि प्रतिज्ञा वरको करनी पड़ती है। अथववेद के १४ वें कांडमें विवाह सम्बन्धी विषय का सम्पूर्ण वर्णन किया गया है। आज कल तो, जो प्रतिज्ञा करनी होती है, उसे सिर्फ पुरोहित मात्र बक जाता है। वर और वधूको उसके विषयमें लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता। क्योंकि उनका विवाह बाल्य-अवस्थामें हो जाता है। इसलिये प्रौढ़ होने पर दोनों यदि विवाह

*फेरा उस तरफ पेड़ा को भी कहते हैं।

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पु
पु परिग्रहण क्रमांक 4019

को अस्वीकारें और पुरोहितसे पूछें कि—इसने ऐसे प्रतिज्ञा कब की थी और यदि की हो तो हमें बतलाओ"। तब पुरोहित महाराज उसको क्या उत्तर देंगे ? प्राचीन काल में विवाह विधि वधूवरके इच्छानुसार होता था। सुभद्रा का अर्जुन के साथ विवाह कैसे हुआ सो सभी जानते हैं। उस समय बलभद्रजी जब अर्जुन पर क्रोधित हुए तब कृष्ण भगवान्ने उसका समाधान किया और बोले—

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत् कोऽनुमन्यते।
विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषो भुवि॥

उनका विवाह दोनों की सम्मतिसे हुआ। कन्या की इच्छा के विरुद्ध उसे पशु की तरह बेचना उचित नहीं। इसीप्रकार कुन्ती, सीता, द्रौपदी इत्यादि अनेक राजकन्यायें पौढ़ावस्थामें स्वयंवर विधिसे विवाहित हुई थीं। कुछ लोग कहते हैं कि इस विधिसे सिर्फ राजकन्याओंका विवाह होता था पर यह ठीक नहीं ब्राह्मण लोगों की कन्याओं (जैसे शुक्राचार्य की कन्या देवयानी) का स्वयंवर विधिसे विवाह हुआ था। इच्छानुसार वर न मिलने पर ब्रह्मचर्यव्रत पालन करके आमरण अविवाहित रही हुई अनेक स्त्रियोंके दृष्टान्त मौजूद हैं। गार्गी, सुलभा इत्यादिके चरित्रों परसे आपलोग जान लीजिये। इस विषयकी जानकारी के लिये हमारा बनाया हुआ "पुरुषार्थ प्रकाश" नामक पुस्तक देखने से सारी बातें मालूम हो जायगीं। स्त्रियों की तरह अनेक पुरुष जैसे भीष्म पितामह, हनुमान परशुराम इत्यादि ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके अपने पराक्रमका महत्व संसार में प्रसिद्ध कर गये हैं। कहाँ इन लोगोंका पुरुषार्थ और कहाँ आजकलके हमारे बाबू लोगों का पुरुषार्थ ? कुन्तीके पुत्रोंका पराक्रम कैसा था और आज कलके छोटे २ लड़के—लड़कियोंके विवाह से उत्पन्न होने वाले मनुष्यों का पुरुषार्थ कैसा है ? छोटी डब्बीमें एक बड़ा हाथी कैसे रह सकता है ? छोटी उम्रमें विवाह करनेसे अनेक हानियां होती हैं।

पूर्णवय प्राप्त होनेके बाद विवाह करना चाहिये। ऐसा न करनेवाला पाप भागी होता है। पूर्णावस्थामें विवाह न होनेसे भावी प्रजा अत्यन्त निर्बल उत्पन्न

होती है। जिसके मा-बाप स्वयं ही छोटी अवस्थामें हों उस बालककी रक्षा कैसे की जा सकती है? बालकका उनको कैसे ध्यान रह सकता है, और उसे सम्हालनेका काम वे कैसे कर सकते हैं? वे अप्रौढ़ माता-पिता लड़कोंको खेलने के लिये भी जाने नहीं देते, क्योंकि कसरत से होनेवाले लाभका उन्हें ज्ञान नहीं रहता। अपने बच्चों के खाने पीनेकी सम्हाल भी वे जैसी चाहिये वैसी नहीं रख सकते। इस कारण वे अज्ञान माँ-बापके बाहर से चोरी करके खाना सीखते हैं इससे वे अनेक व्याधियोंमें फंस जाते हैं। पेट फूल जाता है, हाथ पैर सूखकर लकड़ीसे हो जाते हैं। घड़ी भरमें सर्दी, घड़ी भरमें और कुछ, इस प्रकार अनेक व्याधियां लगी रहती हैं, अज्ञानी माँ-बाप सिर्फ सन्तान उत्पन्न करना जानते हैं पर उस उम्रमें उसका पालन करनेकी बुद्धि उनमें नहीं होती। शारीरिक विषयों को छोड़कर जब हम विद्याकी ओर ध्यान देते हैं तब वहाँ भी यही दुर्दशा दिखाई देती है। इसका कारण भी उपर्युक्त ही है। आजकल लोग अपनी गीर्वाण भाषा संस्कृतका पढना छोड़कर अंग्रेजी पढ़नेमें लग गये हैं। इतिहास पढाते समय राम-जनक प्रभृतिके चरित्र न बताकर औरङ्गजेब जैसोंके जन्मवृत्तान्त पढाये जाते हैं। इनके पढानेसे लड़कोंके मनपर बुरा असर पड़ता है। 'राज्य-प्राप्तिके लोभ में आकर अपने सगे भाइयोंको कैसे मारना' यह युक्ति उपरोक्त चरित्र पढकर लड़के सीख जाते हैं। श्री रामचन्द्र के समान महात्माओंका इतिहास सिखानेसे बन्धुप्रीति, पूज्यबुद्धि, माता-पिता की आज्ञाका पालन; सत्य बोलना, और सत्यपर ही चलना, पतिपत्नी-प्रेम, राजकीय चातुर्य, प्रजापालन, एक पत्नीव्रत, इत्यादि अनेक सद्गुण शिष्यगण सीखते और पूज्यबुद्धि बनते हैं। यही नहीं, वे स्वयं उसके अनुसार चलना भी सीखते हैं। बड़े २ विद्वान् होते हैं, बी० ए०, एम० ए० इत्यादि पदवियां प्राप्त करते हैं, तथापि आर्य धर्मके विषयमें कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं करते। आर्य धर्म क्या है? उसमें क्या तत्त्व है यह जाननेका वे कुछभी प्रयत्न नहीं करते और जब वे स्वयं नहीं जानते तो अपनेको पंडित माननेवाले अपने परिवारको उपर्युक्त बातें कैसे सिखा सकते हैं? मुसलमान लोग अपने बच्चोंको प्रारम्भसे ही कुरान शरीफ सिखाते हैं पर हम आर्य लोग अपने बच्चोंको

वेदका दर्शन मात्र भी नहीं कराते और आप जानते हैं कि क्रिश्चियन लोगोंका आज ऐसा 'अभ्युदय' क्यों हो रहा है ? इसका कारण उनकी एकमात्र धर्मश्रद्धा ही है। ग्लेडस्टेनके समान महान विद्वान बिना धर्मशिक्षाके उत्पन्न नहीं हो सकता। तम्बाकू पीनेसे आयु के पाँच वर्ष कम हो जाते हैं इस प्रकार कहने वाला डाक्टर स्वयं एकके बाद दूसरा चुरुट फूंकता रहता है। ऐसे उपदेशकोंके उपदेशका प्रभाव उनकी सन्तानों पर कैसा पड़ता है ? 'तम्बाकू मत पीयो' यह कहनेमें तो कुशल है परन्तु स्वयं पीते हैं इसी लिये बाप जहां बाहर गया कि उसके इस जिज्ञासासे कि 'इसमें क्या है' तम्बाकूका स्वाद लेने लगते हैं। स्वयं अपना आचरण सुधारे बिना अन्यको उपदेश करना मूर्खता है। बालकों में अनुकरण करनेकी शक्ति विशेष होती है इसलिये उनके समक्ष नीति विरुद्ध कुछ भी बोलना अथवा करना न चाहिये। कुछ दिन हुये, मुझे एक एम० ए० पास किया हुआ विद्वान मिला था। उसने एक शंका की कि—"कालेजमें प्रोफेसरोंने हमें बतलाया कि भूत पिशाच नहीं हैं और हम भी ऐसा ही समझते हैं परन्तु रातके समय जब हम अकेले स्मशानके समान एकान्त स्थानमें जाते हैं, तब हमको भूत, पिशाचका डर क्यों लगता है ? मैंने उससे पूछा कि—"तुम्हारी बाल्यावस्थामें भूत पिशाचोंकी बातें किसीने तुम्हारे सामने की थीं ?" उसने कहा हां, हमारी माता बालपनमें हमसे कहा करती थी कि—"रातको बाहर मत जाना वहां भूत प्रेत होंगे वे तुम्हें सतावगे'। तब मैंने उससे प्रत्युत्तरमें कहा कि "तुम्हारी माता ही एक भूत है और उसीने तुम्हें घेर रखा है। **"नास्ति वेदात् परं शास्त्रंनास्ति मातृसमो गुरुः"**—महाभारत। "वेदसे उत्तम कोई शास्त्र नहीं और माताके समान कोई गुरु नहीं।" जब देशका अभ्युदय विद्यासम्पन्न विदुषी स्त्रियोंके ऊपर अवलम्बित है तब स्त्रियोंको अवश्य शिक्षा देनी चाहिये। जिस प्रकार लड़कोंको विद्याभ्यास कराया जाता है उसी प्रकार लड़कियोंको भी करना चाहिये। उदाहरण लीजिये एक लड़का अपने बापके साथ उपवनमें घूमते हुए पूछने लगा "पिताजी ! यह फूल किसका है ? इस प्रश्न की ओर ध्यान न देकर बाप चलने लगा। जब जिज्ञासु भावसे बालकने पूछा था तब उसके मनकी

शङ्काका समाधान पिताको करना ही चाहिये था। बच्चोंको मुख्य शिक्षा माता पिताकी ही ओरसे मिलनी चाहिये। हम चार पाँच भाई फौजी मनुष्योंकी तरह एकसी चालसे नहीं चल सकते। हमारे पैर एक समान नहीं पड़ सकते क्योंकि वह विद्या हमने सीखीही नहीं। शिक्षाकी जबाबदारी माता पिताके ऊपर है। परन्तु पहले उन्हें अपना आचरण सुधारना चाहिये। पीछे बालकोंको शिक्षा देनी चाहिये और उनकी रक्षा करनी चाहिये यह तीसरा कर्तव्य है। "समाज" यह चौथा कर्तव्य है जिसके विषयमें हम आज विशेष विवेचन नहीं करते। पांचवां कर्तव्य "मनोरंजन" है मनको इस प्रकार विश्रान्ति देनी चाहिये कि मनोरंजन करनेमें धर्ममें बाधा न आने पावे। मनोरंजन विविध प्रकारसे किया जा सकता है। इसलिये जो मार्ग उपयुक्त और निर्भ्रान्त हो उसीको अवलम्बन करना चाहिये। छठा और अन्तका कर्त्तव्य "धर्म और ईश्वरोपासना" है। जब कोई मनुष्य ईश्वरका अस्तित्व नहीं मानता तो यही कहना चाहिये कि उसमें मनुष्यत्व ही नहीं है। वर्तमान समयमें आर्यरीतिसे ईश्वरका आस्तित्व मानने वाले बहुत कम लोग हैं। आफिसमें जोरसे बोलते समय भय लगता है कि हमारे साहब कहीं नाराज न हो जांय। परन्तु हमें परमेश्वरका जो साहबसे कहीं बड़ा और राजा महाराजाओंका भी महाराज तथा संसारका स्वामी है बिलकुल भय नहीं होता उसे प्रसन्न रखनेके लिये उसकी आज्ञाके अनुसार चलना मनुष्य मात्रका कर्तव्य है। सर्वशक्तिमान् प्रभुका भय रखकर उसकी भक्ति किये बिना मनुष्य पापाचरणसे बच नहीं सकता और पाप मार्गसे परावृत हुये बिना यह लोक तथा परलोक सिद्ध नहीं हो सकते। इसीलिये आप सब भाइयोंसे मेरा नम्र निवेदन है कि आप ईश्वरके परम भक्त बनकर इस लोक तथा परलोकका हित कर लीजिये। यही श्रेयस्कर और अभीष्ट है। इत्याशास्महे।

——

३

मानव-ज्ञान-स्रोत

इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार जलके उद्भवको स्रोत या झरना कहते हैं उसी प्रकार मनुष्यके ज्ञानके उद्भवको 'मानव-ज्ञान-स्रोत' कहते हैं। अब आज आप यह देखें कि मनुष्यके ज्ञानका उद्भव कहाँसे होता है। यह विषय बड़ा गहन है। आस्तिक लोग यह मानते हैं कि "परमेश्वरसे ज्ञानकी उत्पत्ति है" और नास्तिक लोग यह मानते हैं कि 'ज्ञानोत्पत्ति स्वाभाविक है (नैसर्गिक है), किसीने दी नहीं'।

"ज्ञान नहीं है' ऐसा अनुभव किसी मनुष्यको नहीं हुआ। प्रत्येक मनुष्य यह जानता है कि—"अमुक वस्तु बड़ा है, अथवा अमुक वस्तु "अन्य कोई पदार्थ है"। इसीसे स्पष्ट मालूम होती है कि ज्ञान है। यह कोई नहीं कह सकता कि "ज्ञान नहीं है"। जिस प्रकार आस्तिकको ज्ञानका अस्तित्व स्वीकार है उसी प्रकार नास्तिकको भी है। मतभेद केवल इतना ही है कि एक उसको यदि नैसर्गिक बतलाता है तो दूसरा ईश्वरदत्त मानता है। अब यह देखना है कि आस्तिक और नास्तिकके मतभेदों में कौन सच है। उत्तर रामचरित में कहा है कि मनुष्यमें जानने की शक्ति स्वाभाविक होती है, परन्तु निमित्तके बिना ज्ञान नहीं होता। एक विद्वान गुरु दो विद्यार्थियोंको बराबर परिश्रमसे पढ़ाता है, पर उनमेंसे एक पढ़ता है और दूसरे को पढ़ना अच्छा नहीं लगता। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि ज्ञानशक्ति दोनोंमें है, तथापि पढ़नेकी शक्ति समान नहीं है। ज्ञानका अस्तित्व दो रीतियोंसे माना जा सकता है, एक परमेश्वरदत्त और दूसरा नैसर्गिक, ईश्वरदत्त ज्ञान माननेमें भी दो पक्ष हैं, आर्य लोग यह मानते हैं कि ईश्वरने वेदके द्वारा ज्ञान दिया है और मुसलमान तथा क्रिश्चियन यह मानते हैं कि वह "कुरान और बाइबिलके द्वारा मिला है।" परमेश्वरदत्त ज्ञान माननेकी

यह पहिली रीति हुई। दूसरी रीतिवालों का कहना है कि परमेश्वरने पुस्तक द्वारा ज्ञान नहीं दिया है, किन्तु प्रत्येकको थोड़ी बहुत ज्ञानशक्ति दी हैं। दूसरे पक्षका कहना है कि परमेश्वरने ज्ञान नहीं दिया। वह धीरे २ बढ़ता जाता है। नास्तिक पक्षवालोंके साथ वादविवाद करनेका आज अवसर नहीं है। उनके साथ वाद करते समय पहले यह विवाद करना पड़ेगा कि ईश्वर है या नहीं। यह आजका विषय नहीं है। आज हमें इस विषयमें विचार करना है कि जो परमेश्वरको मानते हैं उनका कहना क्या है। माता पिता लड़कोंको जन्म देनेके बाद उनका प्रबन्ध रखनेमें क्या असावधान रह सकते हैं? हमसब मनुष्यमात्र जिस परम कृपालु दयाघनकी सन्तान हैं, उसको हमारे हितअनहितके विषयमें कितनी चिन्ता होनी चाहिये। जिसने हम सबको उत्पन्न किया है, वह क्या हमारा कुछ भी प्रबन्ध न करते हुए हमको जंगलमें रोते हुए अकेला छोड़ देगा? उसे अपनी सन्तान की कुछ भी चिन्ता नहीं? जैसे माँ बाप अपने लड़कोंको जंगलमें छोड़नेका दुष्कर्म नहीं कर सकते, उसी प्रकार परम कृपालु ईश्वरसे भी ऐसा कार्य नहीं हो सकता, कदापि किसी अवसर में भी नहीं हो सकता। पहले हीसे मनुष्य का सारा प्रबन्ध किये बिना वह उसे उत्पन्न नहीं करता। पहले ही से अपनी प्रजाकी सारी व्यवस्था कर देनेके बाद मनुष्यको उत्पन्न करता है। ऐसा ही होना चाहिये। मनुष्यके ऊपर दुःख न आवे इसलिये उसने उसकी उत्पत्तिके साथ ही ज्ञानका भी प्रबन्ध कर रखा है। इसलिये यह बात ईश्वरका अस्तित्व माननेवालोंको अवश्य स्वीकार करनी चाहिये। इससे यह सिद्ध होता है कि ज्ञान ईश्वर प्रणीत है। अच्छा, अब जो लोग यह कहते हैं कि "ज्ञान शनैः शनैः बढ़ता जाता है, वह किसीका दिया हुआ नहीं।" उनका कहना कहाँ तक सच है यह देखना चाहिये। इस सृष्टिको उत्पन्न हुए करोड़ों वर्ष होगये। क्रिश्चियन लोग पृथ्वीकी उत्पत्ति पाँच हजार वर्षके अन्दर मानते हैं, परन्तु वे अब समझने लगे हैं कि हमारा यह कथन भ्रमयुक्त है। 'महाभारतके युद्धको ही पाँच हजार से अधिक वर्ष हो गये' यह बात सप्रमाण सिद्ध हो चुकी है कि युद्धके बहुत पहले वह उत्पन्न हुई होगी। इतने विशाल समयकी अवधिमें 'कोई पुरुष गुरुके बिना ज्ञानी हुआ हो' ऐसे

स्वयं सिद्ध ज्ञानीका एक भी दृष्टान्त उपलब्ध नहीं होता। विद्याप्राप्तिके लिये गुरुकी आवश्यकता होती हो है। गुरुके बिना त्रिकालमें भी विद्या प्राप्त नहीं हो हो सकती। जब यह बात है तब सृष्टिके प्रारम्भमें गुरुके बिना विद्या कैसे प्राप्त हुई! प्राचीन कालमें बड़े २ ज्ञानी और विद्या सम्पन्न लोग हो गये हैं' यह बात मैं अनेक संस्कृत ग्रन्थों के आधारपर प्रमाण सहित सिद्ध कर सकता हूँ। कोई यह न समझे कि मेरा कहना मेरी निजकी कल्पना है। इस विषयके हमारे पास अनेक सबल प्रमाण हैं। इस बातको झूठ कहनेवाला अवश्यही झूठी गप्पें मारता है। पर सप्रमाण कुछ नहीं कहता गुरुके बिना ज्ञान नहीं होता यह स्पष्ट है। इससे यह भी निर्विवाद है कि उन प्राचीन ज्ञानियोंका भी कोई गुरु होना चाहिये। हमारे प्राचीन ऋषियोंका बर्त्ताव ऐसा था, कि जिससे वे अपना सारा जीवन एक-एकही विषयमें लगाकर उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त करते थे। आज कलके लोगोंके मनकी दशा गिरगिटके रंगकी तरह दिनमें तीनवार बदला करती है, दस पन्द्रह मिनट तक भी उनका मन स्थिर नहीं रहता। तब फिर बड़े २ गहन विषयोंका ज्ञान सम्पादन करके वाद विवाद करनेकी कुशलता हम लोगोंमें कहांसे आवेगी? महर्षि पातञ्जलि कृत योगशास्त्रमें इस विषयका विवेचन यथातथ्य किया गया है।

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"।

इसमें सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी परमात्माको सबका गुरु माना है। इसके पहले किसीको भी ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हुई थी। ज्ञान रूपी स्रोतका यह प्रारम्भिक स्थान है। सूर्यका प्रकाश चाहे जैसा तेजस्वी और आंखके लिये असह्य हो, एक जन्मान्ध पुरुषसे उस प्रकाशका स्वरूप और अस्तित्व कहिये, उसपर वह बिलकुल विश्वास नहीं करेगा। बस इसी तरह बिना योग्यताके केवल चर्म चक्षुसे इस विषयका ज्ञान नहीं होसकता। "गुरु बिना ज्ञान नहीं होता यह स्पष्ट है, और वह गुरु परमेश्वर ही हैं यह आस्तिक लोगोंको स्वीकार करना ही चाहिये। वेद ज्ञानका भण्डार है। "परमेश्वरने वेद द्वारा जनसमूहमें विद्याको

फैलाया है" ऐसा एक पक्षका कहना है। अन्य पक्ष कहता है कि "शनैः शनैः मनुष्यकी योग्यताके अनुसार उसे ईश्वरने ज्ञान दिया है" यह उनका मत दोष रहित नहीं है। क्योंकि यह बात हम सहज हीमें जान सकते हैं कि पक्षका ज्ञान दूसरे पक्षका ज्ञानसे उल्टा और भिन्न है। ईश्वरदत्त ज्ञानमें भिन्नताकी सम्भावना नहीं, क्योंकि सर्व शक्तिमान् न्यायी ईश्वर एकको एक और दूसरेको दूसरेको कभी नहीं देता। जब सृष्टिक्रममें सर्वत्र ईश्वरकी समता दृष्टिमें पड़ती है, तब इसी एक विषयमें उसका प्रतिकूल व्यहार कैसे हो सकता है? इससे स्पष्ट है कि परमेश्वरने योग्यताके अनुसार शनैः शनैः मनुष्यको भिन्न २ ज्ञान नहीं दिया है। प्रत्युत सबको एक समान ही ज्ञान दिया है। और वह आर्य लोगोंके मतानुसार वेद द्वारा ही दिया हुआ समझना चाहिये। आर्य लोग जिस प्रकार वेदको ईश्वरप्रणीत मानते हैं, उसी तरह मुसल्मान कुरानको मानते हैं। क्रिश्चयन लोग बाईबिलको मानते हैं। जब ईश्वर एक ही हैं, तब यह बिलकुल असम्भव है कि उसने तीन पुस्तकें तीन भिन्न २ समयोंमें उत्पन्न की हों। क्रिश्चयन और मुसल्मान भाई कहते हैं कि "पहलेकी भूलोंको सुधारनेके लिये उसे दूसरी नवीन पुस्तकें बनानेकी आवश्यकता हुई।" पर उनके इस कथनमें कुछ भी सार नहीं। ईश्वरके सर्वोत्तम गुणोंपर विचार करते हुये यह कहना "कि उसके हाथसे ऐसी भूलें होती है और पीछेसे वह उनका सुधार करता है। मानो ईश्वरकी अवहेलना करनी है। यह नास्तिकताकी ही श्रेणीमें समझना चाहिये। जिसके हाथसे भूल हो वह ईश्वर ही कैसा? यह कहना कैसे सम्भव है कि ईश्वरने तीन पुस्तकें भिन्न समयमें बनाईं? तीन नहीं, किन्तु एक पुस्तक अवश्य ही उसकी रची हुई होनी चाहिये। उन तीन पुस्तकोंमेंसे ईश्वरप्रणीत कौन सी पुस्तक है, इसका हमें यहाँ विचार करना है। जबतक मनुष्य पक्षपातकी दृष्टिसे बर्ताव करता है, तबतक उसमें सत्यासत्य निर्णय करने की शक्ति नहीं आती। परन्तु जिज्ञासु लोग सिर्फ यथार्थको ही ग्रहण करते हैं। राज्याधिकार, व्यापार आदि व्यवहार, रणसंग्राम, जयविजय, इत्यादि सब एक तरफ रख हमें यह देखना चाहिये कि—"सच क्या है, और ईश्वरप्रणीत पुस्तक कौनसी है।" संसारमें जितना कुछ पीला है; वह

सब सुवर्ण नहीं है। सुवर्णकी तरह पीतल भी पीले रंगका होता है। अग्नि उसे कहना चाहिये, जिसमें दहनशक्ति हो, अन्य लक्षणयुक्त वस्तु को अग्नि नहीं कह सकते। बस इसी तरह अलौकिक ईश्वरतुल्य शक्ति हो, उसीको 'ईश्वर' कहना चाहिये। और सृष्टिके आरंभमें जो पुस्तक निर्माण हुई हो, उसे ईश्वरप्रणीत मानना चाहिये। सृष्टिकी उत्पत्तिके बाद बहुत समय पीछे निर्मित होनेवाली पुस्तक को ईश्वरप्रणीत नहीं कह सकते। बस, जब कोई राजा किसी नवीन राज्योंको अपने अधिकारमें लेता है, तब वह उस राज्यमें सर्वत्र शान्ति फैलानेके लिये पिनलकोडके समान एक कानून जारी करता है। इसी प्रकार इस पृथ्वीके समान एक बड़े राज्य में बसने वाले लोगोंके लिये ईश्वरके द्वारा कोई न कोई न्यायपुस्तक अवश्य निर्मित होनी चाहिये। जिस राज्यमें किसी प्रकारका भी नियम नहीं होता और छोटे बड़े सब अपराधियोंको एकही दण्ड दिया जाता है वह राज्य राजाके लिये एक कलंक स्वरूप है, परन्तु ईश्वर सब राजाओंमें एक सच्चा और न्यायी राजा है। उसके हाथसे "अन्धेर राज्य" जैसा व्यवहार त्रिकालमें भी नहीं हो सकता। उसके राज्यमें सर्वत्र न्याय आचरण होनेके लिये कोई नीतिग्रन्थ अवश्य होना चाहिये। अब नीतिग्रन्थ कौन है यही विचार करना आजका हमारा कर्तव्य है। संसारके सारे तत्ववेत्ता वेदका प्राचीनत्व स्वीकार करते है। अंगरेज पंडित प्रोफेसर सर मोक्षमूलर भी इस बातको स्वीकार करते हैं। निदान यह बात सिद्ध हो गई है कि दुनियांकी लायब्रेरी (पुस्तकालय) में वेद ही सबसे प्रथम अतएव प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। कुरान शरीफको निर्मित हुए अभी सिर्फ १३०० वर्ष मात्र हुए है वह हजरत मुहम्मद पैगम्बर साहबका बनाया हुआ है बाईबिल को बने कितने वर्ष हुए सो बतानेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि छोटे बच्चे भी इस बातको जानते हैं कि आजकल ईसवी सन् १८८४ * चल रहा है। मैंने पारसियोंका गाथा ग्रन्थ देखा हैं। उस परसे मैं कह सकता हूँ कि पारसी लोगोंके पूज्य साधु जर दोस्त और व्यास मुनिका वादविवाद हुआ है।

* जिस वर्ष स्वामी जी ने व्याख्यान दिया था।

इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि परसी लोगोंकी पुस्तकसे भी हमारा वेद पुराना है महाभारत ग्रन्थको बने पाँच हजार वर्षसे कुछ अधिक हुए। इससे भी बहुत पहले बाल्मीकीय रामायणका निर्माण हुआ। और बाल्मीकीय रामायणसे भी बहुतकाल पूर्व हमारे वेद उत्पन्न हुए। वेदको हुए बहुत बड़ा काल होगया। इसके पहलेकी कोई भी पुस्तक नहीं पाई जाती। सबसे पहले वेद ही ग्रन्थ है। यदि कोई ईश्वरनिर्मित पुस्तक हो सकती है तो वह वेद ही है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। सत्य और अखण्ड ज्ञानका लक्षण यह हैकि उसमें सृष्टिक्रमके विरुद्ध बात न होनी चाहिये, भूगोल में हिन्दुस्तानके पश्चिम अफगानिस्तान लिखा हुआ हैं।– अब उसे यदि कोई नकशेमें पूर्व दिशाकी ओर बतलावे तो यह परस्पर विरोध है। नकशा और भूगोल यदि एक ही ग्रन्थकारने बनाये हों तो वह अविद्वान् होना चाहिये। इसी प्रकार वेदमें यदि सृष्टिक्रमके विरुद्ध कोई बात हो तो उसका कर्त्ता भी अविद्वन् होना चाहिये। अथवा उसका कर्त्ता और ईश्वर दोनों भिन्न २ होने चाहिये। ईश्वर सर्वज्ञ सर्वविद्याकला प्रवीण है और वह अविद्वान् नहीं है। उसके हाथसे परस्पर विरुद्ध बात कदापि नहीं हो सकती। पुस्तक में कुछ और ही लिखा हो और सृष्टिक्रम दूसरा ही हो ऐसा उससे कभी नहीं हो सकता। ईश्वरकृत पुस्तकमें कोई भी दोष न होना चाहिये। और होना सम्भव भी नहीं। आजकलके कितने ही विद्वान् प्रश्न करते हैं, कि तुम वेदको तो ईश्वरकृत मानते हो, परन्तु उसमें जो ऊटपटाग बातें लिखी हैं सो क्या हैं? उनका यह आक्षेप ऊपरसे देखनेमें तो सत्यभासता है, तथापि इसमें सत्यता कितनी है सो हमें देखनी चाहिये। वेद में क्या-क्या दोष है इसका हमें अब विचार करना चाहिये।

"कर्त्ताके बिना कार्य नहीं होता" यह सृष्टिक्रमका एक मुख्य सिद्धान्त है। "बाप नहीं पर मैं हूँ" यह कहना कितनी मूर्खतासे भरा हुआ है? जिस पुस्तकमें मावापके बिना किसीके उत्पन्न होनेका वर्णन हो वह पुस्तक ईश्वरप्रणीत कभी नहीं हो सकती। वेदमें सृष्टिक्रमके विरुद्ध कुछ नहीं लिखा है। यह बात वेदका मर्म

जाननेवाले ही जान सकते हैं। हमें यह अभिमान सदैव रखना चाहिये कि हम आर्य हैं। हमारे पूर्वज सब विद्याओंमें कुशल थे।" पर बड़े खेद और लज्जाकी बात है कि वेदका वास्तविक अर्थ हममेंसे अनेक विद्वान् कहलाने वाले भी नहीं जानते। वेदमें परस्पर विरुद्ध कोई बात भी नहीं मिल सकती। हमें यदि इस प्रकारका परस्पर विरोध वेदमें कहीं भासता हो तो इसका कारण यही है कि—हम वेदका वास्तविक अर्थ नहीं जानते।' वेदमें पक्षपातयुक्त कोई भी बात लिखी हुई नहीं देखी जाती। हमारे ऋषियोंको "उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" की शिक्षा किससे मिली थी? केवल वेदही इस शिक्षाका कारण था। वेदमें यह बात नहीं कि एक देश अथवा एक जाति का कल्याण हो और दूसरेका न हो। परमेश्वरके लिये सब प्राणी एकसे हैं। आर्य, शूद्र, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, कसाई, इत्यादि भेद उसके पास नहीं। सारी मनुष्य जाति ही नहीं, किन्तु सर्व प्राणीमात्र उसे समान हैं। लड़ाई झगड़ा जो कुछ होता है सो सब हमारे दुराग्रहसे ही। वेदमें पूर्ण न्याय हैं परन्तु जो कोई मनुष्य हमें बिना कारण दुःख दे तो क्रिश्चियन लोगोंके पुस्तकके अनुसार उदारबुद्धिसे "एक थप्पर खानेके बाद दूसरा गाल आगे न करते हुये" अपनी रक्षाके लिये न्यायसे उसका प्रतिकार करना चाहिये। (उसका निवारण करना चाहिये) उसको समझाना चाहिये। ऐसा करना कोई सृष्टिक्रमके विरुद्ध बात नहीं। इसे सृष्टिक्रमके अनुसार ही समझना चाहिये। सब प्राणी ईश्वर निर्मित है। वह एकको प्रिय और दूसरेको अप्रिय कभी नहीं समझता। जब सभी उसकी प्रजा है तब वह यह कदापि नहीं कह सकता कि अमुकको मार डालो। हिंसा करना जब ईश्वरको अप्रिय है, तब वेदमें हिंसा करनेके लिये वह कैसे आज्ञा दे सकता है। कई लोग अपनेको बहुत बुद्धिमान और चतुर समझते हैं और कहते हैं कि वेदमें हिंसा करनेके लिये सम्मति है। परन्तु यह उनकी भारी भूल है। संस्कृत भाषा ऐसी है जिसमें शब्दोंके अनेक गर्भित अर्थ होते हैं। एक-एक शब्दके भिन्न २ अनेक अर्थ होते हैं। जहाँ जो शब्द युक्त हो, वहाँ उसकी योजना और अर्थ करना चाहिये। वेदके शब्दका योग्य अर्थ करते समय बहुत प्रमाद हुआ है, और भी होगा। "सैन्धव" का अर्थ

,घोड़ा' और "नमक" है, परन्तु भोजनादिकके समय सैंधव शब्द का प्रयोग आया हो तो वहां इसका अर्थ योग्य और युक्त न कहते हुये नमक करना चाहिए यदि कोई कहे कि हमारे पूर्वज "सैंधव अर्थात् घोड़ेका उपयोग करते थे अर्थात् भोजनमें घोड़ेका मांस खाते थे" तो इस कुत्सित अर्थको कौन स्वीकार करेगा ? अर्थ ऐसा करना चाहिये कि जिससे पूर्वापर सम्बन्धके साथ संदर्भ हो। लोगों को यह बतलानेके लिये कि हमारा कहना सत्य है शब्दोंका मनमाना और तोड़ मरोड़ अर्थ करके लोगोंके मनपर झूठी बात न बैठानी चाहिये। अदिति शब्दका मनमाना अर्थ कर के विद्वान् वेदकी हंसी उड़ाते हैं। जैसे वह कहते है कि "अदिति हमारे चतुर सूर्यकी माता है।" सूर्य अदितिके उदरमें कैसे समासका इससे जान पड़ता हैं कि तुम्हारे वेदमें सच्ची बातें बहुत कम है। जिसको तुम सच्चा कहते हो वह निरी कल्पना है।" इस प्रकारके असंगत प्रश्न करनेवालों पर हमें दया आती है अदिति शब्दका अर्थ प्रकाश अन्तरिक्ष, माता, पिता इत्यादि है और ऐसे ही अर्थ का मेल भी मिलता है। सम्प्रदायी लोग अर्थका अनर्थ करके कैसी बड़ी भूलें कर डालते हैं अन्तरिक्षमें सूर्य उत्पन्न हुआ ऐसा यार्थार्थ न करते हुए मनमाना अर्थ करके वेदके समान पूज्य ग्रन्थको दोष लगाने लगे हैं!!

"अहिंसा परमो धर्मः" यह तत्व वेदमें सब जगह मिलता है। ऐसा होते हुए यह कहना कि—"हिंसा करनेमें वेदकी सम्मति है" कितना असम्भव लगता है। गोमेध, अजामेध, अश्वमेध, इत्यादिके अर्थमें भी तो लोग भयंकर भूलें करते हैं। यह सिद्ध करनेके लिये लोग बद्धपरिकर होरहे हैं कि प्राचीन कालमें हिन्दुओंमें हिंसा होती थी। अजका एक नाम "गो" है और घृतका नाम "मेध" है। तथापि 'गोमेध' का अर्थ गौकी हिंसा करते हैं। गायको मातासे भी अधिक मानकर पूजनेवाली केवल हिन्दू जाति ही है। ऐसी पूज्य मानी हुई गोमाताकों क्या वे कभी मार सकते हैं ? लोग अर्थका अनर्थ करके अनेक कुतर्क करते हैं। यह बड़े खेदकी बात है। "वेदमें हिंसा बिलकुल नहीं हैं। इस विषय पर मैं एक पुस्तक तैयार कर रहा हूँ। मैं यह बात अनेक

संस्कृत ग्रन्थोंके आधार पर सप्रमाण सिद्ध करनेवाला हूँ कि—'हम लोग मांसाहारी न थे'। अश्वमेध, अजामेध इत्यादि के अर्थका भी अनर्थ हुआ है। 'अश्व' का अर्थ ईश्वर होता है तथा 'अजा' का अर्थ अजन्मा और बकरी भी होता है, पर इस जगह ऐसा करना अनुचित है। हव्यपदार्थ मांस नहीं हो सकता कपूर, कस्तूरी, चन्दन, अगर इत्यादि सुगन्धित पदार्थोंका ही हवन होता है। हवन करनेके मुख्य उद्देश्य वायु शुद्ध करना है। मांसका हवन करनेसे हवा शुद्ध नहीं होगी, प्रत्युत बिगड़ेगी "प्राणियोंकी हत्या करनेसे नरककी प्राप्ति होती है।' मान लो कि प्राणियोंकी हत्या करनेसे यदि स्वर्ग प्राप्त हो तो नरककी प्राप्तिके लिये क्या करना चाहिये? यह एक कविका कथन है और ठीक है। यह मैं अच्छी तरह सिद्ध कर दूंगा कि—वेदमें हिंसा नहीं है।' इसी प्रकार जिस ग्रन्थमें किसीकी निन्दा या स्तुति नहीं, वही ग्रन्थ ईश्वरकृत होना चाहिये, वेदमें यदि कर्त्ता के तौरपर किसीका नाम होता तो उसे मानव कृत पुस्तक मानते। क्योंकि कर्त्ताकी जगह किसीका नाम आनेसे यह समझना चाहिये कि ग्रन्थके पहले उसका कर्त्ता था। परन्तु वेदमें ऐसा कोई भी नाम नहीं। यह ईश्वर निर्मित ही है। सृष्टिके प्रलयकालमें अन्तर्धान हो जाता है। उसका आदि या अन्त नहीं अर्थात् वह अनादि है। पूर्वमीमांसामें (जिसको कर्ममीमांसा भी कहते हैं) कहा है कि वेदमें सर्वसाधारण पदार्थोंका ही वर्णन है परन्तु "श्रुति सामान्यमात्रम्।" विशेष व्यक्तिका उसमें वर्णन नहीं। इससे भी मालूम होता है कि वेद मानवप्रणीत नहीं है। सृष्टिके आदि और अन्तमें जो विद्या रहती है वही परमेश्वरदत्त है। अनेक मतमतांतर जो देखे जाते हैं वे सब मानवकृत ग्रन्थ में ही होते हैं।

ईश्वरप्रणीत पुस्तकमें पूर्वापर विरोध नहीं होता। कुरान इत्यादि ग्रन्थोंमें लिखा है कि "ईश्वरने पहलेके सब ग्रन्थोंको रद्द करके यह कुरान शरीफ नवीन पुस्तक रची है।" परन्तु ऐसा कहना मानो ईश्वरको दोषभागी ठहराना है। पहले जो कुछ भूल हुई थी उसे सुधारनेके लिये यह नवीन ग्रन्थ बनाना पड़ा इससे सिद्ध है कि ईश्वरसे पहले भूल हुई थी। मनुष्यकी तरह यदि ईश्वर भी भूल करने

लगे तो फिर वह ईश्वर काहेका ? उससे त्रिकालमें भी भूल नहीं हो सकती। और जब भूल नहीं तब उसे सुधारनेकी आवश्यकता ही क्या ? न ईश्वरको पहलेकी पुस्तक रद्द करनेका मौका आया और न भविष्यत्में आयगा। आप विचार सकते हैं, कि ईश्वरप्रणीत पुस्तक कौनसी है। बाइबिल और अन्य धर्म पुस्तकोंका भी यही हाल समझ लीजिये। ईश्वर प्रणीत यदि कोई पुस्तक है तो वह वेद ही है यह सिद्ध हो चुका है। वे कहते हैं कि 'यजुर्वेदके चालीसवें अध्यायके आठवें मंत्रमें कहा है कि ईश्वर निराकार है' "सपर्यगाच्छुक्रमकायम-व्रणम्" इत्यादि। और दूसरी जगह कहा है कि ईश्वर "सहस्रशीर्षासहस्राक्ष" इत्यादि है यह क्या पूर्वापर विरोध नहीं है ? परन्तु अत्यन्त खेदकी बात है कि यथार्थ ज्ञान न होनेसे अर्थ करनेमें वे भूल करते हैं।

वेदका गर्भित अर्थ बहुत सा परिश्रम किये बिना सहज ही समझमें नहीं आता। रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकरकी एक आध पुस्तक पढ़कर अथवा कोषकी सहायतासे वेदका अर्थ समझनेकी योग्यता आजावे, सो नहीं हो सकता। सहस्रशीर्षा इत्यादि मंत्र का अर्थ लोग यों करते हैं कि ईश्वरके हजार मुंह हजार आंखें और हजार हाथपैर इत्यादि हैं पर ऐसा नहीं है। जैसे कि यह कहें कि "आज सभामें पांचसौ आदमी थे अर्थात् पांचसौ मनुष्य थे। इसी प्रकार ईश्वरके हजार मस्तक हैं इसका मतलब यह है कि जिसमें हजारों मनुष्य रहते हैं वह सहस्रशीर्षा ईश्वर है। यह कहना अलंकारिक है। "जहाँ पंच वहां परमेश्वर" यह कहावत सुप्रसिद्ध हैं। बस "सहस्रशीर्षा" का गर्भित अर्थ भी ऐसा ही है। जिस सर्व-व्यापक परमेश्वरमें यह जगत समाविष्ट है उसे तू मान ऐसा उसका वास्तविक अर्थ है। इसमें कोई पूर्वापर दोष नहीं आता। प्रत्येक ग्रन्थकार ग्रन्थके आदि और अन्तमें अपना नाम और सम्वत् लिखता है। वेदमें यह कुछ नहीं देखा जाता। वह मनुष्य प्रणीत नहीं है। वेदकी उत्पति परमेश्वसे ही हुई है यह उसमें लिखा है।

"वेद व्यास" का अर्थ है वेदका व्यास। जैसे कि वृक्षमें व्यास एक सिरेसे दूसरे सिरे तक जाता है अर्थात् उसमें निष्णात होता है, उसीको "वेद व्यास"

कहते हैं। वेदके समान गहन फिलासफीका कर्त्ता कितना बड़ा विद्वान् होना चाहिये ? ऐसा श्रीशंकराचार्यने भी "शास्त्रयोनित्वात्' इस सूत्रके भाष्यमें कहा है। कणाद ऋषि भी कहते हैं कि—"वेद हमें प्रमाणभूत मानना चाहिये। क्योंकि उसमें सारी बातें बुद्धिपूर्वक हैं। जैसे सूर्य स्वयं प्रकाशित होकर अन्य पदार्थोंको प्रकाश देता है वैसे ही वेद स्वतः प्रमाण है। सूर्यकोढूंढ़नेके लिये प्रकाशकी आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार वेद को दूसरे प्रमाणों की आवश्यकता नहीं "बाबा वाक्यं प्रमाणम्" के अनुसार मान लेने योग्य यह नहीं है। न्याय शास्त्रसे यह सिद्ध होता है। अपने अनुभवमें जो आवे उसीको सत्य मानना चाहिये। निम्नलिखित वार्त्ताके अनुसार बिचार शून्य होकर मूर्खतासे यह न मान लेना चाहिये कि शास्त्रमें जो कुछ है वह सब सत्य ही है। एक समय ऐसा हुआ कि किसी अज्ञानी मनुष्यसे एक आदमीने जाकर कहा कि "अरे तू यहां आनन्दमें बैठा है, और तेरी लुगाईका क्या हाल है सो तुझको कुछ भी पता नहीं। उस बिचारी पर बड़ा भारी संकट आ पड़ा है। उसका पति मर गया हैं और वह विचारी विधवा होगई हैं। यह दुःखात्मक समाचार सुनकर वह अज्ञानी मनुष्य छाती पीट २ कर शोक करने लगा और गदगद कंठ होकर राने लगा। उस मूर्ख को यह पता न था कि जीते हुए पतिकी लुगाई विधवा कैसे हो सकती हैं ? तात्पर्य यह कि हम लोग सारासार विचार न करते हुए केवल काल्पनिक शास्त्रोंपर भरोसा रख व्यर्थ भ्रममें पड़ते हैं। शास्त्रमें कहा हैं यहां एक मुख्य कारण नहीं है किन्तु अति स्पष्ट रीतिसे सिद्ध हो सकता है। इसीसे हम कह सकते हैं कि वेद ही केवल ईश्वर प्रणीत है ईश्वरके अतिरिक्त वे और किसीसे रचे नहीं गये। इसी तरह वे किसी देश भाषामें भी लिखे नहीं गये। यदि किसी देश भाषामें होते तो उन्हें मनुष्य प्रणीत कह सकते थे। वेदकी भाषा बिलकुल भिन्न और स्वतन्त्र है। जो कोई कहता है कि वेद संस्कृतमें हैं यह उनकी भूल है। वेदकी भाषा और संस्कृत भाषा अलग हैं। वेद संस्कृतमें नहीं यह सुनते ही कितने लोग मारने दौड़ेंगे। वे कहेंगे कि यह कहांका

गप्पाष्टक लड़ा रहा है। पर किसीको यह नहीं समझना चाहिये कि मैं ही ऐसा कहत हूँ। अंग्रेज महा पण्डित मोक्षमूलरने कहा है कि संस्कृतमें पाणिनिकी पुस्तक सबसे श्रेष्ठ है। और वही पाणिनि कहता है कि वेदकी भाषा और संस्कृत भाषा दोनों भिन्न २ हैं। जैसे आजकल तुम्हारी हमारी भाषा मराठी, गुजराती, हिन्दी इत्यादि हैं, उसी प्रकार प्राचीन कालमें आर्य लोगोंकी भाषा संस्कृत थी। परन्तु वह भाषा कहांसे निर्माण हुई ? वेद ही उसका मूल है। वेदसे जैसे संस्कृत हुई है उसी तरह संस्कृत से प्राकृत, मराठी, गुजराती, हिन्दी, बंगला, कनाडी इत्यादि अनेक देश भाषायें बनी हैं। संस्कृतके आधारसे कुछ वेदभाषा नहीं बनी है। वेदभाषा संस्कृत भाषासे बहुत पहलेकी है। 'वेद में मतमतान्तर बिलकुल नहीं'। इसीसे सिद्ध होता है कि वह एक हीके द्वारा बना हुआ है और वह एक सर्वशक्तिमान् ईश्वरही है।

वेदमें पुनर्जन्म माना गया है। पुनर्जन्म न माननेवालेके प्रति यह प्रश्न है कि एककी आंख फूटी होती है, एक लूला होता है, एक गूंगा होता है और एक बहिरा होता है ऐसे नाना प्रकार के मनुष्य हमारी दृष्टि पड़ते है, ऐसा होनेका क्या कारण है ? इसके जबाबमें प्रतिपक्षी कहेगा कि ईश्वरकी मरजी। तो क्या इश्वर ऐसा अन्यायी और पक्षपाती है कि बिना अपराध किसीको सुख दुःख भोगना पड़े ! इससे स्पष्ट है कि पुनर्जन्म है। सब विद्याओंकी माता, जिसमें सब विद्यायें समाविष्ट हुई हैं, वही परमेश्वर कृत पुस्तक हैं। यह बात सप्रमाण सिद्ध करनेके लिये अनेक ऋषिवचन मौजूद है। यह सिद्ध करनेमें हम लेशमात्र भी नहीं डरते। जिसके पास खरा रुपया मौजूद है उसको उसे तपाना नही पड़ता। ऐसी कोई भी विद्या अस्तित्वमें नही जो वेदमें न प्रकट हुई हो। महामुनि शंकराचार्यका भी यही मत है कि बिना परमात्माके ऐसी पूर्णता नहीं आ सकती। वेद ही दोषरहित ग्रन्थ है। वेदने ही ज्ञानकी प्रेरणा की है और क्रम क्रमसे मनुष्यको वह ज्ञान प्राप्त हुआ है। परमेश्वरने सृष्टि निर्माण की, उसके साथ ही सृष्टिकी सुव्यवस्थाके लिये उसने वेद निर्माण किया। वेदसे ज्ञान प्राप्त करके सब ऋषियोंने उसे दूसरोंको वितरण

किया। ज्ञानकी उत्पत्ति परमात्मासे हुई हैं और वह उसने वेदके द्वारा निर्माण किया है। शनैः शनैः उस ज्ञानकी उन्नति या अवनति होती गई। ब्राह्मण ज्यों ज्यों वेदका पठन छोड़ते गये, त्यों त्यों वह ज्ञान धीरे-धीरे लोप होता गया। जो लोग अपनेको आर्य मानते हैं और हिन्दू होनेका अभिमान रखते हैं, उन्हें अपनी सन्तानको वेदका कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य देना चाहिये। बड़े-बड़े बी० ए०, एम० ए० हो गये पर धर्मसम्बन्धी ज्ञानमें बिलकुल नपुंसक! यह कितने शोककी बात है। धर्मका ज्ञान भान बिलकुल नहीं होता। वेदकी जानकारी जिसे कुछ भी न हो उसे धर्मसम्बन्धी ज्ञान कैसे प्राप्त हो? बिना धर्मके उन्नतिकी आशा निराशा मात्र हो गई है। यदि हम आर्य होनेका अभिमान रखते हैं तो आप वेद अवश्य पढ़ें। आशा है कि आप लोग अपनी संतानको सत्यधर्मी बनानेका प्रयत्न करेंगे।

★

ऋषिकृत ग्रन्थ क्यों पढ़ें?

क्योंकि जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है, वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्योंकर हो सकता हैं? महर्षि लोगों का आशय जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे, इस प्रकार का होता है। और क्षुद्राशय लोगों की मनसा इस प्रकार की होती है कि जहाँ तक हो सके वहाँ तक कठिन रचना करनी। जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें। जैसे पहाड़ का खोदना कौड़ी का लाभ होना। और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना और बहुमूल्य मोतियों का पाना।

स्वा० दयानन्द सरस्वती

४

ईश्वरोपासना

प्रिय सज्जनो ! इस सृष्टिमें विविध प्रकारके मनुष्य दृष्टि पड़ते हैं। स्वभाव, आचार, विचार, कर्त्तव्य, आकृति इत्यादि विषयोंमें भिन्नता देखनेमें आती है, प्रत्येक विषयमें प्रत्येकका ज्ञान और समझ भिन्नभिन्न होती है। जैसे इस जगत्में कई ईश्वरके माननेवाले होते हैं, वैसेही कितनेक नास्तिक पंथानुयायी भी होते हैं। कितनेही लोग ईश्वरका अस्तित्व अंतःकरणपूर्वक नहीं मानते, किन्तु सिर्फ संसारके लोक व्यवहारके अनुसार चलनेके लिये मानते हैं। कई लोगोंकी ऐसी द्विधा समझ होती है कि वे लोग न यही मानते हैं कि ईश्वर है और न यही मानते हैं कि ईश्वर नहीं है। कई लोगोंका ऐसा मत होता है कि अंतःकरणसे तो वे ईश्वरको नहीं मानते पर लज्जाके भयसे ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। कई लोग कहते हैं कि "ईश्वर है या नहीं, इस विषयमें वादविवाद करके व्यर्थ मनको कष्ट देनेसे क्या लाभ है ?" जब इस विषयमें मनुष्योंके ऐसे विभिन्न मत हैं तब ईश्वरोपासना विषयके ऊपरबोलनेके पहले इसका निर्णय करना चाहिएकि "ईश्वर है या नहीं। क्योंकि यदि ईश्वरही नहीं तो उपासना किसकी जाय ? इसलिये पहले यह जांच करनी चाहिए कि इस जगत्में ईश्वर है या नहीं। मुझ जैसे अल्पबुद्धिवाले मनुष्यका इस विषयपर विवेचन करना असम्भव है। क्योंकि यह विषय इतना गहन है कि योगिजनोंके लिये भी अगम्य है। तो फिर हमारी क्या कथा है ? तथापि जैसे एक भयंकर तूफानमें फंसे हुए अग्निबोटके बचानेके लिए उसका कप्तान "अब क्या करें ? क्या उपाय है।" इत्यादि विचारोंमें न पड़; समय आजानेपर धैर्यच्युत नहीं होता, बल्कि शक्ति के अनुसार जो हो सकता है प्रयत्न करता है, उसी प्रकार मेरी बुद्धिरूपी नाव इस संसारसागरके

झपाटमें डालने लगी है उसे इच्छित स्थलमें ले जानेके लिए अनुसार मैं प्रयत्न करता हूँ। उसमें सफल होना सर्व शक्तिमान ईश्वरके हाथमें है। न्यायालयमें "अमुक बात ऐसी है" यह सिद्ध करनेके लिये प्रमाणकी आवश्यकता है और "अमुक बात ऐसी नहीं है" इसके लिये विशेष प्रमाणकी आवश्यता नहीं होती। चोरीका अभियोग साबित करने के लिये अपने पास प्रमाण होना चाहिए। "मैं अमुक समय में अमुक स्थान पर था" ऐसा प्रमाण यदि वह लावे तो विरुद्ध पक्षवालेको उसके सम्बन्धमें प्रमाण देना चाहिए। इसी प्रकार ईश्वर न माननेवालेको यद्यपि विशेष प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं तथापि "वह नहीं है" यह सिद्ध करनेके लिये उसके पास अच्छा प्रमाण होना चाहिए।

"यथा घटादिकार्यं सकर्तृकम् तथा क्षित्यङ्कुरादिकमपि नहि तत्कर्तृत्वमस्मदादीनां सम्भवति तत्कर्तृत्वेनेश्वरसिद्धिः।" हमारे नैयायिक लोग ईश्वरके अस्तित्वके लिये अनेक प्रमाण मानते हैं। कर्त्ताके विना कोई भी वस्तु बनी हुई इस जगत्में नहीं दिखती। कुम्हारके बिना घड़ा कैसे बन सकता है? बिना कर्त्ताके कोई भी कार्य नहीं हो सकता। यह स्पष्ट है। हमें जो इतना बड़ा तेजस्वी प्रचंड सूर्य दिखाई देता है। उसका बनानेवाला क्या कोई न होना चाहिए? क्या यह आपही आप हो गया? नास्तिक लोग ऐसा मानते हैं, वे ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। उनका कथन है कि जब सूर्य बनाही नहीं वह स्वयंसिद्ध है तब उसके बनानेवालेकी क्या आवश्यकता है? उनकी यह युक्ति कहाँ तक सत्य है, इसकी जाँच अब हमें करनी चाहिए। मनुस्मृतिके बारहवें अध्यायमें लिखा है कि अपने तर्कवितर्कसेही सत्यका निर्णय करो।' "बाबावाक्यं प्रमाणं" यह सत्य प्रमाण नहीं है इसके अनुसार चलना छोड़ दो। इसी प्रकार मैं तुमसे यह आग्रह नहीं करता कि—अमुक एक बात एक अमुक पुस्तकमें लिखी है, उसको तुम सच मानो।' यदि कोई ऐसा करे भी तो यह बात मुझे प्रिय भी नहीं। प्रत्यक्ष प्रमाणसेही जब हमारी पक्की खातिर हो जाय, तभी उसे सच मानना चाहिए। सिर्फ वेदपरही अपना सारा विश्वास नहीं छोड़ देना चाहिए!

अच्छा इस जगतकी उत्पत्तिके विषय पहले हमें विचार करना चाहिए। पदार्थ विद्या, सृष्टिक्रमशास्त्र, भूगर्भविद्या इत्यादि शास्त्रोंके देखनेसे मालूम होता है कि इनमें जो कुछ कहा है वह सब सप्रमाण है। इन पुस्तकोंमें मतमतान्तर देखने में नहीं आते। न्यायशास्त्र सिद्ध करता है कि, "**कारणमन्तरा कार्यम् नोत्पद्यते**" अर्थात् जैसे घट बनानेके लिये कुम्हारके बिना वह नहीं बनता वैसेही इस पृथ्वीको बनानेके लिए कुम्हारकी तरह कोई कर्त्ता अवश्य होना चाहिए। वह आप ही आप स्वयं नहीं बन सकती। जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हैं वह असंख्य परमाणुओंके योगसे बनी है। चाहे कोई पदार्थ हो उसका एकीकरण अनेक परमाणुओंसे बना हुआ है। जैसे फौलाद अनेक परमाणुओंसे बना है। वैसेही हीरा भी परमाणुओंके योगसे ही बना है। जगतमें एकभी ऐसी चीज नहीं जो परमाणुओंसे न बनी हो। अर्थात् प्रत्येक वस्तु प्रथमसे परमाणुरूप होती है। पर जब उनका एक जगह संयोग होता है तब वह पूर्ण रूपसे अपना स्वरूप धारण करती है। भिन्न-भिन्न रहनेवाले परमाणुओंका एकत्व होना और एकत्व हुए परमाणुओंका अलग होना ये दो स्वतन्त्र क्रियाएं हैं। यदि उसका वियोग न हो तो संयोग भी न होगा, और यदि संयोग न हो तो वियोग नहीं हो सकता। यह स्पष्ट है कि किसी विशेष समयमें पृथ्वीके परमाणु अलग-अलग थे। और यदि वे ऐसे न होते तो एकत्रभी न हो सकते थे। ऐसी दशामें जिस पृथ्वीपर हम आज निवास कर रहे हैं वह अस्तित्वही न होती। जैसे गेहुँके आटे में पानी डाल कर जब हम गूंदते हैं तो उसका एक लौंदा बन जाता है और अलग-अलग रहनेवाले परमाणुओंका संयोग हो जाता है। बस यही हाल इस पृथ्वीका है। प्रारम्भमें असंख्य परमाणु थे और वे किसी न किसी साधनसे एकत्र हुए। और इस कृतिका (जिसे आज प्रत्यक्ष देखते हैं) कर्त्ता कोई न कोई अवश्य होनाही चाहिए। यह निर्विवाद है। इस विषयमें फिजिकल सायन्स और वेद दोनोंकी सम्मति बहुत बड़ी देखनेमें आती है। परमाणु अनादि है ऐसा उनमें कहा है। वे उत्पत्ति और नाशसे रहित हैं, सूर्य भी परमाणुओंसे ही बना है। अविद्वान लोगोंको यह उपर्युक्त कथन ठीक न जान पड़ेगा। तथापि शास्त्र शिक्षित लोगोंको तो अवश्य

ही स्वीकार करना पड़ेगा कि अलग-अलग रहे हुए परमाणू मिल सकते हैं और संयुक्त हुए परमाणु अलग अलग होते हैं। नास्तिक लोग भी पृथ्वीका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। ऐसा कोई भी न मिलेगा जो मानता हो कि पृथ्वीका अस्तित्व ही नहीं है। जैसे जलतत्वके तीन रूपान्तर, (बर्फ, पानी और भाफ) होते हैं वैसे ही सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, तेज इत्यादि सबके परमाणुओंमें थोड़ा बहुत रूपान्तर होता ही है। सांख्य शास्त्रकारने कहा है कि यह पृथ्वी प्रारम्भमें प्रकृति स्वरूपमें थी। तदनन्तर वायु रूपमें आई इसके बाद वह गोलाकार हो अण्डाकृति हुई और नारंगीकी तरह गोल मानी गई। पदार्थ विज्ञानशास्त्रमें भी ऐसा ही वर्णन है। इससे सिद्ध होता है, कि पृथ्वी एकवार नहीं बनी है। विद्वान् नास्तिक लोग भी यह बात स्वीकार करते हैं। आज कलके नास्तिक लोगोंका बड़ा विचित्र हाल है। एक दो अंग्रेजी विद्वानोंके ग्रन्थ पढ़कर यह चतुर लोग अपने पूर्वजोंके इस विषयके ऊपर बनाये हुए ग्रन्थों ी ओर बिलकुल ध्यान न दे यह कहा करते है कि यह सृष्टि कुदरतसे ही (नेचरसे ही) बनी है। अपने आपही निर्मित हुई है। इसका बनाने वाला कोई भी नहीं और वह किसीसे बनाई भी नहीं गई। बिना कर्त्ताके संसार में कोई भी वस्तु नहीं मिलती। "बाप नहीं, मैं हूँ" यह कहना जैसे मूर्खता पूर्ण है वैसे ही उपर्युक्त कथन भी समझना चाहिये। पृथ्वी का बनाने वाला कोई न कोई होना ही चाहिये, यह निर्विवाद है। यह बात मैं मानता हूँ कि लोह चुम्बक में जैसे आकर्षण शक्ति है वैसे ही इस पृथ्वी के परमाणुओं में भी आकर्षण शक्ति है। इसलिये पदार्थोंमें वजन होने से ही कोई वस्तु पृथ्वी पर नहीं गिरती किन्तु सिर्फ पृथ्वी के आकर्षण से नीचे आती है। इस विषय का अनुभव हमको उत्तर ध्रुव * प्रदेश में अच्छा मिल सकता है। हवा से, अन्नसे और दूसरे अन्य कारणों से हृष्ट पुष्ट और

*यहाँ पर मुझसे यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि सम्प्रति जो लोग कहते हैं कि गुरुत्वकर्षणका अविष्कार न्यूटनसाहबने किया सो न्यूटनको हुए तो अभी लगभग चारही सौ वर्ष हुए। हमारे यहाँ यह विद्या बहुत प्राचीन कालसे

शुष्क होने वाले मनुष्य का उदाहरण न लेते हुए एक लोह खंड का ही उदाहरण लीजिये, उसके वजनमें किसी प्रकारका फेरफार नहीं हो सकता। जिस लोह खंडका वजन यहाँ एक सेर होता है उसका उत्तर ध्रुवके पास डेढ़ सेर हो जाता है। इसका कारण क्या है ? इसका कारण आकर्षण को छोड़ अन्य कुछ नहीं, यहाँ पदार्थ का मध्याकर्षण होनेसे उसके वजन में वृद्धि नहीं होती। पर ध्रुव के पास विशेष आकर्षण होनेके कारण वजनमें वृद्धि होती है। इससे स्पष्ट है कि पृथ्वीके परमाणुओंमें आकर्षण शक्ति है। पदार्थ विद्या जाननेवाले नास्तिक लोग कहते हैं कि "परमाणुओंमें आकर्षण शक्ति होनेके कारण वे एकत्र हुए हैं। इस कथन में क्या शंका हो सकती है ? एकत्र होनेमें दूसरे की क्या आवश्यकता है ?' उनका यह कथन वाह्य रूप से तो सच मालूम होता है ! पर इस विषय में सूक्ष्म विचार करना चाहिये। जब परमाणु पास-पास होते हैं तब ही वे आकर्षण कर सकते हैं। यदि वे दूर होते हैं तो आकर्षण नहीं कर सकते और न एकत्र हो हो सकते हैं। अच्छा यदि वे दूर होते हैं तो आकर्षण कैसे कर सकते। थोड़ी देरके लिये यदि हम यह भी मानलें कि वे दूर दूर नहीं रहते किन्तु पास-पास होते हैं तो जिस समय वे परमाणु एकत्र हुए हैं उस समय वे अलग-अलग अवश्य

मालूम है अर्थात् प्रगट है। वेदकी बात जाने दीजिये, हालकेही ग्रन्थ देखनेसे आपको विश्वास हो जायगा। भास्कराचार्य्यके "सिद्धान्तशिरोमणि" ग्रन्थको बने लगभग ११०० वर्ष हुए। इसके पहले यह विद्या हमारे लोगोंको अवगत होनी चाहिए। यह सभी विद्वान पुरुष स्वीकार करेंगे, सिद्धान्त शिरोमणिमें लिखा है कि:—

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत्खस्थं गुरु स्वाभिमुखे स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति, समे समन्तात्क पतत्वियं खे ॥

अब कहो कि गुरुत्वाकर्षणका आविष्कार न्यूटनने किया या हमारे पूर्वजोंने ? अपना सोना तो पीतल और दूसरेका पीतल सोना मान बैठने वालों की बुद्धिकी बलिहारी।

रहे होंगे क्योंकि अलग रहे बिना एकत्र होना कैसा ? क्योंकि यह विषय हम पहले ही निश्चित कर चुके हैं। तब क्या उनका अलग-अलग करने वाला कोई नहीं होना चाहिये ? जैसे उनमें आकर्षण शक्ति है वैसे क्या अलग अलग होनेकी भी शक्ति है ? परन्तु यह शक्ति उनमें नहीं हो सकती। यह अनुभव सिद्ध बात है। इससे सभीको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनको अलग-अलग करनेके के लिये किसी न किसीकी आवश्यकता है। पृथ्वीके परमाणुओंमें आकर्षण शक्ति होनेके कारण ही वे आपही आप कदापि अलग नहीं हो सकते। नास्तिक लोग इस जगह यह शंका करते हैं कि "परमाणुु अलग-अलग करनेके लिये किसी की आवश्यकता नहीं।" हवा उनको अलग-अलग कर देती है। उनका यह कथन भी कहाँ तक सच है, यह देखनेके लिये पहले यह विचार करना चाहिये कि हवा क्या चीज हैं। आजकलकी सायन्स विद्यासे हमारे देखनेमें आता है कि हवा कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है ! तथा वह आप ही आप नहीं उत्पन्न हो सकती। हवा का घेरा असीम है। यहाँ तक जाना गया है कि १२ योजन पर्यन्त वायु सघनतासे भरी हुई है। इसके बाद ज्यों-ज्यों हम ऊपर जाते हैं त्यों-त्यों हवा धीरे धीरे हलकी हो जाती है। नीचेकी जड़ और भारी हवासे जब सूर्य के प्रकाशका सम्बन्ध होता है तब वह तप्त और हलकी होकर धीरे-धीरे ऊपर को उठती है ऐसे ही चलनेसे वायु उत्पन्न होती है। इससे हमें स्पष्ट जान पड़ता है कि हवा आप ही आप उत्पन्न नहीं होती किन्तु उष्णता ही हवा होने का कारण है। तब पहले हमें यह निर्णय करना चाहिये कि उष्णता क्या है ? उसका कारण क्या है। अर्थात् अग्नि के उत्पन्न होने के लिये घर्षण की आवश्यकता है। किसी पदार्थ के घर्षण अग्नि कदापि उत्पन्न नहीं होती। यह अंग्रेजी शास्त्रकारों का कथन है, और हम में से भी प्रत्येक का ऐसा ही अनुभव है। पृथ्वीके परमाणुओं के एकत्र होने के पहले उनको अलग अलग होना चाहिये। और उनको अलग करनेके लिये अन्य हवाकी आवश्यकता नहीं है यह नास्तिक लोगोंका कथन है। परन्तु हवाके उत्पन्न होनेके पहले उष्णताकी आवश्यकता है। और घर्षणके बिना उसकी उत्पत्ति हो नहीं

सकती तथा घर्षण भी आप ही आपहो नहीं सकता। उसके होनेके लिये भी किसी की आवश्यकता होनी ही चाहिये। घर्षण साधन न हो तो अग्नि अर्थात् उष्णता उत्पन्न हो नहीं सकती। उष्णताके बिना वायु अर्थात् हवा उत्पन्न नहीं हो सकती और जब हवा नहीं तब पृथ्वीकी उत्पत्ति भी असम्भव है। इससे स्पष्ट है कि घर्षण साधन अवश्य होना ही चाहिये। गतिके बिना उष्णता बिलकुल उत्पन्न नहीं हो सकती। इस गतिकी उत्पत्ति कहाँसे है, सो अंग्रेज शास्त्रकार नहीं कह सकते। यहाँ उनका साहस छूट जाता है और इसके विषयमें उनकी मति काम नहीं देती। उनको आजतक ६६ तत्वोंका पता लगा है। उनका शास्त्र आजतक बाल्यावस्थामें ही है। इथरके सम्बन्धमें उनको आजतक कुछ भी ज्ञान न था। आजतक वे यह मानते थे कि पृथ्वीके आसपास ४८ मील तक वायु घिरी हुई है औरसूर्यकिरणके आधारसे वह नीचे आती। इस ४८ मीलके आगे क्या है इसकी उन्हें कल्पना भी न थी। पता लगते-लगते उन्हें अब यह ज्ञान हुआ है कि हवा व्यतिरिक्त ईथरके समान कुछ पदार्थ है। परन्तु ईथर विषयक ज्ञान हम लोगोंको बहुत प्राचीन कालसे था। "ईथर' अर्थात् "आकाश" और वाक्युम अर्थात शून्य हमारे आजकलके लोगोंको संस्कृतका ज्ञान न होनेके कारण सच्चा अर्थ ठीक ठीक समझमें नहीं आता। पर हमारे पूर्वजोंको बहुत प्राचीन कालसे इस विषयका पूर्ण ज्ञान था। अब आजकलके यूरोपियन पण्डित भी अवश्यही इस विषयमें कुछ समझने लगे हैं।

हमारे शास्त्रोंमें इस गतिके विषयमें बहुत कुछ कहा गया है। उपनिषदमें नचिकेताने जब अपने गुरु यमाचार्यसे प्रश्न किया कि यह गति किस प्रकार उत्पन्न हुई। तब गुरुजीने उत्तर दिया कि जिस शक्तिसे इस गतिका प्रादुर्भाव हुआ है, उसके प्रकाशित करनेमें सूर्य, चंद्र, या अग्नि इत्यादि कोई भी समर्थ नहीं हैं, उसे आपही आप स्वयं जानना चाहिये। हमारे शरीरके भीतर एक ऐसी शक्ति है, जिसके योगसे प्राणीका सारा व्यवहार चलता है। उसी के अस्तित्व से ये सारी इन्द्रियां योग्यस्थिति रहती है। उसी प्रकार इस संसार रूपी देहमें भी

परमात्मा की एक शक्ति विचर रही है। उसके द्वारा इस दृश्य विश्व में अखिल व्यापार सरलतासे चलते रहते है। ऊपर कही हुई शक्ति यदि शरीरमें नही तो जिस प्रकार भीतरका सारा व्यापार बंद हो जाय, वैसेही परमात्मा रूपी शक्तिका यदि अभाव हो जाय तो विश्वका सारा व्यापार उलट पुलट हो जाय, और कोई भी व्यवहार योग्य रीतिसे न चलसके। यह जो विशिष्टशक्ति विद्यमान है वह चर्मचक्षुसे दृष्टिगोचर नही होती। उसे देखनेके लिये दूसरे अर्थात् दिव्य चक्षुकी ही आवश्यकता है। विश्व यह एक बड़ी भारी घड़ी है। वह अपने कार्यमें कभी भूल नही करती तथापि उसमें चाभी देने वालेकी जरूरत तो है ही। जैसे मनुष्य कृत घड़ी चाभी दिये बिना नही चलती और यदि चाभी न दी जाय तो बिगड़ जाती और बन्द हो जाती है। अथवा अनियमिततासे चलती है यही हाल इस विश्वरूपी घड़ीका है। एञ्जन चलानेके लिये ड्राइवर होना ही चाहिए। उसके बिना रेल गाड़ी नहीं चल सकती। इसी प्रकार इस पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र ग्रह, उपग्रह आदि सबको चलाने के लिये कोई न कोई होना ही चाहिए। मनु महाराजने कहा है कि :—प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि। परमात्मा सूक्ष्म है। उपनिषद् में भी ऐसा ही कहा है:—अणोरणीयान्महतो महीयान्। परमात्मा से सूक्ष्म इस जगतमें कोई भी नहीं। इससे किसीको यह समझना चाहिए कि वह राई अथवा सूईके अग्र भागके समान है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान्से भी महान् है।

पृथ्वी से सूक्ष्म जल है। जल से सूक्ष्म हवा और हवा से सूक्ष्म आकर्षण शक्ति है। वह आकर्षण शक्ति निराकार सूक्ष्म और व्यापक है उसी प्रकार ईश्वर भी निराकार व्यापक और सूक्ष्म है। वेद ने भी यही कहा है :—

येनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद्यत्रविश्वं भवत्येक नीडम्। तस्मिं निदर्थं सञ्च विचैति सर्वम् स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥८॥ परमेश्वर को सूक्ष्म शक्तिसे पहचान। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और सर्वव्यापी है। जैसे ईश्वर और बाह्यूम् सब जगह है, वैसे ही उनका अस्तित्व सर्वत्र है। भगवद् गीतामें कहा है कि ब्रह्मा-

नन्द सुख अतीन्द्रिय है, अवश्य ही इस ब्रह्मानन्द की प्राप्ति ज्ञान से ही होती है। आत्यन्तिक अतीन्द्रिय ब्रह्मानन्द सुख बुद्धि से ही जानने में आता है। जिस प्रकार तडित विद्युत सर्वत्र है उसी प्रकार ईश्वर सर्वत्र प्रकाश रूप भरा हुआ है। मनु-महाराज ने उस परमात्मा को "स्वप्नाधिगम्यम्" वर्णन किया है। समाधि से ही उसे जान सकते हैं। गहन विषयों का चित्त की एकाग्रता बिना आकलन (सम्पादन) नहीं हो सकता। तब फिर परमात्मा जो सबसे सूक्ष्म है, चित्त की अत्यन्त शान्ति के बिना कैसे जाना जा सकता है? समाधिज्ञान बिना परमात्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। भिन्न भिन्न चार प्रकार के लोग प्रकारचतुष्टय से ही सर्वशक्तिमान ईश्वर को जान सकते हैं। योगी लोग प्रत्यक्ष अनुभव से परमेश्वर को देखते हैं वही अच्छी तरह देख सकते हैं। तार्किक लोग अनुमान से यह मानते हैं कि ईश्वर हैं। वे कहते हैं :—यत्रयत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः। इस न्याय से इस जगत का बनाने वाला कोई न कोई होना ही चाहिए। विद्वान लोग शाब्दिक प्रमाण से ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करते हैं और अब भी स्वीकार करेंगे जिस प्रकार व्याक्यूम् और ईथर सर्वत्र हैं उसी प्रकार ईश्वर भी सर्वत्र व्यापक है। आकाश की व्याप्ति सबसे विशेष है। उसी प्रकार ब्रह्म सर्वव्यापक है—ऐसा औपमानिक लोग मानते हैं। जब हम हिमालय पर्वत पर बसते थे तब एक कंद हमारे खाने में आई थी। उसकी मधुरता इतनी अपूर्व थी कि तुम से यदि कही जाय तो तुम उसकी कल्पना नहीं कर सकते। मिष्टता के विषय में तुमको हमारे कहने से शाब्दिक ज्ञान हुआ परन्तु कुछ अनुभव नहीं हुआ। इसी तरह केवल शाब्दिक ज्ञान से ईश्वर का पूर्ण स्वरूप मालूम नहीं हो सकता। उपनिषद में भी कहा है :—केवल तर्क से ईश्वर का सच्चा स्वरूप समझ में नहीं आता। इस सम्बन्ध में जबतक अहर्निश ध्यान न लगाया जाय तब तक उस विषय की पक्की खोज दुर्लभ है। आज कलके व्यवहारिक तार टेलिग्राम के उदाहरण से तुम्हारी समझ में आवेगा कि केवल तर्क से यह विद्या नहीं जानी जा सकती। यह विद्या जानने के लिये इस विषय का सब प्रकार का ज्ञान पहले सीखना होता है। तभी सच्ची स्थिति अपनी समझ में आ सकती है। बस इसी तरह ईश्वर

विषय भी केवल तर्क से जानने में नहीं आता। हमारे ऋषियों ने रात और दिन, क्या जंगल और पर्वतों की गुफा में, शीत, ताप, वृष्टि आदि दुसह, दुःख सह और कन्दमूल खाकर जो जो अविष्कार अद्यापि अन्य लोगों ने नहीं कर पाये उन्हें कर, जो प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया है उसकी ओर हमारे नवयुवकों का थोड़ा बहुत ध्यान अवश्य जाना चाहिये। यह हमारी उनसे विनती है। उन महर्षियों के बतलाये हुए मार्ग को तुम पकड़ो। इसी मार्ग से तुम्हारा और सबका उस परमात्मा के साथ मिलाप होगा। बुद्धिमान् लोगों ने कहा है कि जगत् के सब सुख ब्रह्मानन्द सुख के आगे तुच्छ है। मनुष्य मात्र इस संसार के सब तुच्छ सुखों में आनन्द मानते हैं। और उसके दास बनकर रहते हैं। उन्हें यदि ब्रह्मानन्द पानेका अवसर आवे तो वे इस आनन्दको कभी न भूलें। हम रातदिन चैतन्य सागरमें निमग्न रहते हैं तथापि उसके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं होता। हम कोरेके कोरे ही रहते हैं। परमात्मा किसी एक जगह चुप नहीं बैठा है। वह सर्वत्र व्याप्त है।

सूर्यका प्रकाश उसीको दीख पड़ता है जिसकी आँखें ठीक होती हैं। जैसे अन्धे मनुष्यको वह नहीं देख पड़ता, उसी प्रकार सर्व व्यापक परब्रह्म हमारे समान ज्ञानान्धोंको नहीं दीख पड़ता। परब्रह्म जानने वालेको जिस ब्रह्मानन्दका लाभ होता है उसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते। परब्रह्मको जाननेके लिये वेदमें सबसे उत्तम मार्ग दर्शाया गया है। उसमें परमेश्वरकी उपासना एक मार्ग है। चित्त स्थिर करनेके लिये उपासना करनी पड़ती है। दूसरा मार्ग उस ज्ञानका है। अज्ञानको दूर करनेके लिये वेदमें ज्ञानकी आवश्यकता बतलाई गई है। इस मार्गसे पहले वेदमें एक मार्ग कर्मकाण्डका दिखलाया गया है। स्मशान वैराग्य का अनुभव यद्यपि प्रत्येक मनुष्यको होता है तथापि खेदकी बात है कि मनुष्य दुष्कृत्य करनेसे पराङ्मुख नहीं होता। जिसका मन ऐसा है उसका उस पापसे परावृत करनेके लिये और धर्माचरणमें चलाकर शुद्ध करनेके लिये वेदमें कर्मकाण्डका विधान किया गया है। पापसे परावृत होकर जब मन शुद्ध हो जाता

है तब उसे स्थिर करनेके लिये आगे उपासनाका मार्ग बतलाया गया है। मन अति चंचल है। क्षणमें वह यहाँसे कलकत्ता पहुँचता है और क्षणमें वह सारी पृथ्वीपर भ्रमण करता है। प्रत्येक मनुष्य यही इच्छा रखता है कि हम बड़े भारी बादशाह हो जांय। तात्पर्य यह कि तृष्णा प्रतिदिन तरुण होती जाती है। कभी शान्त नहीं होती। बस मनकी यही चंचलता दूर करनेके लिये उपासनाका साधन वेदमें बतलाया है। कर्म मार्गसे शुद्ध हुआ मन उपासनासे जब स्थिर हो जाता है तब उसके बाद ज्ञानार्थज्ञान मार्ग बतलाता है। इन मार्गोंसे जाने वालोंको परमात्माकी प्राप्ति अवश्य होती है और उसीसे ब्रह्मानन्दका अपूर्व सुख प्राप्त होता है। आजका हमारा विषय "उपासना" है। उपासनाका अर्थ होता है "समीप स्थित होना"। यह चंचल मन जब एक पल भर भी एक जगह स्थिर नहीं रह सकता तब इसको परब्रह्मका स्वरूप कैसे समझ पड़े? पतञ्जलि ऋषिने कहा है कि—**योगश्चित्तवृत्ति निरोधः**। चित्तवृत्तिका स्थिर करना योग है। हालमें जो बहुतसे "योगी" दृष्टि पड़ते हैं उन्हें योगी न समझना चाहिये। वे ठग योगी हैं। हमारे ऋषि गण बड़े परमार्थी थे। वे हमारे लिये अनेक श्रम सहकर परमात्माकी पहचानका मार्ग बतला गये हैं। उन्होंने जो यह श्रम किया है उसमें उनको स्वार्थबुद्धि कुछ भी दिखाई नहीं देती। सिर्फ परोपकार के लिये निरपेक्ष बुद्धिसे उन्होंने इतना असह्य कष्ट सहकर हमें सुमार्ग दिखाया है। इसके लिये हमें उनका कितना उपकार मानना चाहिये। हमें उनका कितना आभारी होना चाहिये? और उस मार्गका अवलम्बन करके यदि हम न चलें तो हमारे समान कृतघ्न और कौन होगा?

महामुनि पतंजलि ऋषिने योगशास्त्रमें कहा है :—**यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयो ऽष्टावङ्गानि**। अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये योगके अष्टाङ्ग हैं। इनमेंसे यम पांच प्रकारका है—हिंसा न करना, चोरी न करना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य व्रत पालना। अपरिग्रह अर्थात् अन्यायसे दूसरेकी वस्तु न लेना। नियं

भी पांच प्रकारकी है—शौच, सन्तोष, तप स्वाध्याय -और ईश्वर प्रणिधान। ईश्वर प्रणिधानका मतलब यह है कि यह सारा वैभव उसकी है हमारा कुछ नहीं। सबका स्वामी परमेश्वर ही है। प्रकृति भी उसीकी हैं, यह शरीर भी अपना नहीं सिर्फ यह थोड़े दिनके लिये हमें मिला है, हमें जो कुछ मिला है सब इसी लिये कि उसका योग्य उपयोग किया जाय। दूसरेकी बहन, बेटी को अपने समान जानना। उसके विषयमें पापबुद्धिसे न देखना। इसी प्रकार जो धन हमको मिला हैं वह व्यभिचार और दुर्व्यसन वासनाओंको तृप्त करनेके लिये नहीं मिला है। किन्तु वह सदुपयोग करनेके लिये ही मिला है। ऐसा सब मनुष्योंको समझना चाहिये। हम तो इस धनके सिर्फ रक्षक हैं। सारे वैभवको ऐसा ही समझना चाहिये। इसीका नाम ईश्वर प्रणिधान है।

यम नियमके बाद योग का तीसरा अंग आसन और चौथा अंग प्राणायाम है। प्राणायामका मतलब, श्वासोच्छासगतिका विच्छेद। प्राणायामके विषयमें बहुत लोग योग्य जानकारी नहीं रखते। अनेक लोग हाथ पर हाथ ठोंककर नाक पकड़कर बैठ जाते हैं। इसे कुछ प्राणायाम नहीं कहते। हिन्दुओंके धर्ममें "गतानुगतिकत्व" के अनुसार चलने वाले लोग बहुत हैं। असली बात तो अलग ही रह जाती है और उसकी जगह कृत्रिम और मिथ्या आचार आधमकता है। एक बारका जिक्र है कि एक वैष्णवका गंगादास नामक एक शिष्य था, उसके गुरुने उपदेश दिया था कि "एक बार जिस वस्तुको अपने हाथमें पकड़ना उसे प्राण जाने पर भी नहीं छोड़ना॥" कर्म-धर्म संयोगसे एक दिन वर्षा ऋतुमें पैर फिसलनेसे वह कीचड़ में गिर पड़ा, दुर्भाग्यवश वहाँ आगे एक गधा खड़ा था उसकी पूंछ इनके हाथ में पड़ गई। गंगादासजी गुरुवचन के पक्के थे, इससे इन्होंने पूंछ नहीं छोड़ी? गधे ने बहुत सी लातें मारीं, पर गुरुवचन भंग कैसे हो, बस यही हाल हमारे आर्य्य देशके लोगों का हो गया है। सारासार विचार करना तो ये लोग कभी जानते ही नहीं। संध्या तीन प्रकार की है वैदिक, साम्प्रदायिक और तान्त्रिक। इनमें नाक, कान पकड़ने की बात किसी में नहीं पाई जाती।

प्राणायाम करके योगी होने के बदले रोगी होनेकाही लाभ उठाते हैं। योग्यरीति से प्राणायाम करने से शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारका लाभ होता है। पांचवां अंग प्रत्याहार है।

इसका अर्थ यह है कि मन व इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाना। छठा अङ्ग धारणा है। अर्थात् मनकी एकाग्रता। सातवां ध्यान; जिस वस्तुमें मन लग गया हो उसे छोड़ दूसरी तरफ न जाने देना। मन जब स्थिर हो जाता है, तब वह परमेश्वर के रूप में तदाकार हो सकता है। ध्यान के विषय महामुनि कपिलने अपने सांख्यशास्त्रमें कहा है कि:—**ध्यानं निर्विषयं मनः** किसी विषयमें भी मनका न जाने देना ध्यान है। आठवां अंग समाधि है। **तदेवार्थपात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि**" समाधि साधन से ही हमें ब्रह्मस्वरूप का अनन्य लाभ होता है। इससे सहज ही मालूम हो जायगा कि समाधिकी योग्यता कितनी है। कृष्ण भगवान् ने गीता में योगी लोगों का माहात्म्य इस प्रकार वर्णन किया है :

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योपि मतोधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

मायामोह में पड़कर मनुष्य स्वकर्तव्य से परांगमुख हो जाता है। वह मनमाना स्वच्छन्द आचरण करके पाप संचय करता है। अनेक कुकर्म करके दूसरों के लिये भी दुःख रूप बन जाता है। वह समझता है कि हम अजरामर हैं। स्वच्छन्दता से आचरण करनेवाला यह भी विचार नहीं करता कि हमारे सिरके ऊपर कालचक्र घूमता है, और वह हमको किसी दिन अचानक उठा ले जायगा। उनको यदि इतना भय होता तो वे इस प्रकार प्रमाद न करते। साधारणतः यह सभी जानते है कि हमें मरना है, पर जिसके अन्तःकरण में बात समा जाती है उससे सहसा अनुचित व्यवहार नहीं होते। मृत्यु ने किसीको नहीं छोड़ा। क्या राजा क्या रंक, सभी इसके पंजे में फंसते हैं। महाराज भर्तृहरिने कहा है :—

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषयाः।
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्॥

व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः ।
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥

अर्थात् बहुत कालपर्यन्त संचित किये हुए विषय अंत में अवश्य छुटेंगे, फिर उनके वियोग होने में क्या संशय रहा, इस लिये मनुष्य उनको पहले आप ही से क्यों न छोड़ देवें—क्योंकि यदि विषय आप से मनुष्य को छोड़ेंगे तो मनुष्य को बड़ा परिताप होगा और यदि मनुष्य ही अपनी ओर से उन्हें छोड़ देगा तो स्वयं महा सुखशांति को प्राप्त करेगा। तात्पर्य इतना ही है कि यह भ्रम पटल दूर करके सन्मार्गवर्ती होनेके लिये मनुष्य मात्रको योगज्ञानकी बड़ी आवश्यकता है। योगज्ञान से उसका आचरण शुद्ध होता है और इह लोक परलोक में सुख पाता है। इस लिये योग ज्ञान की इतनी महिमा गाई गई है। अन्त में सब भाइयों के प्रति हमारी इतनी ही विनती है कि मनुष्य जन्म सार्थक करने के लिये वेदाज्ञानुसार चलकर सब कुकर्मोंका परित्याग करना चाहिए। शुभ कर्मोंमें निष्ठा रखकर शुद्धभावसे ईश्वर की भक्ति और उपासना करते हुए लोक परलोक सफल कर लेनेसेही हमारा हमारे देशका और हमारी सन्ततिका कल्याण होगा। इत्याशास्महे ।

—:—

ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना से लाभ

स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण-कर्म स्वभाव से अपने गुण-कर्म स्वभाव का सुधारना। प्रार्थना से निरभमानता, उत्साह और सहाय का मिलना। उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

स्वा० दयानन्द सरस्वती

५

हमारे सत्य वैदिक धर्म पर पुराणोंका परिणाम

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथी जायताम्, दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्-वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषाजिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्, योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

यजु० २२-२२ ॥

प्राचीन समय में संसार की उत्पत्तिसे महाभारत के कालतक (जिसको पांच हजार वर्ष हुये) हमारे भारत वर्ष में एक मात्र वैदिक साम्राज्य था, भारतीय युद्धोत्तर पौराणिक मत उत्पन्न हुवा। हमारे वैदिक धर्मकी इस मत ने असाधारण हानि की। आजकल जो हमारा धर्म है वह सत्य वैदिक-धर्म के प्रतिकूल पौराणिक धर्म हैं, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक (Social, Religious, Moral & Spiritual) विषयोपर वैदिक धर्म को हटाकर पौराणिक धर्म ने अपना अधिकार जमाया है। वेदों में लिखा है कि ईश्वर निराकार, निर्विकार, अजन्मा शुद्ध, पवित्र और सृष्टिकर्ता है।

१ सपर्यगात् शुक्रमकाय० शुक्ल यजुः अ० ४० मं० ८।

२ द्यावा भूमी जनयन् देव एकः यजु० अ० १७ मं० १९।

३ नतस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः यजुः ३२। ३।

लेकिन पुराणोंने वेदप्रतिपादित एक ईश्वरकी जगह शिव, विष्णु, सूर्य, गणपति शक्ति आदि अनेक ईश्वरों की कल्पना की है। और यह कल्पना भारतवर्षीय लोगों के अंतःकरणों में दृढ़ मूल हो गई है।

पुराणों में देवताओंकी आपस में निंदा भी की हैं। जैसे शिवपुराण में शिव की। श्रीमद्भागवतकाही उदाहरण लीजिये "भवव्रतधरा येच-येच तान् समनुव्रताः। पाखंडिनस्ते भवंतु सच्छास्त्रपरिपंथिनः॥ नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थि धारिणः। विशन्तु शिव दीक्षायां यत्रदेवं सुरासवम्।" भागवतस्कन्ध ४ अ० २ श्लोक।

इसमें शिव की और शिवभक्तों की यहाँ तक निन्दा की, है कि, जो पुरुष शिवभक्ति करेगा वह पाखंडी और सच्छास्त्रोंका विरोध करने वाला होगा।

इसी तरह पद्म पुराण में लिखा है "विष्णुदर्शनमात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते शिवद्रोहात् न संदेहो नरकं याति दारुणं। तस्मात् च विष्णु नामापि न वक्तव्यं कदाचन॥" पद्मपुराण पाताल खंड—

विष्णु का दर्शन करने से शिवद्रोह होता है और शिवद्रोह करनेवाला पुरुष दारुण नरक में जाता है, इस लिये विष्णु के नामका उच्चारण भी कभी नहीं करना चाहिये। इसी तरह सारे पुराण एक दूसरों से विरोध करते हैं। श्रीमद्भागवत और विष्णु पुराण में लिखा है कि शिव ब्रह्मा, देवी आदि देवताओं को पैदा करने वाला विष्णु है, वही सब देवताओं का स्वामी है।

देवी भागवत में लिखा है कि शिव और विष्णु इन दोनों को देवीने पैदा किया है। और शिव पुराण में है कि ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओं का उत्पन्न करनेवाला शिव है। और विष्णु आदि देव उसके सेवक है इस तरह आपस में द्वेषमूलक कलह है।

अ० २६ मं० २ (यजुर्वेदमें) यथे मां वाचं कल्याणीं मावदानि जनेभ्यः। ब्रह्म राजन्याभ्याम् शूद्राय चार्याय च। ईश्वरने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र आदि

सारे लोगोंको वेदाध्ययनका अधिकार दिया है उसी तरह ऐत्तरेय ब्राह्मण पंचिका ८ अध्याय १ शौद्रो वर्ण एकविंशः इस श्रुतिसे शूद्रको २१ यज्ञ करने का अधिकार दिया है। उसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण कांड १ प्रपाठ १ ब्राह्मण ४ कंडिका १२ में, आपस्तंब श्रौतसूत्र प्र० १ कं १६ में, गोभिलीयसूत्र प्र० ४ कं० १० के टीकामें और आपस्तंब प्र० ६ कं १४ तथा सांख्यायन श्रौतसूत्र अ० १४ तथा पूर्व मीमांसा अ० ६ पाद १ सूत्र ४। ५ ५१ में शूद्रको वेदाध्ययनका अधिकार दिया है। उसी प्रकार "यथामति यथापाठं तथा विद्या फलिष्यति। सर्वस्तरति दुर्गाणि सर्वोभद्राणि पश्यतु श्लोक ४८। श्रावयेच्चतुरोवर्णान्कृत्वाब्रह्ममग्रतः। वेदस्याध्ययनमिदंतच्चकार्यं महत्स्मृतम्॥ महाभारत शान्तिपर्व अ० ३२८ श्लोक ४८-४६ इन श्लोकोंमें भी श्री व्यासजीने अपने शिष्योंको चारों वर्णों को वेद सिखानेका उपदेश किया है। उसी प्रकार महाभारत वनपर्व अ० १३४ श्लोक ११ "चत्वारो वर्णायज्ञमिमं वहंति॥ इसके टीकामें नीलकंठने यज्ञ-ज्ञानयज्ञे शूद्रस्याप्यस्त्यधिकारः। शूद्रको ज्ञानयज्ञका अधिकार दिया है। उसी प्रकार शुक्रनीति अ० ४ श्लोक २ में शूद्रको ब्रह्मचर्य धारण करनेको अधिकार दिया है। उसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रमें "शुद्रणामदुष्टकारिणामुपनयनम्" पारस्करगृह्य कांड २ प्र० ६ में शूद्रको मुंजीबन्धन (यज्ञोपवीत) बतलाया है।

उसी प्रकार "ब्रह्मचर्येण कान्या युवानं विन्दते पतिम्" अथर्व० कांड ११* अनुवाक ३ सूत्र ५ मंत्र १८ तथा ऋग्वेद मंडल १ अनुवाक २३ सू० १७६ की प्रचारक स्त्री लोपामुद्रा हो गई है।

उसी तरह ऋ० मं० ८ अनु० ६ सूक्त ६१ की प्रचारक अपाला नाम्नी कन्या हुई। उसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषत् अ० ६ में मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी हुइ। अध्याय ५ ब्राह्मण ६ में गार्गी बड़ी ब्रह्मवादिनी बोली गइ हैं। तथा शतपथ ब्राह्मण, आश्वलायन गृह्य, कात्यायन श्रौत सूत्र, पारस्कर गृह्य-सूत्र, पराशर माधव काट्यायन श्रौत सूत्र, सांख्यायन श्रौत सूत्र, आपस्तम्बीय श्रौतसूत्र, पूर्वमीमांसा,

* ब्रह्मचर्य धारण करके कन्या जवान पतिको प्राप्त करे!

पातञ्जल महाभाष्य, महाभारत शांति अ० ३२१ आदि ग्रन्थों में स्त्रियों को वेद विद्या सीखने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। परन्तु इस वैदिक मर्यादा को छोड़कर श्रीमद्भागवत ग्रन्थ ने "स्त्रीशूद्रद्विजबधूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा" याने स्त्री, शूद्र, वर्णसंकर, इनको वेद श्रवणका अधिकार नहीं है। पुराण ग्रन्थों में स्त्री शूद्रादिकों का वेदाध्ययनका अधिकार हरण कर लिया है। इतना ही नहीं, सांप्रदायिक काल में याने शंकराचार्य, रामानुजाचार्य के समय में शूद्रादिकों पर इतना अन्याय हुआ है "श्रवणे त्रपुजतुभ्यां, उच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणो हृदय विदारणमित्यादि" वेदान्त सूत्र अ० १ पाद ३ सूत्र ३८ जो शूद्र वेद श्रवण करे तो उसके कानमें सीसा अगर लाख भरनी चाहिये, वेदोच्चारण करे तो जिह्वाच्छेद की जावे और वेद धारण करे तो हृदय विदारण किया जावे। इस प्रकार शूद्रों पर अन्याय हुआ है। इस पौराणिक शिक्षाका हमारे समाज पर ऐसा परिणाम हुआ कि अनेक जातियां हुई। वैदिक काल में हमारे समाज में चार वर्ण और चारही आश्रम थे। और इन चारों वर्णों में आपस में रोटी बेटी व्यवहार होता था। बेटी व्यवहारके विषय में मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक १३ तथा और बहुत जगह लिखा है कि ब्राह्मण को चारों वर्णों की कन्याओं से विवाह करने का अधिकार है, ब्राह्मण की कन्या भी उस समय दूसरे वर्णों के पुरुष से विवाह कर सकती थी इस विषय में देवयानी का उदाहरण प्रसिद्ध है। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में लिखा है कि—"विषाद- प्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषित्।"

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥

मनुस्मृति अ० २ श्लो० २४ इनमें सारे वर्णों की कन्याओं से विवाह करने की मनुजी की आज्ञा है। ऐसे उदाहरण महाभारत और रामायण में बहुत से

इसीतरह गोभिलाय गृहसूत्र में "प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीं अभ्युदानयन् जपेत्। सामोददत्तं ग धर्वायेति" गोभि० गृ० प्र० २ कं १ सू० १६ इस में कन्या का मुंजी बन्धन की आज्ञा स्पष्ट तरह से की गई है।

दिखाई देते हैं। मनुजीने भी नवम अध्याय में लिखा है कि—

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताधमयोनिजा।
शारंगी मंदपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम्
एताश्चान्यश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः॥

अध्याय ६ श्लोक ३४।

अधम योनि में उत्पन्न हुई अक्षमाला का वसिष्ठ से विवाह हुआ और शारंगी का मंदपाल से संयोग होने के कारण वह पूज्य हुई। ये दो और दूसरी भी बहुत सी हीन जाति में पैदा हुई महिलायें पतिके असामान्य पवित्र गुणों के कारण पूज्य हुई और उसका असाधारण उत्कर्ष हुआ।

प्राचीन समय में चारों वर्णों में आपस में विवाह होते थे और उनमें परस्पर भोजन व्यवहार भी प्रचलित था। अथर्व वेद कां० ६ और ११ में लिखा है कि अतिथि जहाँ २ जाय वहाँ २ वह सर्व साधारण लोगों के हाथ का अन्न ग्रहण करे। इसी तरह तैत्तरीय ब्राह्मण में लिखा है कि "सर्वासु प्रजासु अन्नमत्ति सः सर्वादिश अभिजयति" अष्टक २ अध्याय ३ अनुवाक ६! सारी प्रजाओं का अन्न जो मनुष्य खाता है वह सारी दिशाओं में जय प्राप्त करता है। आपस्तम्बीय धर्म सूत्रों में लिखा है—"आर्याधिष्ठता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः" प्रपाठ २ पटल २ खण्ड २ सूत्र ४।

भोज्य पदार्थों के स्वामी आर्य और उन्हें तैयार करने वाले शूद्र होने चाहिये। इसी तरह मनुस्मृति अध्याय १० श्लोक १६ "जीवेत्कारुककर्मभिः" पौरोगव का काम करके भी शूद्र अपनी उपजीविका कर सकता है। महाभारत में लिखा है कि "शतं दासी सहस्राणां यस्य नित्यं महानसे। पात्री हस्तं दिवारात्रमतिथीन्भोजयत्युत" विराटपर्व अध्याय १८ श्लोक १७ राजा युधिष्ठिरके भोजन गृह में सहस्रों दासियाँ हाथों में पात्र लेकर दिनरात अतिथियों को जिमाया करती थीं। इसी तरह महाभारत वनपर्व अध्याय २७ श्लोक १८ में लिखा है कि कौशिक ऋषि का धर्म व्याध ने पाद्य आचमनादि से सत्कार किया। और

द्रोपदी रसोई बना कर अतिथि ब्राह्मणों को जिमाती थी। उसने दुर्वासा ऋषि को भी और ऋषियों के साथ भोजन दिया। इसी तरह वाल्मीकि रामायण में भी लिखा है कि "पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि। तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्म संस्थिताम्" श्लोक ७। राघवः प्राह विज्ञाने तामनित्यबहिष्कृताम्। अरण्यकांड ७४ रामचन्द्रजी ने शबरी के हाथ का जल प्राशन किया। मातंगादि ऋषि भी इस शबरी के हाथ का अन्न ग्रहण करते थे; (तद्दत्तमाहारादि अंगी कृत्येति—रामाश्रमी टीका) पूर्वकाल में खाने पीने में कोई भी गड़बड़ न थी। परन्तु अब तो ब्राह्मण ब्राह्मण के हाथ का भी नहीं खाते ऐसी पंचायत आ पड़ी है। काश्मीरी ब्राह्मण तो मुसलमान के सकरे चूल्हे पर अन्न पकाकर खाते हैं तद्वत् उर्ण वस्त्र में लपेटी हुई रोटी खाने में भी शंका नहीं करते और उसी के वर्तन से पानी पी लेते हैं, मुसलमान की बनाई हुई पनीर खाते हैं। उसी प्रकार पंजाब में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वगैरह जातियां कहार का पकाया हुआ अन्न खाते हैं। वायव्य प्रान्त में गौड़ ब्राह्मण बाजार में कन्दोई की बनाई पूरी खाते हैं। और वह कंदोई कोई भी जाति का हो वे उसकी परवा नहीं करते। कनोजिया ब्राह्मण भी कहार की बेली हुई रोटी तवापर भूनकर खाते हैं। और आपस में एक दूसरे के हाथ का अन्न सम्बन्ध हुए बिना नहीं खाते।

मैथिल लोक वैश्यादिकों के हाथ का पकाया हुआ भात नहीं खाते; परन्तु रोटी खाते हैं। बंगाली लोक प्रायः सबके हाथ का अन्न खाते हैं। उत्कल ब्राह्मणों की ऐसी ही चाल है। जगन्नाथजी में तो हरएक हरएक के हाथ का खाता है। गौड़ ब्राह्मणों को छोड़ ये सब ब्राह्मण मांस भक्षण करते हैं, (काश्मीरी, पंजाबी सारस्वत, कनोजिया, मैथिल, बंगाली, उत्कल ब्राह्मण मांस खाते हैं) इन जातियों में मांसाहार का निषेध नहीं मानते। इन जातियों में सोला वगैरः का विचार नहीं है। राजपूताने के ब्राह्मणों में भी सोला वगैरः का विचार नहीं है। और खाने पीने में प्रतिबन्ध नहीं है। राजपूताने में राजा महाराजा, सब क्षत्रिय राजा, नापित, कुम्भार वगैरह जातियों के हाथ का अन्न खाते हैं, और मसक का पानी

पीते हैं और मद्यमाँसादि सेवन करते हैं। गुजराती ब्राह्मण और महाराष्ट्र ब्राह्मण इन में साला पहरने की प्रथा है। परन्तु गुजराती ब्राह्मण चौका के बाहर लाया हुआ अन्न नहीं खाते यह प्रथा महाराष्ट्र ब्राह्मणों में नहीं है। ऐसा है तो भी गुजराती ब्राह्मणों में ज्ञाति भोजन के समय सड़क पर भोजन करने में निषेध नहीं है। तद्वत् महाराष्ट्र ब्राह्मण विद्यार्थी बाजार से पकाये हुए पदार्थ लेकर खाते हैं। परन्तु मद्रासी ब्राह्मणों में दूसरे का देखा हुआ अन्न भी अशुद्ध मानने में आता है। "दृष्टिदोषेण दुष्यति" खाने पीने की व्यवस्था धर्म को लेकर नहीं है बरन इसका कुछ पता भी नहीं लगता।

वेदों में तो अमुक के हाथका खाना अमुक के हाथ का न खाना इस विषय का उल्लेख हमारे देखने में नहीं आया; बल्कि सबके हाथ का खाना ऐसा स्पष्ट उल्लेख है ऐसा मैंने पहले कहा है। यह विभिन्नता पौराणिक कालमें प्रचलित हुई। और सांप्रदायिक लोगों ने इस प्रथाको कमाल दर्जे पर पहुँचाई। वैष्णवलोग तो इन्धन को भी धोते हैं परन्तु बाजार से लाया हुआ पिष्ट शर्करा इत्यादि पदार्थ वैसे ही उपयोग में लाते हैं। वैष्णवलोगोंने इस प्रपंचको बढ़ाकर इतनी फूट आपसमें पैदा की है कि यदि स्त्री का पति रामानुज संप्रदायी होवे और स्त्री बल्लभसांप्रदायी हो तो स्त्री पुरुषोंमें भी खाने पीनेका व्यवहार नहीं होता। इन पौराणिक मतोंने हमारा वैदिक धर्म छिन्न भिन्न कर दिया है। पूर्वकाल में हमारे देश में युवावस्थामें विवाह होते थे, परन्तु अब वह व्यवस्था पौराणिक शिक्षाओं से बदल गई है। पूर्व काल में ऋषि की कन्यायें जन्मभर अविवाहित रहती थीं। शांडिल्य ऋषिकी कन्या घृतव्रता, भरद्वाज की कन्या श्रुतवती, देखो भा० शल्य गदापर्व अ० ५४ श्लोक ८ और उसी पर्व में अध्याय ४६।

इसी प्रकार महाभारत शांति पर्व अ० ३२१ सुलभा राज कन्या। वृहदारण्यक में गार्गी, वडवा प्रभृति आजन्म ब्रह्मचारिणी रहीं। भारत आदि पर्व अ० १२ कुन्ती, वनपर्व अ० ५३ दमयंती, आदिपर्व अ० १७१ तपती कन्या, अ० ७६ देवयानी। इसी प्रकार वृद्धकन्या इत्यादि स्त्रियोंने पूर्ण युवावस्थामें आकर विवाह

किये। परन्तु पौराणिक शिक्षाओं से तो एक एक दिन के लड़के लड़कियों के बिवाह होने लगे और ऐसा न किया तो पाप मानने लगे। ऐसी अवस्था प्राप्त होने से हमारी सब प्रजा नष्टप्राय हो गई है, वेदिक सिद्धांतानुसार वर्णव्यवस्था गुणकर्म स्वभावानुसार मानी गई है। ऋ० मं० १० सूक्त १०७ में ब्राह्मण क्षत्रियों के लक्षण गुण कर्म स्वभाव से ही किये गये हैं। और यह व्यवस्था सृष्टि के आरंभ से महाभारत के समयतक प्रचारमें रही देखो, ऋ० ऐत्तरेय ब्राह्मण पंचिका २ अध्याय ३ में कवष ऐलूष नामका शूद्र था वह ब्राह्मण हो गया। उसी प्रकार से महाभारतमें (कक्षीवान्) नामका शूद्र था वह भी ब्राह्मण हो गया। देखो महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २६७।

देखो ऋ० मंडल १ सूक्त ११६-१२६ इन सूक्तों का ऋषि कक्षीवान् शूद्र था। सिंधुद्वीप, देवापि, विश्वामित्र, बोतिहव्य ये सब क्षत्रिय जाति से ब्राह्मण हो गये हैं देखो महाभारत शल्य गदापर्व अ० ४० श्लोक १० महाभारतमें इस तरहके अनेक उदाहरण हैं। इससे सिद्ध होता है कि गुणकर्म स्वभाव से ही वर्ण-व्यवस्था है और इसके लिए बहुत प्रमाण हैं। परन्तु पवित्र वेदाज्ञाके विरुद्ध सांप्रदायिक रूढ़ि ने जन्म से वर्णव्यवस्था मानकर जातिभेद इतने पैदा किये कि रोटी बेटी व्यवहार भी संकुचित हो गये।*

इति शम्।

* यह व्याख्यान बहुत विस्तृत था परन्तु कई कारणोंसे अब पूरा नहीं मिला कहीं खो गया इस लिये पाठक इतने पर सन्तोष करें।

६

देशाटन

आयो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि
ध्यास्युर्योनिं प्रथम आविवेशा योवाच मनुदितां चिकेता
॥ अथ० ५-१-२ ॥

प्रिय बंधुओ और भगिनियो ! आजके मेरे व्याख्यानका विषय देशाटन अथवा परदेश गमन है। सम्भव है आप विचारें कि मुझे इस विषय पर बोलने की क्यों आवश्यकता पड़ी, तो मैं इस विषय में कहूंगा कि वर्त्तमान काल में अपने में यह अति संदिग्ध विषय हो गया है, यदि किसी विषय में सन्देह उत्पन्न हो जाय तो उस विषय में यथामति निर्णय कर लेना श्रेयस्कर होता है। यह आपसे पहले ही कह देता हूं कि इस विषय पर मैं जो कुछ कहूंगा, वह वेद और तदनुकूल अन्य ग्रन्थों के आधार पर कहूंगा, कारण कि इस सम्बन्ध में वेदों में कुछ लिखा है या नहीं यह जान कर उसके अनुसार वर्ताव करना अपने लिये सब अंशों में श्रेयस्कर है। अस्तु।

परदेशगमन अथवा जलपर्यटन इस विषयपर विचार करने वालोंके वर्तमान में तीन पक्ष हैं। एक सुधारक, दूसरे कुधारक और तीसरे वैदिक। कुधारक पक्षका कहना है कि यदि एकाध बात शास्त्रसम्मत हो, परन्तु रूढिके विरुद्ध हो, तो वह बात करनेको कभी तैय्यार नहीं होना चाहिये। यह मंडली यद्यपि वेदों को मानने वाली है परन्तु वेदों की आज्ञा की अपेक्षा रूढि की ओर इसकी भक्ति अधिक है।

दूसरा सुधारक पक्षः—यह कोई भी बात चाहे वह वेदों और शास्त्रों में हो, चाहे न हो, जो वर्तमान स्थितिमें अपने लोगों का हित करने योग्य होवे वह निस्सन्देह अवश्य करना, इस प्रकार माननेवाला है। और इसी कारण परदेश-गमन करने में कोई हानि नहीं, यह इस पक्षका कहना है।

तीसरा जो पक्ष है वह वैदिक है। इस पक्षका कहना यह है कि वेद और शास्त्रों से जो बात सम्मत है वह रूढि में हो वा न हो, उसको करना मनुष्य मात्र का धर्म है। और तदनुकूल वर्तना चाहियें।

परदेशगमन करने की यदि वेद और धर्मशास्त्रों की आज्ञा होय तो समुद्रयात्रा करने में कोई हानि नहीं। इन तीनों पक्षोंको ध्यानमें रखकर आज के व्याख्यान का विषय कितने महत्व का है, और कितना विवादग्रस्त है यह आपके ध्यान में आ जायगा।

मैं आपसे एक बात कहना और उचित समझता हूँ, वह यह कि किसी विषय के विवेचन करने में—विशेषतः किसी धार्मिक विषय पर विचार करनेमें—मनुष्यको सहनशीलता रखनी चाहिए हिन्दू लोग अति सहनशील हैं। परन्तु वर्तमानमें धर्मके विषय में उनकी सहनशीलता बिलकुल दृष्टिगोचर नहीं होती। ठेठ दुराग्रह मात्र देखने में आता है। इससे अपनी और अपने देश की बहुत हानि होती है। धर्मविषयमें विचार करने की योग्यता प्राप्त करने के लिये सहनशीलता और सत्यशोधकता ये गुण अवश्य होने चाहियें। एकाध बात यदि अपने मतके विरुद्ध होवे तो अपनेको शान्त मनसे सुनना चाहिये। निष्पक्षपात से उसपर मनन करना चाहिये। परन्तु अत्यन्त दुःखकी बात है कि वर्तमान हिन्दूसमाज का आचरण इससे बिलकुल विरुद्ध है। धर्मसम्बन्धमें जब तक दुराग्रह के स्थान में समाजमें सहनशीलता नहीं आती, तब तक अपनी अधिक हानि होती जायगी इसमें बिलमात्र सन्देह नहीं।

समाज में इस प्रकार की रुचि उत्पन्न करने के लिये प्रथम निर्भीक, निष्पक्षपाती, और जिसमें नीतिपूर्ण धैर्यपूर्ण गुण हो ऐसे धर्म गुरु की अत्यन्त आवश्यकता

है। स्वार्थी और मूर्ख धर्म गुरु लोगोंको किस प्रकार का उपदेश देते हैं यह तुम्हारे ध्यान में आगे के उदाहरण से सहज में आ जावेगा।

रामानुज पंथके एक पंडित थे। वे एक समय राजा के पास गये और कहा, "पारमार्थिक कल्याण हो ऐसी आपकी इच्छा हो तो आपको गुरुमन्त्र लेना चाहिये। गुरुमन्त्र लिये विना स्वर्गप्राप्ति नहीं होगी, इतना ही नहीं परन्तु जिसने गुरु नहीं किया, उसके हाथ का जल भी नहीं पीना। ऐसा शास्त्र का वचन है। महाराज आप इसका विचार अवश्य करो।"

पण्डितका भाषण सुनकर महाराज बोले—"पण्डितजी! आप जो बात कहते हैं वह सत्यहै, परन्तु किस प्रकार करूं? आज मेरी उमर ४० वर्षकी हो गई। आज तक मेरी सारी आयु मधु-मांसका सेवन करते बीती। उसके बिना मेरा गुजर नहीं। अब आपका उपदेश लेऊं तो मुझे यह सब छोड़ना पड़ेगा। इस लिये उपदेश लेकर उस अनुसार न चलने से उपदेश न लेना ही अच्छा ऐसा मैं विचारता हूँ।

यह सुनकर पण्डितजी हंसने लगे और बोले—"महाराज आपकी यह समझ भूल भरी है; हमारा धर्म गाँधी (पसारीकी) दुकान के समान है, जैसा ग्राहक मिले वैसा उपदेश उसे करना चाहिये। आपकी इच्छा मद्यमांस सेवन करने की है सो ठीक है, मैं आपको शाक्त पंथ की दीक्षा दूंगा। यह पंथ ही ऐसा है कि इसमें मद्यमांस के सेवन से ही मुक्ति मिलती है।"

प्रियबन्धु और बहिनो, इस प्रकार के उपदेशक मिलें पीछे क्या विचारना? ये पण्डित—

अन्तः शाक्ताः बहि शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः
नानारूपधराः कौला, विचरन्ति महीतले॥

अन्तःकरण में शाक्त, वाममार्गी वेद विरुद्ध आचरण करने वाले, बाहर से शैव-रुद्राक्ष और भस्म धारण करने वाले—और सभा में वैष्णव, ये वाममार्गी लोक नाना प्रकारके वेष धरकर पृथ्वीपर घूमते हैं। धर्मोपदेशकी जबतक इस प्रकार की स्थिति है, तब तक धर्मोन्नति और देशोन्नतिकी बात क्या? पूर्णतया नीतिमान्

और धार्मिक इस प्रकार का धर्मगुरु प्राप्त करने के पहले अपने आपको सत्यधर्म का ग्राहक बनाना चाहिये। यह बात ध्यान में रक्खो। लोगों को रुचिकर हो ऐसा उपदेश करना धर्म गुरुका धर्म नहीं है। उनका धर्म यह है कि जो सत्य है उसका प्रचार करना, पश्चात् समस्त जगत् उसके विरुद्ध होय तो कोई चिन्ता नहीं। आजकल धर्मोपदेशक अपना कर्तव्य नहीं करते। उपदेश करने का धन्धा वर्तमान में उदरनिर्वाह का एक साधन हो चला है, यह अत्यन्त शोककी बात है।

जानस्टूअर्ट मिलके सुप्रसिद्ध लिबर्टी नामक ग्रन्थ में उसका जीवन चरित्र है, उसमें यह वृत्तांत है कि मिल नौकरी करके अपनी गुजर करता हुआ, कितने ही पत्रों में लेख लिखता। एक समय एक गृहस्थने उससे पूछा—"नौकरी में तुम्हारा जितना समय जाता है उतनी प्राप्ति नहीं होती। इस लिये यह नौकरी छोड़कर तुम, एकाध स्वतंत्र पत्र क्यों नहीं निकालते, उसमें तुम्हें ठीक प्राप्ति होना संभव है।"

इसपर मिलका दिया हुआ उत्तर ध्यान में रखना चाहिए। उसने कहा—"आपका यह कहना ठीक है, स्वतंत्र पत्र मैं सुभितेसे चला सकता हूँ। परन्तु इसमें लाभ न होकर मेरी हानि बहुत है। क्योंकि आपको मालूम है कि समाचार पत्र में अधिक प्राप्ति करने के लिये ग्राहक अधिक होने चाहिये। ग्राहक प्राप्त करने के लिये लोगों को रुचे ऐसे लेख लिखने पड़ते हैं। ऐसा न किया जावे तो कुछ नहीं होता इस लिये स्वतंत्र पत्र निकालने में मुझे मेरा विचार स्वातन्त्र्य गमाना पड़ेगा। वर्तमान में इस नौकरी के कारण उदर निर्वाह की झंझट नहीं करनी पड़ती। इस लिये स्वतंत्र विचार से स्पष्ट लिखने में कोई बाध नहीं आती।

सारांश अपने धर्मगुरु आज कल धर्म से जीविका करते हैं। इस लिये जिस अधिक स्वार्थसिद्धि हो ऐसी बात वे करते हैं। धर्म सम्बन्ध में जो सहिष्णुता चाहिये वह नहीं रहती, धर्मगुरु जब तक धर्मपर जीविका करना नहीं छोड़ते तब तक हिन्दुओं की धार्मिक उन्नति होना बिलकुल संभव नहीं।

वर्त्तमान में जो सच्चा नीति और धैर्य्यप्रदर्शक निर्भीक, निस्पृही, सत्यनिष्ठ इस प्रकार का एक महात्मा धर्मोपदेशक हो गया है। वेदों में मूर्तिपूजा नहीं "पाषाणादि मूर्तिकी पूजा करना, ईश्वर-प्राप्ति का साधन है" इस प्रकार वेदके किसी स्थान में नहीं लिखा, इसी प्रकार मृतकों का श्राद्ध करना इसका आधार भी वेदके किसी स्थान में नहीं। नियोग अक्षतयोनि स्त्रीका पुनर्विवाह, वेदसम्मत है। ये सब बातें हिन्दू पण्डितोंको मान्य नहीं थी, परन्तु इस महात्मा ने स्वयं वेदाध्ययन कर, सूक्ष्मरीति से सत्या-सत्य का निर्णय किया। सब लोगों के विरुद्ध होने पर भी उनकी परवाह नहीं करके मुक्त कंठ से प्रतिपादन किया कि—"पण्डितों का मानना भूल भरा है। यह महात्मा श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं। मानसन्मान, धनप्रतिष्ठा इत्यादि किसी बातकी चिन्ता नहीं करते हुए इस महात्मा ने प्रचार किया कि वेदों का शब्द ही सत्य उपदेश है, और इसी उपदेश के अनुसार बर्ताव करने से प्राचीन काल में मनुष्य समाज ने उन्नति की, और अब भी वेदानुकूल बर्ताव करने से ही उन्नतिका मार्ग मिलेगा इस महात्मा का यह उपदेश जगत के कल्याण के लिये नहीं, ऐसा कौन कहता है?

और एक दूसरे महात्मा हो गये हैं। उन्होंने अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है। बुद्ध के अविश्रान्त परिश्रम से अधिकांश देश बौद्ध धर्म से व्याप्त हुआ देखकर शंकर स्वामी ब्राह्मण धर्म का वर्चस्व किस प्रकार पुनः स्थापित हो इस पर विचार करने लगे और उन्होंने।

समुद्रयात्रास्वीकारः शोधितस्यापि संग्रहः।
इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः॥

इस पुराणवचन की परवा न करके स्मृतियों का आधार ले शिखा सूत्रादिका त्याग किये हुए बौद्ध लोगों को फिर शिखा सूत्रधारण करा ब्राह्मण बनाया। इन महात्माका यह काम प्रशंसा करने योग्य नहीं ऐसा कौन कहेगा? इस महात्मा में विलक्षण नीतिधैर्य्य नहीं था ऐसा कौन प्रतिपादित कर सकता है?

वेदत्याग, अमृत इत्यादि पातकों की गणना शास्त्रों में महापातक कोटि में की

है। वेदाध्ययन से परांमुख होकर अन्य कार्यों में रत रहनेवाले ब्राह्मण सकुटुम्ब शूद्रत्व को प्राप्त होता है ऐसा शास्त्रों का स्पष्ट आशय होने पर भी इन महा-पातकों का प्रायश्चित्त कराके पवित्र करने का जो उद्योग स्वामी श्रीशंकराचार्य ने किया उसका हम हिन्दू लोगों को जरूर विचार करना चाहिये। अनृत आदि महापापों को आज खुशी रीति से करते हुए स्वयं परदेशगमनका निषेध करने को तैयार हैं, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं ?

आपमें से बहुत मनुष्यों को मेरा कहना अच्छा नहीं लगेगा। कितनेही तो नापसन्द करेंगे। परन्तु शास्त्र की मर्यादा छोड़ आपके अन्तःकरण को प्रसन्न करने के झगड़े में मैं नहीं पड़ूँगा। मैं संन्यासी हूँ। जो धर्मशास्त्रसम्मत होगा उसीका प्रतिपादन करूंगा, आपको रुचे या न रुचे।

मैंने इस विषयपर बहुत विचार किया है। परदेशगमन अथवा समुद्रयात्रा करना हानिकारक नहीं अथवा धर्मशास्त्र में इसका निषेध नहीं है। देशाटन अथवा समुद्र यात्रा करना योग्य नहीं इस प्रकार जो कुविचारक लोग कहते हैं वह ठीक नहीं।

समुद्रयात्रा करने से मनुष्य धर्मभ्रष्ट हो जाता है ऐसा पौराणिक लोगों का कहना है। जातिबन्धन यह परदेश गमन में बड़ी भारी अड़चन है। जो कोई विद्या सीखने वा व्यापारधन्धा सीखने बिलायत चला जावे तो पीछे आने पर उसे जाति बाहर निकाल देते हैं। जब मैं काशी में था तो इस विषय पर पण्डितों में विवाद हुआ। उनके कहने का तात्पर्य यह था कि 'मनुष्य के विलायत जाने पर खानपान में गड़-बड़ हो जाती है, उन्हें वहां मद्यमांस सेवन करना पड़ता है, अंग्रेजों के हाथ का पानी पीना पड़ता है, इस लिये ऐसी समुद्रयात्रा करने से धर्म भ्रष्ट होता है, इस लिये इन्हें जातिबाहर करना चाहिये।

अब विचार करना चाहिये कि विलायत जानेवाले ही मद्यमांसका सेवन करते हैं और यहां रहनेवाले नहीं, क्या ऐसा है ? वास्तव में जिसके लिये मद्य मांस तिरस्कृत है, वे न तो विलायत जाकर मद्यमांसका सेवन करते हैं और न यहाँ रह

कर करते हैं। परन्तु जिन्हें मद्यमांसका सेवन करना है वे इतनेही के लिये विलायत जावें ऐसा नहीं है। यहां भी बहुत से ब्राह्मण होटलों में मद्यमांस आदि पदार्थों पर हाथ मारनेमें कसर नहीं करते! यवन, यूरोपियन आदि, और परधर्मी वेश्या के हाथ का भोजन कितने ही करते हैं, इतनाही नहीं किन्तु उसके उच्छिष्ट सामान भी प्रेम से खाते हैं! अतः विरुद्धपक्षी जिन्हें इस बातका विधिनिषेध है उन्हें विलायत गये लोग तो क्या इन लोगोंके हाथ का अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिये।

इस विषय में शास्त्र की आज्ञा देखो तो यह है कि "**मद्यमांस आदि पदार्थों का सेवन तो करनाही नहीं**" उसी प्रकार चाण्डाल आदि नीच कुकर्मी मनुष्यों के हाथ का अन्न कभी ग्रहण नहीं करना। परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनका परस्पर में अन्न व्यवहार करने में अड़चन नहीं। अथवा उसमें कोई हानि नहीं।

परन्तु आज कल ब्राह्मण आदि वर्णों की भोजन व्यवस्था अत्यन्त विलक्षण हो रही है। उदाहरणार्थ काश्मीर में बड़े-बड़े पण्डित और विद्वान मांसभक्षण करते हैं।

ये मांसभक्षण करने वाले काश्मीरी पण्डित अत्यन्त विद्वान् हो गये हैं। उनमें से एक ने महाभाष्यपर प्रसिद्ध टीका की है। ये ब्राह्मण मांस खाने में इतने होशियार हैं कि मुसलमान लोग बकरे के जिस अंग का मांस नहीं खाते, उस तकको वे खा जाते हैं। मुसलमान अपने कपड़ों में से भोजन की वस्तु लाते हैं तो यह काश्मीरी ब्राह्मण खा लेते हैं? इनका चुल्हा कभी अपवित्र नहीं होता. मुसलमानों तक के चूल्हेपर भी ये प्रसन्नता से रोटी सेककर खा लेते हैं। जल आदि भरने के लिये इनके यहाँ मुसलमान ही होते हैं, इतना सब कुछ है, परन्तु एक काश्मीरी ब्राह्मण यदि यहाँ आवे तो वह नागर अथवा दक्षिणी ब्राह्मण के हाथ का नहीं खायेगा।

पंजाब में इस प्रकार की रीति है कि घीवर (एक जात के शूद्र) मात रोटी पकाते हैं और ब्राह्मण आदि सब उसे खा लेते हैं।

आगरा आदि प्रान्तों में गौड़ ब्राह्मणों में मांसाहार निषिद्ध माना गया है। परन्तु चोरी छिपे अनेक जन मांससेवन करते हैं। हलवाई की दूकान की पूरी तो सब ब्राह्मण पा लेते हैं। पूर्वकी ओर देखो तो कन्नोजिये ब्राह्मणों में "नौ कनौजिया और १३ चूल्हे" इस प्रकार की कहावतही पड़ गई है। कारण कि चूल्हा भ्रष्ट होने की इनमें बड़ी धाँधली है। एक चूल्हा भ्रष्ट हो जावे तो दूसरा बनाना पड़ता है। इतना होते हुए भी उनमें मांसाहार का प्रचार है, यह सत्य है।

अंग्रेज लोग अफगानिस्थान में चढ़ाई करने गये, उनके जनरल लार्ड राबर्ट साहब के साथ सिक्ख लोगोंकी एक पलटन गई थी। उसमें एक पलटन पूरबिये ब्राह्मणों की भी थी। एक दिन संध्या समय जनरल साहब ने अपनी छावनी के बाहर जाकर देखा तो जगह-जगह चूल्हे सुलगते देखे। यह देखकर यह इतने क्यों सुलगाये इसकी तलाश करने लगे, तब किसीने कहा कि ये लोग दूसरे के हाथ का बना हुआ बिलकुल नहीं खाते; इस लिये हरेक सिपाहीका चूल्हा अलग-अलग है। जनरल साहबको इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोले यह पलटन मेरे काम को नहीं, लड़ाई के समय चूल्हा जलाने बैठेंगे। यह पलटन तुरन्त पीछे भेजी गयी। उस दिन के पीछे जो दूसरे के हाथ का बना अन्न खा लेते हैं ऐसे मनुष्य ही फौज में भरती किये जावें ऐसा अब सरकारी नियम कर दिया है।

बंगाल में कनौजिया ब्राह्मण रेशमी वस्त्र बिलकुल नहीं पहनते, साधारण धोती पहनकर ये प्रसन्नता से भोजन कर लेते हैं।

शूद्रोंसे गूंदा हुआ आटा इनके यहाँ चालू हैं, इस आटे की रोटी सिक जाने पर अड़वन पड़ जाती है। एक समय मैं अहमदाबाद में था, वहाँ एक कनौजिये पण्डित आये। वे वहाँ के सामयिक जज लालशंकरजी के घर पर ठहरे। जज साहबने उनको अपने यहाँ भोजन करने का आग्रह किया। परन्तु उन्होंने कहा, "मैं आपके घर भोजन नहीं कर सकता; हम लोग किसीके हाथ का पकाया हुआ अन्न नहीं खाते, मैं अपना स्वयं अपने हाथ से बनाऊंगा" पीछे उस कनौजिए के स्वयंपाक करते समय मैं चला गया। तो देखा कि उस रोटी का

आटा एक घाटी (कहार) गूंद रहा था। उस घाटी की बेची हुई रोटी ये पंडित सेकते जाते थे और चूल्हे के पास रखे जाते थे। यह देखकर जज साहब को कितना आश्चर्य हुआ होगा, इसकी कल्पना आप लोग कर सकते हैं।

मैथिल ब्राह्मणों के आचार विचार यदि आप देखें तो वे मांस सेवन करते हैं इस प्रकार आपको मालूम पड़ेगा। क्योंकि ये लोग शाक्त हैं। बंगाल के लोग तो केवल होटल भक्त हैं, यह सबको खबर है। इन लोगों ने अन्य सुधारों के साथ चोटी रखने में भी सुधार किया है। और वह विलक्षण है। कारण कि चोटी सम्बन्धी उन्होंने अजब उन्नति की है। यदि आप देखें तो पीछे चोटी रखने के स्थान में आगे रखते हैं। इस प्रकार जिसने चोटी को स्वतन्त्र कर दी है, उसे ही "He is a gentleman" ऐसा कहते हैं। दैवयोग से ही किसी के शिर-पर चोटी मिले तो मिले।

आपको मालूम है कि इस बम्बई नगरी में ऐसे मर्यादा वाले हिन्दू हैं जो नल का पानी कभी नहीं पीते। कारण क्या? यह नल भली बुरी सब जगहों से आता है, नाना प्रकार के मनुष्य और अपवित्र वस्तुओं का स्पर्श होता है। इस कारण ये लोग हमेशा कुंओं का पानी पीते हैं, परन्तु यह लोग इसका विचार नहीं करते कि बम्बई जैसे शहर में नल के पानी से कुएँ का पानी अत्यन्त खराब होता है। कारण मलमूत्र ले जानेवाली नालियाँ इस शहर में जमीन के अन्दर बहुत गहरी होती हैं। यह नालियाँ हमेशा फूटती रहती हैं। और इनका दुर्गन्धि मय पानी जमीन में पचकर इन कुंओं में जाता है। तब इन कुंओं का पानी किस प्रकार पवित्र हो सकता है।

नल का पानी नहीं पीनेवाले ये मर्यादा पालन करने वाले पुरुष उड़ीसा में जाकर उच्छिष्ठ खाते हैं यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है।

सारांश, धर्म सम्बन्ध में हिन्दू लोगों की इतनी निकृष्टदशा हो गई है कि धर्म के नाम से चाहे जो मनुष्य चाहे जो करने को कहे कभी कोई उस पर विचार करने की झंझट में नहीं पड़ेगा।

मैं जगन्नाथ गया था, वहां पण्डितों की एक सभा हुई। उस सभा में जगन्नाथ के विषय में बहुत चर्चा चली, जगन्नाथ की वास्तविक स्थिति कैसी है ? जिसे यह देखना हो वह स्वयं प्रत्यक्ष जाकर देखें। जगन्नाथजी की प्रदक्षिणा के मार्ग में विमल नामक एक देवी है, नवरात्रि में इस देवी के सन्मुख बलिदान दिया जाता है। केवल बलिदान देने के लिये आया हुआ पण्डा जगन्नाथ के सामने खड़ा होकर जगन्नाथ से कहता है "महाराज देवी बलि मांगती है" और दूसरा मनुष्य जगन्नाथ के नाम से "दो" यह कह के उत्तर देता है। बस उसी समय बलि दी जाती है। यह जगन्नाथ की हालत है। वैष्णव लोगों को इस पर बराबर विचार करना चाहिये कि क्यों देव मन्दिरों को कसाई खाना बना रक्खा है ?

राजपूताना में जाइये, वहां अनेक जाति के ब्राह्मण वस्त्र पहने हुए भोजन करते दिखाई पड़ेंगे। परन्तु गुजरात के लोग रेशमी वस्त्र पहन कर सार्वजनिक मार्गों में जाते हैं और उन्हीं वस्त्रों को पहने गलीगलियों में बैठकर भोजन कर लेते हैं।

महाराष्ट्र में मधुकरी करनेवाले विद्यार्थी सूती वा रेशमी वस्त्र पहन दूसरे के हाथ से पकाया हुआ अन्न घर पर लेजाकर पीछे खाते हैं, परन्तु मद्रास में तो भोजन पर दृष्टि पड़ते ही, वह अपवित्र हो जाता है।

बंगलोर में मैं एक जज के साथ क्लब में उतरा था। वहां मुझे एक समय बहुत प्यास लगी तब, मैंने जज साहब के नोकर से कहा—"मेरे लिये पानी लाओ"।

जज साहब ने कहा—"आपने यह ठीक नहीं किया, यहां ब्राह्मण के सिवाय किसी दूसरे के हाथ का पानी नहीं पीना" निदान उनके ब्राह्मण के आने तक मुझे प्यासा रहना पड़ा। परन्तु संध्या समय जब क्लब में भोजन तैयार हुआ और ब्राह्मणादि वर्णों सहित और लोग भोजने करने बैठे तो क्लब में प्रथानुसार सोडा लेमानेड की बोतलें एक के पीछे एक खुलने लगीं। यह देखकर मैंने जज

साहब के पहले नोकर से पूछा "क्या ब्राह्मणों ने इन बोतलों में पानी भरा है ?" तो वह नोकर बोला—"अरे यह पानी तो बिलायती ब्राह्मणों ने भरा है, इसमें कोई दोष नहीं है, बिलायती वस्तु जितनी हैं वह अति पवित्र होती हैं।"

इस बम्बई नगर में कितने ही नियम पालने वालों की ऐसी विलक्षण चाल है कि चूल्हे में जलाने की लकड़ियां भी धोकर चौके में ले जाते हैं। परन्तु यही बाजार के अन्य पदार्थ यथा गुड़, शक्कर आदि पहले धोकर फिर काम में नहीं लाते! गुड़ किस प्रकार बनता है इसकी आप सबों को खबर नहीं। गन्ने के रसको पेल कर कढ़ाई में गर्म करते हैं। इस काम को करने वाले लोग ये ढेढ, चमार होते हैं—उबालते हुए इसमें रोटीयां डुबो २ कर खाते जाते हैं और दूसरी तरफ काम करते जाते हैं। इस प्रकार से तय्यार हुआ गुड़ यह मर्यादा पुरुष धोकर पवित्र किये बिना ही खा जाते हैं।

केदी लोगों की शिखा और जनऊ छीन ली जाती है इतना ही नहीं, परन्तु उनके खानपान में भी छूआ-छूत होती रहती है, परन्तु केद से छूटकर आने पर उन लोगों को क्या जाति में नहीं लेते?

अब आप यह विचार करो कि हिन्दुस्थान के जुदे २ भागों में रहने वाले ब्राह्मण जुदी २ रीत रिवाज बरतते हैं, मद्यमांस का सेवन करते हैं, मुसलमानों के साथ खानपान का व्यवहार रखते हैं। क्या आप उन्हें ब्राह्मण नहीं मानते?

आजकल इस प्रकारकी स्थिति हो गई है कि मद्यमांस आदिका सेवन करने वाले, अनृत भाषण आदि पाप करनेवाले, वेदाध्ययन छोड़ देनेवाले, ब्राह्मण हो सकते हैं। परन्तु वेदोंकी आज्ञा के विरुद्ध चलकर लोग इनको ब्राह्मण मानते हैं। परन्तु समुद्रयात्रा के लिये वेदोंकी आज्ञा होते हुए भी उसे करनेवाले पतित माने जाते हैं। यह कितने शोकका विषय है?

अनाचारेण मालीन्यं, अत्याचारेण मूर्खता।
विचाराचारयोर्योगः सदाचारः स उच्यते॥

अनाचार, मलिनता और अति आचार मूर्खताका चिन्ह है, परन्तु विचार-पूर्वक आचारको कहते हैं। हिन्दू लोग आज दिन वेदविरुद्ध अनाचार करते हैं। उनमें आज मलिनता भी आ गई है। लकड़ी को धोकर जलाना, चौका देकर उसके अन्दरही बैठा रहना, वृथा अटकाव (छूतछात) का भय करना इत्यादि अत्याचारों से उनकी जो दुर्दशा हो गई, उससे उनकी मूर्खताही प्रकट होती है।

जो आर्य्यलोग समस्त पृथ्वीपर शासन करने की शक्ति रखते थे, उनके पुत्र कूपके मेंढककी वृत्ति स्वीकार करने को तैयार हैं। उनकी जो दुर्दशा हो गई है वह सबकी दृष्टि गोचर हो रही है। जिस समय में जो करना उचित है, उसके करने से धर्मका अतिक्रम नहीं होता, प्रत्युत उसे करनेको अवश्य तत्पर रहना चाहिये, यह सत्य मनुष्यधर्म है। केवल दुराग्रह से रूढ़िका दास बन बैठने में सज्जनता नहीं।

सिक्खोंके दशवें गुरु गोविन्दसिंहजी के विषय में कहा जाता है उनकी सेना एक बार अफगान मुसल्मानों के साथ बिना अन्न जल ग्रहण किये तीन दिवस तक लड़ती रही। अन्त में भूख से लोग तड़फने लगे, पासका अन्न समाप्त हो गया। बाहर से लाने का मार्ग नहीं रहा। सिक्ख इस प्रकार की संकट अवस्था को प्राप्त हो गये। यह देखकर गोविन्दसिंहजी ने एकदम शत्रु पर टूट पड़नेकी आज्ञा की, सिक्ख लोगोंका आक्रमण अति भयंकर होता है, फिर भूखसे प्राण व्याकुल हैं तो क्या पूछना? अफगानों के टुकड़े २ करके उन्होंने उनका नाश कर दिया, उनका सामान जहाँ था वहीं पड़ा रहा। उस सामान में अन्न आदि सामग्री बहुत थी, वह सब अनायास ही सिक्खों के हाथ लगी यह देखकर गुरु गोविन्दसिंहजी ने अपने मनुष्यों (सैनिक) से कहा—

"देके चौका कडीकार, अंदर आ बैठे कुडियार
मत भोटेरे मत भीटे, चौका साडा कीये॥"

इसका तात्पर्य यह कि "चौका करके, रेखा खींचकर अन्दर बदमाश और लबार बैठते हैं और फिर कहते हैं कि हमारा चौका छू जायगा परन्तु चौकेका यह

रिवाज खोटा है ।" यों कह कर उन्होंने एक सूअरका दाँत लेकर उस अन्नपर घुमाया और कहा "चल, निकल मुसलमानी" इतना कहकर अपने आदमियोंको भोजन करनेकी आज्ञा दे दी। इस तरह से उन्होंने अपने लोगों के प्राण बचाये। गुरु गोविन्दसिंहजी यदि उस अवसर पर ऐसी युक्ति न करते, सिक्खोंकी भयङ्कर दुर्दशा होती ।!

सारांश इतना ही है कि जिनके करने से जनताका उपकार होवे वे कर्म करने और हानिकारक कर्मोंका त्याग करना, यही मनुष्यका मुख्य कर्त्तव्य है। देशान्तर जाने से मनुष्य का आचार भ्रष्ट हो जाता है, यह बात मिथ्या है चाहे कितना ही बाहर जाया जावे, यदि अपना आचरण पवित्र है, तो कभी भ्रष्ट नहीं होता, परन्तु इस आर्यावर्त में रहकर जो दुष्टाचार करते हैं वे धर्म भ्रष्ट और आचार भ्रष्ट हैं।

इसके अतिरिक्त आप फिर देखिये कि राजपुतोने में क्षत्रियों के यहाँ भोजन बनाने वाले नाई होते हैं, परन्तु इतने ही से क्या उन्हें आप क्षत्रिय नहीं मानोगे ?

महाराणा प्रताप सिंह ने हिन्दुस्थानकी नाक रक्खी, इस बातको छोटे बड़े सब आज दिन भी अभिमान से स्मरण करते हैं। इन्हीं राजपूतोंमें से महाराजा साहब जयपुर हालमें विलायत गये थे, वे धर्म की रक्षा के लिये अपनी नौकामें गंगाजल, मिट्टी और भोजन और पीनेके सब पदार्थ यहीं से साथ ले गये थे। और तो क्या बकरे तक यहाँ ले गये थे। विलायत में बकरे और मिट्टी भी भ्रष्ट होती है क्या ?

मेरी समझ में हिन्दुओंके विचार बिलकुल बिगड़ गये हैं। वास्तव में जिनको बहुत से लोग ब्राह्मण समझते हैं, वे दक्षिणी ब्राह्मणों की दृष्टि में ब्राह्मण ही नहीं। मद्रासकी ओरके ब्राह्मण अन्य प्रान्त के ब्राह्मणों को अशुद्ध समझते हैं; कारण "दृष्टिदोषेन दुष्यति" इस प्रकार दृष्टिदोष से भी छूत लग जाती है, ऐसी उनकी समझ है। वे अपने को औरों से अधिक (उत्तम) समझते हैं।

अपना वर्णाश्रमधर्म तो अत्यन्त निकृष्टावस्था में जा पहुँचा है। मुझे यदि समय मिला तो वर्णाश्रमधर्मकी व्यवस्था किस प्रकार होनी चाहिये इस विषय में मैं अपने चार शब्द फिर कहूँगा। आठ वर्ष पहले जब मैं यहाँ आया था, तो वर्णाश्रम धर्म पर एक व्याख्यान दिया था, उस व्याख्यानकी रिपोर्ट लेकर "अनन्त" नामक एक रिपोर्टर ने पूनाके "केसरी" में छपाई थी। आनरेबिल जस्टिस रानाडेने उसे पढ़ी। लोनावली में जब उनसे मेरी भेंट हुई तो वे मुझे कहने लगे, "गुणकर्मस्वभावानुसार आप जाति मानते हैं, इसप्रकार आपके व्याख्यान से प्रतीत होता है, इस विषय में आपके और मेरे विचार बराबर मिलते हैं।" उस समय मैंने कहा: "हाँ मैं गुणकर्मस्वभावानुसार वर्णव्यवस्था मानता हूँ, वेद में भी इसी प्रकार लिखा है।" इसपर रानाडे महोदय बोले—"जिसके गुणकर्मस्वभाव अच्छे हों, उसे ब्राह्मण नहीं कहना, सज्जन कहना चाहिये। आज जो ब्राह्मण कहे जाते हैं उन्हें ब्राह्मण मानना बड़ी भूल है। जो ब्राह्मण धर्मात्मा, विद्वान् और गुणसम्पन्न हैं वे ही सच्चे ब्राह्मण हैं।"

मिथ्या अभिमान की घोषणा सुनते २ हिन्दू लोग अपना सर्वस्व खो बैठे हैं। आप नित्य देखते हैं कि—ऊँची से ऊँची श्रेणीके हिन्दू एकाध सोल्जरको देखकर डर जाते हैं। अपने लोगों में नीचता आ गई है, दुर्गुण से मनुष्योंमें नीचता आती है, और सद्गुणों से श्रेष्ठता प्राप्त होती है। हम अपने आपको जितना बड़ा मानते हैं उतने बड़े नहीं हो जाते। बड़े गुणों से मनुष्य बड़ा होता है। परस्पर की फूट आप जितनी अधिक बढ़ाओगे उतनी ही अधिक आपकी हानि होती जायगी।

अंग्रेजोंने सम्पूर्ण जगत् में आज जो श्रेष्ठता प्राप्त की है, यह उन्होंने परस्पर भेद नहीं रक्खा इसीसे मिली है।

सन १८५७ में जो घोषणापत्र महाराणी सरकार ने प्रकाशित किया था, उसमें यह बात स्पष्ट कही है। "किसी प्रकार का (धर्म, देश, रंग, जाति

आदिका भेद न रखते हुए, मैं अपनी सब प्रकार की प्रजा से समान बर्ताव करूंगी।" यदि किसी प्रकार का भेदभाव किसी एकाध अधिकारी की ओर से हुआ है तो यह उसकी भूल है, सरकार की नहीं। सरकार ने नियम में भेद नहीं रक्खा, नियम सबके लिये एकसा ही है।

वास्तव में देखें तो आप जो यह कहते हैं कि परदेशगमन करने से मनुष्य भ्रष्ट होता है, इसका क्या अर्थ है?

अपने ही देश में रहकर जो बिना किसी प्रकार की शंका के गुड़ शक्कर खाते हैं, अंग्रेजी औषध पीते हैं, अनेक प्रकार के पशुओं के मांसादिसे बनाया हुआ "सूप" डाक्टर की सलाह से उपयोग में लाते हैं, बड़े २ जानवरों के पेटमें निकले हुए द्रव्य जो औषधों में पड़ते हैं उसको खाते पीते आगा पीछा नहीं देखते, तब तुम्हारी पवित्रता और तुम्हारा धर्म कहाँ रहा? ब्राह्मणादि वर्णोंमें प्रवेश किये हुए मिथ्याभिमानको देखकर कबीरने कहा—

जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया।
तो और वाट काहे यहीं आया॥"

जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणों से जन्मा है तो किसी अन्य मार्ग से क्यों नहीं उत्पन्न हुआ?

तू कस ब्राह्मण हम कस सूद।
हम कस लोहू तुम कस दूध॥

तू ब्राह्मण है तो क्या तेरे में दूध निकलेगा? और हमारे शरीर में से क्या रुधिर मात्र निकलेगा? अपने गुण अच्छे तो आप अच्छा। बाहर की पवित्रता यह केवल ढोंग मात्र है, भीतर तो मलमूत्र भरा पड़ा है। निज देशमें रहकर अत्यन्त नीच पापकर्म करने वाले, म्लेच्छ वर्णके वेश्या के साथ व्यवहार करने वाले, होटल में जाकर अभक्ष्य भक्षण करनेवाले, आदि बातें करने वालों की सब जात वालों को खबर है। फिर भी यह लोग जात में रह सकते हैं और रहते हैं,

तो फिर विलायत जाकर धर्माचरण से रहने वाला एकाध मनुष्य डाक्टर, बारिस्टर, या सिविल सर्वन्ट होकर आतेही जाति बाहर कर दिया जावे यह क्या अच्छा है? चीन, जापान, ट्रान्सवाल आदि देशों में जाने से अधिक हानि नहीं, परन्तु विलायत जाने में कौन सा बड़ा पाप लगता है? इंगलेण्ड ही बड़े भारी पाप से भरा हुआ है क्या?

कुधारकों के जाति भेद की निष्कारण धांधल मचा देने से लोगों के विचार नितान्त संकीर्ण हो गये हैं। हिन्दुओंके अज्ञान से उनमें अनेक जुदे २ संप्रदाय बढ़ रहे हैं। इस कारण कुटुम्ब के मनुष्यों में परस्पर में अन्न व्यवहार भी नहीं होता। उदाहरण के लिये एक कुटुम्ब में यदि स्त्री वल्लभ सम्प्रदायकी हो, और पुरुष रामानुज सम्प्रदायका, इनमें पतिपत्नी का पवित्र सम्बन्ध होते हुए भी ये एक दूसरे के हाथ का अन्न नहीं ग्रहण करेंगे। कितनी मूर्खता है?

इन सम्प्रदायों की धांधल आजकल बहुत बढ़ गई है, क्या इसमें किसी शास्त्र का आधार कोई दिखाये? मैं आपसे कहता हूँ, ऐसे संकीर्ण विचार अपने पूर्वजों के नहीं थे, उनके विचार अति उदार थे, वे मनुष्य प्राणी की एक मानव जाति समझते थे। चारों वर्णों में रोटी व्यवहार था इतनाही नहीं. परन्तु बेटी व्यवहार भी था।

जब से इन सम्प्रदायों की गड़बड़ आरम्भ हुई तब से बेटी व्यवहार तो क्या रोटी तक बन्द हो गया।

होते २ यह धांधल इतनी बढ़ गई कि ब्राह्मण ब्राह्मण में रोटी व्यवहार बन्द हो गया। और इसी प्रकार स्थान स्थान में फूट फैल गई। अपने पूर्वजों के उदार विचारों से पूर्व समय में जो एक राष्ट्र था, उसके भी टुकड़े २ हो गये। इस जातिभेद से आज कितनी हानि हो गई है उसका अनुभव आपको नित्य होता है। शास्त्रों की सहायता से सर्व प्रथम इस जाति बन्धन को तोड़ दो, उपरोक्त जाति बन्धन से अपने को एक प्रकार की की पराधीनता प्राप्त हो गई है। मनु कहते हैं—

सर्वं परवशं दुखं सर्वमात्मवशं सुखम। मनु० ४।१६०॥

पराधीनता के समान कोई दुःख नहीं, इसलिये आत्मवश स्वतन्त्रता रूपी सुखकी इच्छा हो तो गुणकर्मानुसार वर्णाश्रमकी व्यवस्थाका फिर से प्रचार होना चाहिये।

इन सम्प्रदायों का विधान किस शास्त्र में है? ब्राह्मण रसोइयों का काम करें यह किस शास्त्र ने कहा है? पूर्वकाल में ब्राह्मण शूद्र के हाथ का बनाया हुआ भोजन करते थे, इस लिये यदि आवश्यकता हो तो पचासों उदाहरण शास्त्रों में से दे सकता हूँ। यह भेद वेदों में नहीं है, पुराणों में भी नहीं है। आर्यों में पहले भोजन व्यवहार में विधिनिषेध नहीं था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये एक दूसरे के हाथका भोजन करते थे, यह बात पूर्णतया शास्त्रसम्मत है। इतना तो अवश्य है कि मद्यमांस भक्षण करने वाले और उसी प्रकार से चांडाल आदि अति नीच कुकर्मी मनुष्य के हाथ का भोजन नहीं करना।

आपस्तम्बीय सूत्रके वैश्वदेव प्रकरण में इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है।

आर्याधिष्ठाता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः

अर्थात् आर्यभोजनके स्वामी हों और शूद्र भोजन तैयार करें। जिस समय युधिष्ठिर विराटके घर पर रहते थे, उस समय द्रोपदीने भीमसे कहा था—

शतं दासो सहस्राणां, यस्य नित्यं महानसे।
पात्रीहस्तं दिवारात्रमतिथीन् भोजयत्युत॥

भा० वि० प० अ० १८।

अर्थात् जिस युधिष्ठिरकी पाकशालामें लाखों दासियां हाथोंमें पात्र लेकर अनेक अतिथियोंको भोजन परोसती थीं, वही युधिष्ठिर आज दूसरोंके दास हो रहे हैं।

एक समय कौशिक ऋषि धर्म व्याधके घर गये। वहां व्याधने आसन, जल आदिसे उसका सत्कार किया, जिसे ऋषिने स्वीकारा।

प्रविश्य च गृहं रम्यमासनेनाभिपूजितः ।
पाद्यमाचमनीयं च प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः ॥

भा० व० अ० २७ ।

इस श्लोकमें कहे मुताबिक भोजनव्यवहार सब जगह सब वर्णोंमें प्रचलित था । मनुस्मृतिके ९ वें अध्यायमें का है—

विप्राणां वेद वेदविदुषां, गृहस्थानां यशस्विनाम् ।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो निःश्रेयसः परम् ॥

मनु० अ० ८ श्लो० ३३४ ।

ब्राह्मणोंकी सेवा करना यह शूद्रोंका परम धर्म है । इसी प्रकार भगवद्गीता अध्याय १८ में ।

"परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्"

अर्थात् सेवा करना यह शूद्रोंका काम है ।

जब ऐसा है तब जो वे अन्न रांधे (पकावें) तो क्या हानिसंभव है ? मेरे विचारसे जो मूर्ख हैं वेही शूद्र होनेसे हर प्रकारकी सेवा करें; उनके ऐसा करनेसे अपना भोजनादि सब व्यवहार सरलतासे चलेगा । रामायणमें इस सम्बन्धका प्रमाण—

पाद्यमाचमनीयं च, सर्वं प्रादाद्यथाविधि ।
तामुवाच ततो रामः शबरीं धर्मसंस्थिताम् ॥

रा० बा० भ० सर्ग० ७४ ।

अर्थात् पंपासरोवरके पास जब राम गये तो उन्होंने शबरीके हाथका जल ग्रहण किया ।

राघवः प्राह विज्ञाते, तां नित्यमबहिष्कृताम् ॥

रा० बा० अ० सर्ग० ७४ ।

इसकी टीका करते हुए परम वैष्णव रामाश्रमी स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं कि "जब शबरीके दिये हुए जलादिका ग्रहण श्रीरामचन्द्रजीने किया तब शबरी बोली,

महाराज मैं आज कृतार्थ हुई ।" आप विचार करें, जो इस प्रकार करना वेद-विरुद्ध होता तो श्रीरामचन्द्रजीके समान मर्यादापुरुषोत्तम कभी ऐसा करते ? भला ! आज-कलके महाराजा ऐसा करनेको तैयार होंगे क्या ! इसी टीकाकी वृत्तिमें यह लिखा है कि वहां रहनेवाले मातंग आदि सब महर्षि **'तद्दत्तमाहारादि अंगीकृत्येति'** वे भीलनीके हाथका अन्न खाते थे । एक समय श्रीरामचन्द्रजी नावमें बैठकर पार जा रहे थे, तब केवट (धीवर) ने कहा "महाराज भोजन तैयार है ।" जो भोजनव्यवहार न होता तो उसको ऐसा कहनेका साहस नहीं होता । श्रीरामचन्द्रजीने उसकी विनती स्वीकार नहीं की, यह बात जुदी है । उन्होंने कहा—"माता पिताकी आज्ञासे १४ वर्ष बनवास करूंगा यह व्रत मैंने लिया है । इस कारण मैं नगरमें नहीं रहूंगा, और मुनियोंका भोजन अर्थात् कन्द मूलके सिवा और कुछ नहीं खा सकता, इस लिये में तेरा अन्न नहीं खाता ।"

इन प्रमाणोंसे आप सहजमें समझ जावेंगे कि प्राचीन आर्योंमें खानेपीनेकी आजके समान रोक टोक न थी । मद्यमांसका सेवन नहीं करनेवाले सब एक दूसरेके हाथका खाते थे ।

वेद में भी इसी प्रकार कहा है । अथर्ववेद के नववें कांड में अतिथि सत्कार का वर्णन है । उसमें लिखा है, अतिथिको सबका अन्न खाना चाहिये । इसका विस्तृत विवरण तैत्तिरीय ब्राह्मण में है—

"यास्सर्वासु प्रजास्वन्नमत्ति स सर्वा दिशोऽभिजयति।

जो सब प्रजा का अन्न खाते हैं, वे समस्त जगत् को जीत लेते हैं । इतने ऊँचे विचारों की वेदों की आज्ञा होते हुए भी ओर्थोडोक्स हिन्दू उसे नहीं मानते ।

"शास्त्राद्रूढी बलीयसी" इस हथियार को सामने रखकर अपनी उन्नतिका मार्ग छोड़ बैठे हैं । वेद की आज्ञा के विरुद्ध जो कुछ खोटी रीतरिवाजा रूढि में आई हैं, उनको छोड़ देने की शुभ इच्छा नहीं दिखाई देती । जिसको एक बार पकड़ लिया वह फिर नहीं छूटता ।

हिन्दुओंकी स्थिति बैरागी के चेलों जैसी हो गई है। दृष्टांत—एक बैरागी ने अपने चेले को उपदेश किया कि "बेटा एक बार पकड़के फिर नहीं छोड़ना।" एक बार वर्षाऋतु में जाते हुए उसका पाँव फिसल गया, परन्तु गिरते २ उसके हाथ में गधे की पूंछ आगई। चेला उसके पीछे २ घसिटने लगा। उसका सारा शरीर छिल गया परन्तु पूंछ नहीं छोड़ी! यह देखकर कितने ही विचारवान् कहने लगे, बाबाजी पूंछ छोड़ दे, परन्तु वह बोला यह तो तीन काल में नहीं होगा क्या मेरे गुरु का उपदेश खोटा है'? यह सुनकर सब लोग "यह मूर्ख है" ऐसा कह कर अपने रास्ते चले गये। इसी प्रकार हिन्दू जो कुछ एक बार स्वीकार कर लेते हैं, सर्वस्व नाश चाहे हो जाय उसे नहीं छोड़ते। इनपर बरफ को गरम कपड़े में रहने की उपमा ठीक बैठती है। गरम कपड़े में रहने से बरफ अधिक नहीं पिघलता। कारण कि उष्णता के कारण भीतर की सरदी तो बाहर नहीं जाती और बाहर की गर्मी अन्दर नहीं आती, इस लिये बरफ जैसा का जैसा रहता है। हिन्दू ठीक इसी प्रकार के हैं। उनके अन्दर जो एकबार भी घुस गया उसे बाहर कभी नहीं जाने देंगे और जो किसी प्रकार से बाहर निकल गया उसे अन्दर नहीं आने देते। हिन्दू समाजका धर्म यही रह गया है। परन्तु सुधारकोंका स्वच्छन्द बर्ताव भी मुझे पसन्द नहीं। एक मराठा गृहस्थ विलायत हो आया, उसकी जाति के अगुआओंने उससे प्रायश्चित्त कराया, ऐसा करने में उसे पंचगव्य पीने को कहा, तब यह बोला "गोमय और गोमूत्र यह दोनों जिस प्राणी के हैं उसे मैंने विलायत में खाया है उससे तो शुद्ध हुआ ही नहीं, इस मल मूत्र से कैसे शुद्ध होऊंगा?" ऐसे विचार वालों का प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनेवालोंको शास्त्र की आज्ञा क्या है यह मालूम नहीं और प्रायश्चित लेनेवाले को वह सर्वथैव मान्य नहीं। जो बात अपनी समझमें बिलकुल निरुपयोगी है, और जिसमें कुछ तत्वार्थलाभ नहीं वह केवल लोगों को राजी रखने के लिये करने को अपने मत विरुद्ध तत्पर होना क्या यह बुद्धिमानों के लक्षण हैं? शास्त्र विरुद्ध स्वतन्त्र बर्ताव करनेवाले सुधारकों को मैं पसन्द नहीं करता।

"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"

वेद सब धर्मों का मूल है, इसी लिये वैदिक लोग वेदको मानते हैं, वेद स्वतः प्रमाण हैं उनके विरुद्ध हमसे नहीं जाया जा सकता। परन्तु जो अनुचित अर्थ वेदों के किये गये हैं उनका आदर भी मैं नहीं करता। शतपथ ब्राह्मण यजुर्वेद के प्रत्येक मन्त्र का अर्थ स्पष्ट बतलाता है, उसपर तथा और वेदांगों के ऊपर विचार करके जो २ यथार्थ अर्थ किये जावें वही मुझे मान्य हैं। जब लोग संस्कृत भाषा का अभ्यास करेंगे तबही उन्हें वेदोंके सत्य अर्थों का पता चलेगा, वर्तमान में वेदोंमें क्या कहा है यह नहीं जानने से कोई जो कुछ भी कह दे, अथवा चाहे जैसा मन्त्र बोलदे तो उसे ठीक मानकर जनता उसे महा बुद्धिमान् समझती है। वर्तमान में यह मूर्खता किस प्रकार चल रही है वह एक दृष्टान्त से समझ में आ जायगा।

एक समय एक धूर्त एक राजनगर के प्रसिद्ध बाग में जाकर, अपने चारो ओर बड़े २ ग्रन्थ एकत्र कर ध्यानस्थ होकर बैठ गया। किसीके पूछने पर कहता "मैं स्वर्ग से आया हूँ, मुझे इन्द्र ने भेजा है, ये ग्रन्थभी स्वर्ग से उतरे हैं, तुम इन्हें ले जाओ और इनकी पूजा करो।" शनैः २ यह चर्चा समस्त नगर में फैल गई।

लोगों के समूह के समूह उसके दर्शनों को आने लगे। अन्तमें राजा को भी खबर हुई। तब वह भी अत्यन्त नम्रता से उस धूर्त के दर्शन करने आया। और यथोचित पूजासत्कार कर "आप कहाँ से पधारे" इस प्रकार पूछा। इसपर धूर्त ने गम्भीर वाणी से कहा "राजन, तुम्हारे समीप इन्द्र ने मुझे विशेष रूप से भेजा है, तेरी राजनीति और धर्मप्रीति देखकर इन्द्र अति प्रसन्न हैं। उन्होंने बुलाकर कहा, जाकर राजाको गुरूपदेश करो, क्योंकि उसके बिना स्वर्ग में आने की शक्ति किसी में नहीं है।

राजा जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा "महाराज अब विलम्ब क्यों ? मुझे शीघ्र उपदेश दीजिये।" वह बोला—"इतने अधिक मनुष्योंके सामने यह नहीं हो सकता।"

राजा ने सबको उद्यान के बाहर चले जाने की आज्ञा दी। जब पास में कोई न रहा तो अत्यन्त आदर करके वह धूर्त बोला—"महाराज ! आपको एक महान् गुरुमन्त्र का उपदेश करने की आज्ञा मुझको हुई है, अपना कान इधर करिये।" राजा ने अत्यन्त आतुरता से ऐसा ही किया। यह देखकर धूर्तने "श्रीगणेशाय नमः।" ये अक्षर उसके कान में कहे। इस मंत्र का अर्थ क्या है यह पूछने पर वह बोला, इस मन्त्रका अर्थ जिसके ध्यानमें जो आता है वह करता है। परन्तु आप पर इन्द्रकी कृपा होनेसे इस मंत्र का सच्चा अर्थ मैं आज आपसे कहता हूँ। परन्तु इस अर्थको आप इस मृत्युलोकके किसी प्राणीसे मत कहना, क्योंकि यह स्वर्गमान्य अर्थ हैं। इस मन्त्रका अर्थ "सतुवेमें गुड़ रख दो" यह है !!

राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और धूर्तका अति सम्मान किया, और अपार धन देकर आज्ञा मांगी। वह धूर्त तो चला गया, परन्तु राजाने उस दिनसे पीछे जो २ पंडित आवे, उससे श्रीगणेशाय नमः का अर्थ पूछना आरम्भ किया। पंडितगण अत्यन्त आश्चर्यसे कहते "महाराज, इसमें ऐसा क्या महत्व है, इसका अर्थ कुछ अधिक गूढ़ नहीं है। श्रीका अर्थ है संपत्ति, यश, कीर्तिवान, भाग्यवान्, गणका अर्थ है संसार, ईशका अर्थ पति, स्वामी, नमःका अर्थ नमस्कार है, अर्थात् इस संसारका स्वामी जो परमात्मा है उसको नमस्कार करता हूं इसका अर्थ यह है। परन्तु राजाको इन अर्थोंसे शान्ति नहीं होती, वह मनमें कहता ये लोग अत्यन्त मूर्ख हैं, इन्हें वास्तविक अर्थका क्या पता। सैकड़ों पंडित आये, परन्तु राजाका मनभावता अर्थ किसीने नहीं किया। अन्तमें एक चतुर पंडितने विचार किया कि इसमें कुछ भेद है। इसके मूलमें कुछ विलक्षणता है, राजाको जिस अर्थका पता है वह उन्होंने अपनी रानीको विशेषतासे कहा होगा। कारण कि राजा की प्रीति रानी पर अधिक है। इस प्रकारका तर्क बांधकर वह पंडित उस नगरमें रहने लगा, और रानीकी कृपापात्र एक मालन थी उसका पता किसी युक्तिसे लगा लिया, और उसे अपनी धर्म की बहन बना लिया, और बहुतसा धन देकरके उसे

प्रसन्न कर लिया, कितने ही दिनों पीछे रानीसे श्रीगणेशाय नमः का अर्थ पूछ लेने की उससे ले ली। अवसर देखकर मालनने यह बात रानीसे कही, परन्तु रानी कहने लगी कि इसका अर्थ कदापि किसीसे न कहना ऐसी मुझे आज्ञा है। मालनने कहा, "बाई साहब यदि आप मुझे अर्थ नहीं बतावेंगी तो मैं अपना प्राण दे दूंगी।" बहुतसी खटपट और खींचतान करनेके पीछे निरुपाय होकर रानीने वह अर्थ बतला दिया। और उसने तुरन्त ही घर जाकर वह अर्थ पंडितको बतला दिया। अवसर देखकर रातके समय यह चतुर भी उस धूर्तके समान पुस्तकें फैलाकर बागमें जा बैठा। कितने ही दिनों पीछे राजाको खबर हुई कि इन्द्रके यहां से एक पंडित आया है। राजाने विचार किया कि इन्द्रके यहां से ही आया है वा नहीं इसका निर्णय करना चाहिये।

तब वह पंडितके पास जाकर बोला—"महाराज आपको स्वर्ग के अर्थकी खबर है।"

पंडितने कहा—"तुम्हारी मर्जी हो उस मन्त्रका अर्थ पूछो, तत्काल राजाने "श्रीगणेशाय नमः" का वास्तविक अर्थ क्या है यह पूछा।' पंडित बोला, "राजन्, स्वर्गमें रहने वालोंके अतिरिक्त इसका सच्चा अर्थ कोई नहीं जानता। इन्द्रकी तेरे ऊपर विशेष कृपा है। इस मन्त्रका अर्थ "सतुवेमें गुड़ रख आओ" यह है।

यह अर्थ सुनते ही राजाको पूर्ण विश्वास हो गया, कि यह पंडित स्वर्गसे आया है। अपने ऊपर राजाकी अपार श्रद्धा देख कर वह पंडित बोला—"इन्द्रने आपको देनेके लिये एक ग्रन्थ भेजा है, उसे स्वकार करें।" राजाने आदर पूर्वक उसे स्वीकार कर पूछा—"महाराज इसमें क्या कहा है?" पंडितने उत्तर दिया—आप थोड़े दिन इसका अभ्यास करिये, तब आपको इसमें क्या है, इसका पता भली प्रकार लग जायगा।" पंडितका राजाको दिया हुआ यह ग्रन्थ लघु कौमुदी नामक व्याकरणका ग्रन्थ था, राजा उसका अध्ययन भक्तिभावसे करने लगा। थोड़े दिनोंमें राजा स्वयं 'श्रीगणेशाय नमः' का अर्थ करने और समझने योग्य हो

गया। तब एक दिन राजा साहबने पंडितजीसे पूछा, महाराज ! श्रीगणशाय नमः का अर्थ 'सतुवेमें गुड़ रख आओ' यह किस प्रकार होता है ?

तात्पर्य, अन्तःकरणमें ज्ञानका प्रकाश होते ही राजाका भ्रम दूर होगया, और वह ठग मुझे फंसा गया ऐसा भासने लगा।

आपमें जबतक वेदादि ग्रन्थोंके समझनेकी शक्ति नहीं है, तब तक इस प्रकार के लबार गुरु उनका चाहे जैसे अर्थ करके आपके फंसानेमें कभी न करेंगे। खोटे २ अर्थ करके लोगोंको फंसाना और उनका धन हरण करना यह ब्राह्मण संन्यासी आदि धर्मगुरुओंका धर्म नहीं। संन्यासी तो धर्मके स्थान ही हैं। जिन्हें थोड़ेमें ही वेदोंके वास्तविक अर्थ जाननेका मार्ग जाननेकी इच्छा हो उन्हें पं० गुरुदत्त विद्यार्थी द्वारा प्रसिद्ध किया "टरमिनोलाजी आफ वेदाज़ Terminology of Vedas नामक अंग्रेजी ग्रन्थ देखना चाहिये। इस ग्रन्थमें वेदार्थ करनेमें आर्ष मार्ग कौनसा है इसका खुलासा संक्षेपमें किया गया है। वेदोंके सरल अर्थ भी किस प्रकार उलटे किये जाते हैं उसका नमूना मैं आप लोगोंको बतलाऊंगा।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे। निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे। वसोमम आह मजानि गर्भधात्वमजासि गर्भधम्। यजु० २३-१९

यजुर्वेदके इस मंत्रका अर्थ पंडित महीधरने इतना अधिक विपरीत किया है कि यहाँ विराजमान अपनी प्रिय बहनोंकी उपस्थितिमें उसका उच्चारण करनेको असमर्थ हूं। गणपति शब्दका अर्थ घोड़ा किया है और "गर्भधं गर्भ दधाति" इस प्रकार कहा है। क्या बुद्धिमान् मनुष्य इसे सत्य मानेंगे ? इस मन्त्रका वास्तविक अर्थ ऐतरेय ब्राह्मणमें इस प्रकार किया है—

वयं गणानां गणनीयानां पदार्थसमूहानां पतिं पालक स्वामिनं त्वां परमेश्वरं गणपतिं हवामहे गृहणीमः

अर्थात् परमात्मा गणनीय पदार्थोंके पति अर्थात पालन करने वाले हैं। उसे हम पूज्य बुद्धिसे ग्रहण करते हैं।

पौराणिक लोग तो सूंड और तूंदकी एक आकृति बनाकर उसे गणपति समझते हैं। इस गणपतिका जो यह स्वरूप देखनेमें आता है, उसका वर्णन वेदों में कहां है क्या कोई मुझे दिखावेगा ?

जिन्होंने परमात्मा की इस प्रकार हंसी की है, वे वेदानुयायी कभी नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त एक बात और शोककी है कि इतने बड़े विशाल दूंद के गणपति के लिये बाहन छोटासा मूषक दिया है। बिचारे गणपति महाराज तो मूषकपर आरूढ़ होकर हवा खाने निकले और सामने बिल्ली मिल जावे तो मूषक, और उनपर आरूढ़ गणपति महाराज की क्या दशा होगी इसका बिचार कभी किसी ने किया है ? इससे भी अधिक अज्ञानी कितने ही पौराणिक भक्त हैं, जो केवल गुड़का ही गणपति बनाते हैं, और गुड़का ही नैवेद्य उसके सामने धरते हैं। गुड़ के गणपति को गुड़ का नैवेद्य दिखाकर पीछे स्वयं उसे गट्ट कर जाते हैं !

बर्तमान में वेदों के अर्थ और उनका बिनियोग, बिलकुल उलटा करने में आता है। मैं तो उन्हें कभी नहीं मान सकता। जो अर्थ ऋषियों ने किये हैं वे ही मुझे मान्य हैं। उनके विरुद्ध किसी अर्थ को मानने को मैं तैयार नहीं। उन्हीं के आधार पर वेदशास्त्रानुकूल जो सुधार होते हैं वे मुझे स्वीकार हैं और वे ही सच्चे सुधार हैं।

समुद्रयात्रा सम्बन्धी वेदमन्त्रों के अर्थ भी इसी प्रकार उलटे किये गये हैं। परन्तु प्राचीन ऋषियों ने वेदमन्त्रों के जो अर्थ किये हैं, वे आप देखेंगे तो जानेंगे कि वेदों में समुद्रयात्रा करने की पूर्ण आज्ञा है। वह मैं आपको बतलाता हूँ। यजुर्वेद अ० ६ मं० ३१ वां

'समुद्रङ्गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षङ्गच्छ स्वाहा'

इस पर भाष्य—"समुद्रवन्ति जलानि यस्मिन् तमुदधिम् गच्छ स्वाहा नौका रचनादि विध्यासिद्धेन यानेन अन्तरिक्षम् आकाशम् गच्छ।"

यह मन्त्र समुद्र यात्रा का विधायक है। वेदमन्त्र कई प्रकार के हैं। जैसे आज्ञा देने वाले और सम्मति प्रदर्शक, आदि। इस मंत्र में केवल सम्मति ही नहीं, परन्तु समुद्रयात्रा के लिये स्पष्ट आज्ञा दी गई है। कारण गच्छ शब्द का अर्थ "जा" यह है। अनुमति और विधि, इन दो में विधिवाक्य श्रेष्ठ होते हैं।

यह विषय पूर्वमीमाँसाका है। मुझे यहाँ केवल इतना ही बतलाना है कि समुद्रयात्रा के लिये वेद की आज्ञा है। इस पर कोई शंका करे कि जब वेद में समुद्रयात्रा करने की आज्ञा है तो वह किस प्रकार की जावे इसका विधान भी होना चाहिये। हां विचार से यदि आप देखेंगे तो विधान अवश्य मिलेगा।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥

यजु० अ० २१ मंत्र ६।

सुत्रामाणं—रक्षण करनेवाली, द्याम् प्रकाशवाली, अनेहसम् जिससे हानि नहीं इस प्रकार की, पृथिवीं मोटी विस्तीर्ण, सुशर्माणम्-सुशोभित किये हुए स्थान जिसमें हों, अदितिम्- अखंडित, सुप्रणीतिम्-अनेक राजा और प्रजाओंसे युक्त, अर्थात् सब प्रकार के मनुष्य जिसमें होवें। देवीम्-विद्वान् पुरुषों द्वारा निर्माणितं, अथवा दिव्य गुणवाली। नावम्-अर्थात् नादेयन्ति प्रेरयन्ति प्रयाताम्-प्रेरणा करने वाली, नावम्, स्वरित्राम्-शोभायमान कला युक्त और अस्रवन्तीम्-छिद्र रहित, इस प्रकार के लक्षण वाली नाव में, आरुहेम-बैठना चाहिये। यह इस मंत्र का स्पष्ट अर्थ है।

इस पर कोई शंका करे कि इसमें तो बहुत से मनुष्यों के जानेकी आज्ञा है। इस बम्बई नगर के दो चार हजार सेठ एक साथ ही जावें तो ठीक, परन्तु अकेले मनुष्यको समुद्रयात्रा करने की आज्ञा वेदमें कहाँ है? बात ठीक है, इससे आगे के मंत्र में ही यह शंका दूर कर दी गई है। उसमें अकेले जानेकी भी आज्ञा दी गई है।

सुनावमोरुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारि त्रां स्वस्तये।
यजु० अ० २१ मंत्र ७ यथाऽहं स्वस्तयेऽस्रवन्तीमनागसं शतारित्रां सुनावमारुहेयं तथास्यां युयमप्यारोहत॥

"जिस प्रकार मैं सुख से छिद्र आदि दोषरहित अनेक यंत्रों से युक्त इस प्रकार की नाव में बैठता हूँ उसी प्रकार तुम बैठो।"

इस प्रकार एक दूसरे को उपदेश करने की आज्ञा वेदों में स्पष्ट मिलती हैं।

पूर्व कालमें वेदोंकी आज्ञानुसार आर्यगण देश देशान्तर में जाते थे, आपको भी उसी प्रकार जाना चाहिये। वेदों में और भी कहा है—

मनो निविष्ठ मनु सं विशस्व यत्र भूयेर्जुषसे तत्र गच्छ।

अथर्व० कां० १८० अनु० ३ मं० ६

हे मनुष्य तेरी इच्छा हो जहाँ जा, समस्त पृथिवी तेरे रहने के लिये है। पराशर स्मृति में भी इसी प्रकार कहा है—

वसन्वा यत्र तत्रापि स्वाचारं न विसर्जयेत

"ब्राह्मणादि वर्ण चाहे जिस देशमें जावें, रहें, परन्तु अपना आचरण नहीं छोड़ें।" जो मनुष्य परदेशगमन के विरोधी हैं, उनकी स्थिति कूपमण्डूकों के समान है। जो इन कूपमण्डूकों की सुनोगे तो मुफ्त में अपनी हानि ही कर बैठोगे।

शास्त्रों में नौकामें बैठने की आज्ञा मात्र ही हो ऐसा नहीं है मनुस्मृतिमें यह भी बतलाया गया है कि उस समय में नौका चलाना जानने वाले चतुर मनुष्य भी भारतवर्ष में थे।

समुद्रयानकुशलाः देशकालार्थ दर्शिनः।
स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति॥

मनु० अ० ८।

नौका, जहाज आदि बनाने और चलाने में निपुण, देशकाल और लाभ-हानि जाननेवाले, जो कर निश्चय करें वह राजा को मान्य होना चाहिये। इस प्रकार

अनेक ग्रन्थों में लिखा है। केवल लिखा ही नहीं है, प्राचीन कालमें अनेक आर्य पुरुषों ने समुद्र यात्रा की है।

आम्लेच्छाबधिकां सर्वां सभुंक्ते रिपुमर्दनः।
रत्नाकर समुद्रान्तश्चातुर्वर्ण्यजनावृताम्॥

भा० आ० प० अ० ६८॥

राजा दुष्यन्तने म्लेच्छोंके अनेक देशों पर शासन किया था। और भी—

स तु वाजी समुद्रान्तां पर्य्येत्य वसुधामिमाम्

अश्वमेध प० अ० ८१।

सब देशों की अन्तिम सीमातक समुद्रों को पार करके युधिष्ठिर का घोडा गया।

मनुस्मृति में लिखा है—

पौंड्रकाश्चौंड्रद्रविडाः कम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पल्हवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः॥

मनू० अ० १४-४४॥

पौंड्रक आदि अनेक क्षत्रिय थे, परन्तु वेदोंका उपदेश न होने से वे शूद्रत्वको प्राप्त हो गये थे। पौण्ड्र अर्थात् जापानी लोग, औंड्रक-उड़ीसामें रहने वाले, द्रविड देशस्थ, काँबोज, हिन्दुकुश पर्वतके उत्तर पश्चिमकोणके यवन, ग्रीसके लोग शक, रोमके रहने वाले, पल्हवा-ईरानकी भाषा जानने वाले, चीन, किरात जंगलमें रहने वाले अनेक लोग, दरद काकेशस पर्वतके पास रहने वाले, खशः अर्थात् चीनी तातारी लोग।

महाकवि कालिदास ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थमें लिखते हैं—

यो रूमदेशाधिपति शकेश्वरं जित्वा गृहीत्वोज्जयनिं समाह्वये।

विक्रमादित्यने (शकेश्वर) रोमके राज्य पर चढ़ाई की, और उसके राजाको उज्जैनमें पकड़ लाये, फिर उसको राजनीति विद्या सिखाकर छोड़ दिया। इससे भी उस समय परदेशगमन होता था यह सिद्ध हुआ या नहीं? जब तक मनुष्य

उत्साहसे एक देशसे दूसरे देशमें नहीं जावेंगे तब तक विद्या, धन, शिल्प, कलाएं आदि उन्हें नहीं प्राप्त होंगी।

समुद्रयात्रा किये बिना व्यापारी अधिक धन नहीं प्राप्त कर सकते। महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २६६ देखो।

वाणिग्यथा समुद्राद्व्यर्थं लभते धनम्॥

अर्थात् वणिकोंको समुद्रयात्रा किये बिना यथार्थ धन नहीं मिलता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण देखनेको दूर जानेकी अवश्यकता नहीं। अंग्रेज,भारत वर्षमें किस प्रकार आये यही दृष्टान्त लो ! सर्व प्रथम आर्यावर्त्तमें पोर्चुगीज आये और यहांसे गरम मसाला आदि पदार्थ खरीद ले जाकर फ्रेंचोंको बेचने लगे।

फ्रेंच वे चीजें अंग्रेजोंको बेचते। एक समय फ्रेंचोंने गरम मासालेकी कीमत बहुत बढा दी। इस पर कितने ही अंग्रेजी व्यापारियोंने सोचा कि इतने अधिक मूल्य पर फ्रेंचोंसे माल लेने के स्थानमें स्वयं हिन्दुस्थान जाकर माल खरीदें तो हमें बड़ा लाभ हो। इस प्रकार निश्चय कर कितने ही व्यापारियोंने बहुतसा रुपय इकट्ठा किया और जहाज लेकर यहाँ आये। यहाँ उन्हें कैसा गरम मसाला मिलता है ? उन्हें समुद्रयात्रा लाभदायक सिद्ध हुई यह सब जानते हैं।

परदेश भयाद्भीता बहुमाया नपुंसकाः।
स्वदेशे निधनं यान्ति काकाः कापुरुषा मृगाः॥

एक कवि कहता है कि बहुमोही, नपुंसक, कापुरुष, कव्वा आदि पशु ये सब परदेशके भयसे अपने २ देशोंमें सड़ मरते हैं। परन्तु शूरवीर पुरुष अन्य देशों पर आक्रमण कर अपनी सत्ता स्थापित करते हैं।

शाहजहानके समयमें एक अंग्रेज वैद्य भारतवर्ष में आया था। उसने शाहजहांकी कन्याको एक दुःखसे बचाया। बादशाहने उससे पूछा "तू क्या पुरस्का मांगता है ? तब उस वैद्यने कहा—

"मुझे किसी दूसरी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, हमारे देशक जो माल यहां आवे उसपर जकात माफ होना चाहिये"

बादशाहको इसपर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसने कहा "तैंने यह क्या मांगा ?" अपने लिये कुछ धन मांगो, एकाध जागीर मांगो, परन्तु वैद्यराज स्वार्थी नहीं थे, वे बोले—"मुझे और कुछ नहीं चाहिये। जो कुछ मैं माँगता हूं वही दीजिये, बस !

कितना स्वार्थत्याग, कितनी दूरदर्शिता और कितनी देशभक्ति ! यदि स्वार्थके लिये अपनी जाति ग्राम और देशकी हानि करने वाले मनुष्योंमेंसे वह होता तो इतना स्वार्थत्याग कभी भी नहीं कर सकता था। अपने देश भाइयोंके कल्याणका मार्ग उसे नहीं दिखाई पड़ता।

अंग्रेजोंने यहाँ आकर देखा तो यहाँके मूर्ख लोग आपसमें झगड़ा बखेड़ा करनेमें मग्न थे, फिर क्या पूछना; उन्होंने तत्काल ही यह झगड़े मिटाये। अधिक क्या ? हमें अनेक उपायोंसे झगड़ोंसे निवृत्त कर, वे ही हमारे जीवन, धन, धाम और धर्मका संरक्षण करते है। अपनी दयालु ब्रिटिश सरकारने जिसमें हमें सुख होय ऐसी ही योजना की है, यह बात सत्य है, परन्तु गत २५ वर्षोंमें दुष्कालसे सवा दो करोड़ भूखों मर गये, इस प्रकार मैंने सरकारी रिपोर्टमें ही पढ़ा है। यह क्या ? आप मुझसे पूछेंगे तो इसमें सरकारको दोष देने जैसी कोई बात नहीं है। वर्त्तमानमें राली ब्रदर्स जैसे कितने ही अंगरेज व्यापारियोंके पेट मोटे हो गये हैं, अन्नके पकते देर नहीं कि वह तुरन्त ही उनके पेटमें दाखल, तब सृष्टिनियमानुकूल यदि एककी थैली भरेगी तो दूसरेकी खाली हो जायगी, जिसकी थैली खाली रहेगी वही भूखों मरेगा।

सिक्खों और पेशवाओंके समयमें कठिन प्रसंग आया था। एक राजाने मुसलमान किस तरह मरते हैं, यह देखनेके लिये कितने ही मुसलमानोंको एक नावमें भरके डुबा दिया। मुसलमान बादशाह क्या इससे खराब थे ? नहीं ! एक बादशाह तो कुरान लिखकर अपना पोषण करता था, अपने सुखचैनके लिये प्रजाका द्रव्य उड़ाना यह बड़ा पाप समझता था। यह बादशाह कुरान लिखकर मुल्लाओंको दिखलाता। एक समय मुल्ल ने कहा कि इसके अमुक भागमें भूल है

बादशाहने शांतिसे अपने लिखे हुएके पास वह लिख लिया, और मुल्लाके कहे मुताबिक उसका पाठ कर दिया। मुल्लाके चले जाने पीछे उसका लिखाया हुआ तो काट दिया और अपना लिखा रहने दिया, इसका कारण पूछने पर उसने कहा—'उस मुल्लाको खराब लगे वह काम मैं क्यों करूं!' दूसरे भी अप्रसन्न होते है इस प्रकारकी समझवाले बादशाह भी यहां हो गये हैं।

पेशवाई शासनमें कितने ही मूर्ख धर्मान्ध दुराग्रही ब्राह्मणोंने शूद्रों पर अत्यन्त अत्याचार किया था। "शूद्र यदि वेदमन्त्र सुन ले तो उसके कानमें पिघला हुआ शीशा डालना, वेदका उच्चारण करे तो मुंह बींध देना, हृदयमें धारण करे तो उसे विदीर्ण कर देना, इस प्रकार एक वेदान्तके सूत्र पर चार आचार्योंने जो भाष्य किया है उसका आशय हैं।

इस प्रकार चार आचार्योंका अपने संकीर्ण विचारोंके कारण एक मत होकर इस प्रकारकी आज्ञा देनेके पीछे क्या चाहिये? परन्तु मूल वेदोंमें इस विषय पर क्या लिखा है उसके जाननेकी क्या कोई प्रयत्न (कोशिश) करेगा? पट्टे से खाटपर और खाट से पट्टे पर जिन्हें आदत पड़ी हुई है. उनक हाथोंसे और अधिक क्या होगा? वे वेदोंके देखनेका कष्ट क्यों उठावें?

महाभारतके समयके पीछे हिन्दू राजाओंने बहुत अन्याय किया है, यह कहे विना मुझसे नहीं रहा जाता। अंग्रेज सरकार के सब ही काम ठक हैं, यह कहने का मेरा आशय नही। परन्तु आपको एक बात लक्षमें रखनी चाहिये, वह यह कि अंग्रेज जो कुछ करते है, वह नियमसे करते हैं। सब ही लार्ड लिटनके समान नही आते, और लिटनशाही सदा ही नही चलती। रिपन के समान भी प्रजाहित-चिन्तक किसी २ समय आ जाते हैं।

मैं एक समय नवसारी प्रान्तके जलालपुर नामक गांवमें गयाथा, यह गांव अंग्रेजी और गायकवाड़ सरकारकी हद्द पर है। मेरे पास दोनों राज्योंके निवासी आये, उनसे मैंने पूछा कौनसे राज्यकी प्रजा अधिक सुखी है? तब उन्होंने कहा—"गायक वाड़ीमें जमीन पर कर बहुत कम हैं, परन्तु कोई २ कर भारी सख्त

होते हैं। यद्यपि महाराज साहब प्रजावत्सल और अत्यन्त दयालु हैं। उन्होंने प्रत्येक कृषकको ५००) रु० बिना व्याजके दिये हैं। अंग्रेजी राज्यमें यह सत्य है कि कर अधिक देना पड़ता है, परन्तु अमलदार न्यायी और सूज्ञ होते हैं, उनका काम नियम पूर्वक होता है। कोई २ खराब और जुल्मी भी आजाते हैं। जमीनपर कितना कर लेना इस विषयपर मनुस्मृतिमें कहा है—

पञ्चाशत् भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा॥

मनु० अ ७। श्लो० १३०॥

बारह मन धान पके तो एक मन राज्य लेवे, प्रसंगवश राज्यमें अधिक द्रव्यकी आवश्यकता हो तो आवश्यकतानुसार आठवां भाग ले, परन्तु पंचमांशसे अधिक तो कभी न लेवे।

व्यापारसे क्या लाभ है, कौनसा माल कहांसे लाना, कौनसा अन्न किस प्रकार अधिक उत्पन्न होय, यह व्यापारियोंको व कृषकको अवश्य जनना चाहिये।

पंचतन्त्रमें लिखा है—

विद्या वित्तं शिल्पम्, तावन्नाप्नोति मानवः सम्यक्।
यावत् व्रजति न भूमौ, देशाद् देशान्तरं हृष्टः॥

जबतक मनुष्य एक देशसे दूसरे देशको नहीं जाता तबतक, विद्या, धन और कारीगरीके काम उसे भली प्रकार नहीं आते।

जिसे अपनी उन्नति की इच्छा होय, वह बम्बई के दस बीस श्रीमन्त व्यापारियों की कम्पनी बना, जहाज खरीद करने की योजना करे तो लाखों रुपयों का लाभ होय। लिखने के लिये कागज, कलम और खड़िया दवात चाहिये तो विलायत से मंगवाओ। कपड़ा, सुई, डोरे भी विलायत से कपड़े सीने के लिये आवें। सारांश, आप प्रत्येक वस्तु विलायत से ही मगाते हैं तो स्वयं जा कर क्यों नहीं लाते? उसी प्रकार अपने देश की तैयार हुई वस्तुओं का प्रसार भी वहाँ जाकर क्यों नहीं करते? आढ़त में जो जोखम होती है, कमीशन में जो लाखों चले जाते हैं उन्हें क्यों नहीं बचा लेते?

यदि हिन्दुओं के स्वतन्त्र बैंक्स खुल जांय तो वृद्धि दृढ़ता पूर्वक हो, लोगों के खानपान और आचार विचार के ऊपर दृष्टि रक्खो, परन्तु स्वार्थ साधु लोगों की खोटी बातों पर विश्वास करके बैठ जाने की आवश्यकता नहीं।

सुभाषित में लिखा है।

गेहे तिष्ठन् कुमतिरलसः कूपकूर्मः सधर्मः।
किं जानीते भुवनचरितं किं सुखं चोपभुंक्ते॥

जो आलसी और कुविचारी होते हैं, वे कूपमंडूकके समान घरमें बैठे रहते हैं, देशान्तर भ्रमण करने के लाभ को वे क्या जानें। देशान्तर जाने से धर्म नहीं जाता, परन्तु पापचरण से धर्म जाता है। आर्यावर्त के बाहर के सब राजा क्षत्रिय थे, परन्तु आचार बिगड़ने से वर्तमान में पतित माने जाते हैं, उन्हें पवित्र कर लेने की आज्ञा मनु महाराज देते हैं—

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि।
तांश्चारयित्वा त्रीन् कृच्छ्रान्यथा विध्युनापयेत्॥
प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्यस्थास्तु ये द्विजाः।
ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत्॥

मनु० अ० ११। १८१-१८२

जिस द्विज को समय पर गायत्री मंत्र का उपदेश और उपनयन संस्कार न हो, उसे तीन कृच्छ्र कराकर यथा विधि शास्त्रानुकूल उपनयन करावे। वेदों को न पढ़ा हुआ, द्विज प्रायश्चित की इच्छा करे तो उसे भी तीन कृच्छ्रव्रत करावे। इस प्रकार अपने देश के लोगों को देशाटन कराके बाहर के पतित लोगों को शास्त्रों की आज्ञानुसार प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करना चाहिये। इसी से अपनी वृद्धि होगी।

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

गंगा का नामोच्चारण करने से जिनकी शुद्धि हो जाती हैं, ऐसे अपने हिन्दू भाइयों को सैंकड़ों योजन जाने में कोई हानि नहीं। मेरे प्यारे भाइयो! आपको यह दुराग्रह छोड़ देना चाहिये।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्

जो लोग उदार चरित्र है, उनके इस पृथिवीपर के सब लोग कुटुम्बसमान हैं। आपको उदारचरित्र होने की इच्छा करनी चाहिये, दुराग्रह और मूर्खता से आपने अपनी आर्यजाति का कितना नाश कर लिया है, वह आपको देखना चाहिये। भ्रष्ट हुए, लोगों की संख्या दिन २ भयंकर रीति से बढ़ती जा रही है, इसका कारण क्या? इसके रोकने का कोई उपाय आप नहीं करते, आप इतने बेखबर हो गये हैं कि सिर्फ पिछले ७०० वर्षों में आठ करोड़ मनुष्य मुसलमान हो गये, १५० वर्षों में ५० लाख ईसाई हो गये* और यह प्रवाह अभी गति से चल रहा है, यदि आप गणित जानते हों तो हिसाब करो कि जिस जाति में मनुष्य नित्य कम होते जाते हैं (निकलते जाते हैं) बढ़ता कोई नहीं (आता कोई नहीं) उस जाति का जीता रहना, बचा रहना क्या सम्भव है? अन्त में वह दिन क्यों न आवेगा जब कि हिन्दू जाति के स्थान में केवल शून्य रह जावे? इसका कारण क्या? कारण प्रत्यक्ष है कि जिसे आपने एक समय नीच मान लिया, उसे कदापि उन्नति का अवसर न देकर उसे उसी स्थिति में रखकर दूर ही खड़े रखने की इच्छा करते है। उदाहरण के लिये यदि एकाध चमार अपने पास आने लगे तो आप उसे झिड़क कर दूर हटा देंगे, परन्तु यदि वही चमार ईसाई होकर आवे तो अत्यन्त प्रेम से "शेक हैण्ड" करने को तैयार हों। जिन्हें यह भेद प्रत्यक्ष दिखता है वे अपने भाई अन्य धर्म में क्यों नहीं जावें? तुम्हारे हाथों अपना अपमान कब तक सहें?

अन्य धर्म के लोग इस प्रकार उत्तरोत्तर अपनी वृद्धि कर रहे हैं और अपना

* ये आँकड़े उस समयके हैं जब स्वामीजीने यह व्याख्यान दिया था। आज ये संख्याएँ बहुत अधिक हैं। —सम्पा०

भयंकर क्षय हो रहा है ! यदि इसका उपाय न किया तो यह क्षय इसी प्रकार होता रहेगा। अतः हिन्दू जाति के अस्तित्व में भी शंका है। अब हिन्दू जाति की मूर्खता पर कहां तक और क्या २ कहा जावे ? परमात्मा कृपा करेंगे तब ही इससे तरने का उपाय मिलेगा।

पाँच हजार वर्षों से पहले आर्य और दस्यु इन दो जातियों को छोड़कर और तीसरी जाति नहीं थी, परन्तु आजकल हिन्दुओं में इतनी जातियां बन गई हैं कि उनकी गिनती नहीं हो सकती। अफगानिस्तान के पठान किसी समय में भाटि या क्षत्रिय थे, और शैव थे, मक्के में उन्होंने मक्केश्वरी की स्थापना की थी, परन्तु वर्तमान में वे मक्केश्वर ही नहीं रहे। पीर साहब हो गये हैं।

मनुष्य समाज की स्वाभाविक प्रवृति है कि एकाध हितकी बात समझ में आनेपर उसके करने के लिये रोक न हों तो उसे स्वीकार में कमर बांधकर तैयार होते हैं और यथाशक्ति उसके अनुसार वर्तते हैं।

ब्रिटिश राज्य में स्वास्थ्य और भाषण और लेखन स्वतन्त्रता का लाभ सबको एकसा मिलता है। पीछे रहे हुए लोग जागृत होकर अपना २ कर्तव्य क्या है वह जानने लगे हैं। उनकी आंखों पर भी पट्टी बंधी हुई थी, वह खुल गई है। इसलिये ब्राह्मणों को भी अब शास्त्रविरुद्ध रोकटोक छोड़ देनी चाहिये।

उन्हें देशोन्नति के लिये यूरोप अमरीका आदि देशोंमें जाना चाहिये, और लोगों को भी शास्त्र की आज्ञा समझकर जाने देना चाहिये, नवशिक्षित लोग उन निषेधों को नहीं मानकर परदेश गमन करने लग गये हैं। और उन दुराग्रही पंडितों को अपने स्थान पर ही बैठे रहने दिया है।

जब ऐसा हुआ है, तब कुछ बड़े २ शास्त्री जागे हैं, और निरुपाय होकर समुद्रयात्रा में दोष नहीं, इस प्रकार कहने लगे हैं। इस प्रकार जब बुद्धिमान शास्त्रियों ने समुद्र यात्रा निर्दोष है यह निर्धारित किया तो कितने ही ढकोसला शास्त्री इसे मानने को तैयार नहीं ! वे अपनी मूर्खता से इस बात को मान्य न करें तो न करें, उनकी सन्तान को यह मानना ही पड़ेगा।

सारांश—जिसे "मेरा जन्म सफल हो" यह इच्छा हो वह ध्यान पूर्वक आर्य-वैदिक धर्मका अवलोकन करे। सत्य धर्म के निर्णय के लिये मनुष्यको हठ, दुराग्रह, पक्षपात, मताभिमान, छल, कपट, दम्भ, पाखण्ड आदि दुर्गुणोंको त्याग कर, न्याय-शीलता, सत्यान्वेषणबुद्धि, सहनशीलता आदि धारण कर विद्यार्थी के समान धर्म जिज्ञासु बनना चाहिये। और धर्म की परीक्षा करनी चाहिये।

प्रिय बन्धु भगिनियों, आप शान्त मन से इस बात पर विचार करेंगे, खोटे २ शास्त्रों का भरोसा करके अर्थ दुराग्रह से परदेश गमन में बाधा उपस्थित कर अपनी और अपने देश को उन्नति में रोक नहीं उत्पन्न करेंगे ऐसी मुझे आशा है।

परमात्मा आपको सद्बुद्धि दे और आपकी आशा पूरी करे।

ओ३म शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

स्वायंभुव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये। क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी अन्यायकारी अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है, तब आलस्य पुरुषार्थरहितता ईर्ष्या-द्वेष विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या-सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं। जैसे कि मद्यमांस-सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

७

क्षत्रिय धर्म

क्षत्रिय जाति के नेताओं की प्रार्थना से काबसजी पटेल होल रोड के पास क्षत्रिय पंचवाडो में रा० सा० दलपतराव प्राणजीवन खख्खार जे० पी० को सभा की ओर से प्रधान नियुक्त करके ता० ४ अगस्त १९०२ के दिन व्याख्यान करवाया था। श्रोताओं की इतनी भीड़ थी कि खड़े रहने के लिये जगह न थी।

स्वामी जी ने व्याख्यान का प्रारम्भ करके कहा कि धर्म का उपदेश करने का काम ब्राह्मण का है। परन्तु धर्म का रक्षण और व्यवस्था करने का काम क्षत्रिओं का है ऐसा मनु आदि स्मृतिकारों ने लिखा है। जब क्षत्रिय अपना धर्म त्याग करते हैं तब धर्म का नाश होता है। क्षत्रिय राजाओं की प्रसिद्धि महाभारत, रामायण-इत्यादि में दिखलाये अनुसार इस देश में ही नहीं परन्तु सारी पृथ्वी में फैली थी। कोई भी पदार्थ कैसी ही उत्तम दशा को क्यों न प्राप्त हुआ हो अवश्य एक दिन अधम दशा को प्राप्त होता है उसका मरण निश्चय होता है यह कुदरत का कानून है। उसी तरह से जो क्षत्रिय सारे भूमंडल में राजा थे वे आज अपना धर्म भूल गये हैं और अधर्म अवस्था में पड़े हैं। उनमें अनेक विभाग हो गये हैं। उनकी जाति की संख्या गिनी जाय तो एक दो हजार से कम नहीं होगी इससे क्षत्रियों के गौरव और अभिमान के टुकड़े हो गये हैं। क्षत्रियों में वर्तमान समय है तीन चार जातियें मुख्य हैं। राजपुताने के क्षत्रियों में राठौर चौहाण और सिसोदिया आदि मुख्य हैं। काश्मीर में डोंगरे राजा भी क्षत्रिय हैं। और यहाँ के भाटिया भी क्षत्री हैं। ब्रह्म क्षत्रिय नामक भी एक जाति है खत्री शब्द क्षत्रिय का अपभ्रंश है। ब्रह्म क्षत्रिय का अर्थ क्या? ब्रह्म के संस्कृत शब्दार्थ में ५—६ अर्थ मिलते हैं जैसे ईश्वर, वेद, तत्व, ब्रह्मवर्य, ब्राह्मण इत्यादि। अब ब्रह्म क्षत्रिय का अर्थ क्या करना! जो क्षत्रिय ब्रह्म का अभ्यास करते हैं,

ब्राह्मणों की रक्षा करते हैं, जो ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करते हैं, ब्रह्मचर्य पालनेवाले हैं वा तत्व का जो संशोधन करते हैं इन में से किसको ब्रह्मक्षत्रिय कहना। भारत के युद्ध के पश्चात् ज्ञान कम हो गया और उनका राज्य ऐश्वर्य आदि न रहने पर भी कुछ क्षत्रियों ने वैदिक धर्म पालन करने की प्रतिज्ञा ली उससे उनका नाम ब्रह्मक्षत्रिय पड़ा।

गीता में क्षत्रियों के धर्मके सम्बन्धमें कहा है कि शूरवीरता तेजस्विता, कान्ति, धैर्य, चतुराई युद्ध में स्थिरता, दान और ईश्वर भाव, होने चाहिये।

वर्तमान समय में ब्रिटिश सरकार ने ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा है कि किसीको हाथ हिलाने की जरूरत नहीं है। परन्तु मान लिया जाय कि रशिया या जर्मनी जैसा महान राज्य हमला करे तो मुझे विश्वास है कि यदि अभी आपके पास शस्त्र नहीं हैं तो भी ब्रिटिश सरकार को सहायता करने में आप पीछा करें ऐसे नहीं हैं।

दान देना क्षत्रियों का धर्म है। गीता में लिखा है कि दान उपकारी पुरुषों को ही देना चाहिये। अन्य अयोग्यको न देना चाहिये। काशी में पण्डों को सैकड़ों रुपये दान में मिलते हैं उससे वे अनेक अनर्थ करते हैं। इस बम्बई में भी जिस कर बिना परिश्रम धन मिलता है वे कैसा अनर्थ करते हैं, यह किसी से छिपा नहीं हैं, जिसको परमात्मा ने आखें दी है वे सब जानते हैं। दान पात्र को देना चाहिये। यदि कोई कुपात्र को दान देता है तो वैसा दान लेनेवाले और देनेवाले को पाप लगता है ऐसा शास्त्रों में कहा है।

महाराज मनुने मनुस्मृति में लिखा है कि क्षत्रियों को प्रजा का रक्षण करना चाहिये परन्तु आप स्वयं प्रजा हो फिर किसका रक्षण करना चाहिये? इसलिये वर्तमान समय में तुमको अपने कुटुम्ब को प्रजा मान उसकी उत्तम तरह से पालना करनी चाहिये और वह योग्य है। भारत वर्ष अधोगति को प्राप्त हुआ है उसका यही कारण है कि जैसे ऋषि अपने शिष्यों को शिक्षण देते थे उससे न्यून भी शिक्षण आजकल दिया नहीं जाता। यदि क्षत्रिय अपने कुटुम्बको योग्य शिक्षण दें तो वे भविष्य में तेजस्वी क्षत्रिय बनें।

मनुशास्त्रके दूसरे अध्यायमें लिखा है कि ब्राह्मणके पुत्रको आठवें वर्षमें, क्षत्रियके पुत्रको इग्यारवें वर्षमें और वैश्यके पुत्रको १२ वें वर्षमें यज्ञोपवीत संस्कार करना। परन्तु यदि ब्राह्मण पुत्र १६ वर्ष तक क्षत्रियको २२ वे वर्ष तक और वैश्यको २४ वें वर्ष तक यज्ञोपवीत और गायत्री मंत्र दिया जाय तो भी वे वर्णसे पतित नहीं होते। परन्तु इस क्रमसे ज्यादह आयुके हो जाने पर वे आर्य नहीं रह सकते। वे अनार्य हो जाते हैं। उनको तीन वा छ व्रत करवाने पर फिर स्ववर्णमें लिये जाते हैं। आप अब भी यज्ञोपवीत धारण करते हैं इससे मुझे अत्यानन्द होता है। तुमको वैदिक संध्या और अग्निहोत्र भी करना चाहिये। विद्या ग्रहण करना भी क्षत्रियोंका आवश्यक धर्म है। इस देशके जिन लोगोंको विद्या दी जाती उनमेंसे बहुतसे आपको बुद्धिमान् मिलेंगे। आजकल मुन्शिफोंकी अपेक्षा आपको वकील ज्यादह मिलेंगे। वे इनसे काम करनेवालोंकी अपेक्षा लिखाये अनुसार लिखने वाले आपको अधिक मिलेंगे।

शास्त्रोंका बुद्धिपूर्वक अर्थ करनेकी जरूरत है। महाराजा युधिष्ठिर कहते हैं कि विद्या द्वारा हम प्रत्येक पदार्थ जान सकते हैं। परन्तु वर्त्तमान समयमें विद्या पढ़ने पर भी भिन्न २ पदार्थोंके यथावत् स्वरूपको हम नहीं जान सकते। मनु कहते हैं कि धर्ममें संशय हो तो विद्वानोंकी सभामें रक्खो कि जिससे निर्णय हो। परन्तु वर्त्तमान समयके संस्कृतके विद्वानोंकी दशा देखो। उनकी दशा एक दूसरेसे विचित्र हैं। वे दो तीन तरहके हैं। एक वर्गको बाबा वाक्यं प्रमाणं अर्थात् जो लिखा गया वही मानते हैं। उसका यही अर्थ कि वह बुद्धिपूर्वक कुछ भी नहीं कर सकता। एक ब्राह्मण रात्रिको अमुक गांवमें गया। उसको लोगोंने कहा कि—'बाहर मत सोना; क्योंकि यहां बाघ आता है, उसने कहा कि—'वह खा सके ये असम्भव है। व्याघका अर्थ तो जो सूंघता हो वही है। इसलिये यदि वह आयेगा तो मुझे सूंघकर जायगा। मुझे क्यों मार डालेगा? जिस देशमें ऐसे पंडित और उपदेशक होते हैं उस देशका कल्याण कैसे हो? प्राचीन समयमें ऐसी अव्यवस्था होनेपर क्षत्रिय लोग अपनी सत्तासे व्यवस्था करते थे।

महाराजा भर्तृहरि जब राज्यका त्याग कर संन्यासी हो गये थे, उस समय एक स्वार्थीने आकर प्रार्थना की कि—'मुझे आपके राज्यमें नौकरी मिल जाय ऐसी सिफारिश आप राजाको करें। भर्तृहरिजीने हंसकर उत्तर दिया कि तुमको ज्ञात है कि राजा लोग किसकी बात मानते हैं? वे केवल नट, बिनट, गवैये चुगली करनेवाले और खूबसूरत स्त्रिओंकीही बातोंपर विश्वास करते हैं। मैं उनमें से एक भी नहीं हूँ, तो फिर मेरी बात वह क्यों कर सुनेगा। इससे स्पष्ट होता है कि उस समयके राजाओंकी दशा इस प्रकारकी थी। और वैसीही दशा आजकल नहीं हैं ऐसा नहीं। क्षत्रियोंकी दशा जब अच्छी होगी तब सुधार होगा। इस लिये तुमको उन्नति करनी चाहिये। तुम वेदकी पाठशाला खोलो और उसके सत्य अर्थ समझनेका प्रयत्न करो।

अलीगढ़में मर्हम सर सैयद अहमदने एक कालेज की स्थापन की है। वे कुरान के अर्थ बुद्धिपूर्वक पढ़ाते थे। कुरानमें एक ऐसा उपदेश है कि तुम काफरके धन को अपना समझो। उनकी स्त्रिओंको भी अपनी समझो। इसका अर्थ वर्त्तमान समयके मोलवी ऐसा करते थे कि मुसलमानोंको छोड़कर दूसरोंके धन और स्त्रीएं ले लेनी चाहियें। परन्तु सैयद अहमद ये सिखाते थे कि दूसरोंके धनको अपने धनके तुल्य मानो और पवित्र मनसे दूसरोंकी औरतोंको अपनी माताएं और बहिनोंके तुल्य जानो। स्वामी दयानन्दने कुदरती नियमके और व्याकरणके अनुसार अर्थ किये हैं। उसी तरहसे तुम भी पढ़ाओ। यदि तुम अपने क्षत्रिय धर्मका पालन नहीं करोगे तो फिर नाम मात्रके क्षत्रिय बनना मानो काष्ठमय और चर्ममय मृग होनेके समान है। केवल संस्कृतसे पेटका पोषण आजकल नहींहोता। आज कल अंग्रेजी विद्याकी भी जरूरत है। मराठीमें एक कहावत है कि पहिले पोटोबा और फिर वीठोबा। तुम केवल अंग्रेजी भाषा अपने पुत्रोंको पढ़ाओगे तो वे इससे वे धर्म हीन होंगे। इसलिये उनको संस्कृत भाषा द्वारा धर्म पढ़ाओ।

महाराजा युधिष्ठिर कैसे धर्मात्मा थे? म० कृष्णने उनको झूठ बोलनेको कहा, परन्तु उनकी जिह्वा उठी नहीं। प्राचीन समयके क्षत्रिय कैसे वीर और धर्मात्मा थे उनका वृतांत महाभारतमें है। उनके गुरु उनको ग्रेट नहीं किन्तु गुड

बनानेका प्रयत्न करते थे। आज कल "लाड़ी (पत्नी) बाड़ी और गाड़ीके पीछे दौड़ धाम है। परन्तु वस्तुतः सुख नीतिके अनुकूल चलनेसे और सब स्त्रिओंको माता और बहिनकी तरह समझनेसे मिलता है। यह सब बातें धर्मयुक्त तालीमसे प्राप्त होती है।

जैसे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ विद्वान्को गिना जाता है उसी तरहसे जिसके बाहु उत्तम मजबूत हैं वह सर्वोत्तम क्षत्रिय है ऐसा मनुजी कहते है। क्षत्रियों को जितेन्द्रिय रहनेकी जरूरत है। व्यभिचार शराबसे क्षत्रियका बाहुबल नष्ट होके उसका तेज भी नष्ट हो जाता है। भीष्म पितामह बाणोंकी शय्यापर सोते थे। उनको पूंछा गया कि महाराज आपको इतने बाण लगने पर दुःख क्यों नहीं होता। उन्होंने हंसते हुए उत्तर दिया कि मुझे दुःख न होनेका कारण मेरा अखंड ब्रह्मचर्य है। इसलिये तुमको भी ब्रह्मचर्यके ऊपर ध्यान देना चाहिये। संन्यासी और वर्त्तमानवालोंका मुख्य कर्त्तव्य है कि जनसमाजकी प्रीति—अप्रीतिकी परवाह न रखके उनके हितमेंही दृष्टि रखकर भला बुरा जैसा हो ऐसा करना चाहिये। परन्तु अमुक वर्त्तमान पत्रने मेरे अगले व्याख्यानको जो उलटा रूप दिया है, उससे ज्ञात होता है कि वर्त्तमान समय सत्यसे दूर है। वर्त्तमान समयमें ऐसे ब्राह्मण कम हैं, जो मरने पर भी झूठ न बोलें। आजकल आचार्यों, ब्राह्मणोंने अपनी २ दुकानें खोली हैं। जिस देशमें ऐसा अन्धेर चलता है उस देशपर अनेक कष्ट आते हैं और ईश्वर भी कोप करे तो उसमें आश्चर्य ही क्या? तुम्हारी क्षत्रिय जातिकी ऐसी अधोगति न हो और ईश्वर तुमको चरित्रवान और मशहूर बनावे यही मेरी प्रार्थना है॥

तत्पश्चात् एक कविने कहा कि जैसे श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि—"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" इत्यादि उसी तरह स्वामी नित्यानन्दजी इस देशमें आर्य धर्मका उत्कर्ष करनेके लिये पधारे हैं। स्वामीजी की प्रशंसामें एक कविता सुनाई थी, जिसमें प्राचीन ऋषिओंसे स्वामीजीका मुकाबला किया था।

बाद प्रमुखने कहाकि स्वामीजीने मनुआदिके प्रमाणोंद्वारा क्षत्रियोंके धर्म दिखलाये हैं उसी मार्गसे हमारी उन्नति होगी। स्वामीजीने जो कहा है वह सब मनन करने योग्य है। तत्पश्चात् स्वामीजीका उपकार मानके सभा बरखास्त हुई थी।

इति शम्।

८

वेदोंके स्वतः प्रामाण्य और अपौरुषेयत्व सम्बन्धी विचार

ब्रह्मचारी श्री रामेश्वरानंदजी स्थापित हिन्दू धर्मसभाकी ओरसे स्वामी श्रीनित्यानन्दजीका वेदोंके स्वतःप्रामाण्य तथा अपौरुषेयत्व सम्बन्धी विचार, इस विषय पर ता० ८ अगस्त १९०२ के दिन दिया हुआ व्याख्यान।

ब्रह्मचारी रामेश्वरानन्दजीकी स्थापितकी हुई हिन्दू धर्मसभा जो गत दिसम्बर मासमें २६ प्रश्नोंके निराकरण करनेके लिये माधवबागमें हुई थी, उस सभाकी तरफसे गत शुक्रवार को सायंकालके समय स्वामी श्रीनित्यानन्दजीने २६ प्रश्नोंमेंसे प्रथम प्रश्न वेदोंके स्वतः प्रमाण्य और अपौरुषेयत्व सम्बन्धी विचार इस विषयपर गेइटी थियेटरमें व्याख्यान दिया था, नाटकशालाका अधिक भाग भर गया था।

श्रीमान् डाक्टर पोपट प्रभुरामका भाषण ॥

शुरूमें धर्मसभाके संयुक्त मन्त्री डाक्टर पोपट प्रभुरामने सभा करनेके सम्बन्धमें नोटिस वांचकर सुनाये। नोटिस बाँचनेके बाद आगे चलकर उन्होंने कहा कि अनेक लोग बारबार पूछा करते हैं कि ब्रह्मचारी रामेश्वरानन्द कौन हैं, इस लिये मैं बतलाता हूँ कि वे यहां तुम्हारे सामने पधारे हैं, वे सारस्वत ब्राह्मण हैं, हरद्वार की तरफ उनका जन्म हुआ था। ११ बरसकी उमरमें उन्होंने हिमालयकी तरफ भ्रमण करना शुरू किया था, इसके बाद आप योग करने लगे थे, कितने ही समय पीछे अपने शिष्योंके आग्रहसे वे यहां पधारे थे और अब वे जितनी हो सकती हैं उतनी धर्मकी सेवा कर रहे हैं। आगे चलकर डाक्टर पोपटने कहा कि धर्मसभाकी ओरसे व्याख्यान देना स्वमी श्रीनित्यानन्दजीने स्वीकार किया है, इसके लिये सभा

उनका धन्यवाद देती है, धर्मसभामें पधारे हुए ३०—४० मेंसे बहुतसे पण्डितों और इनके सिवाय और पण्डितोंने अपने लेखबद्ध अभिप्राय अबतक भेज दिये हैं, अब और जो पण्डितोंके अभिप्राय आ जावेंगे तो ये सब पुस्तकाकारमें प्रसिद्ध कर दिये जायंगे। प० शिवकुमारजी शास्त्रीका अभिप्राय भी मिल गया हैं। स्वामीजी श्री नित्यानन्दनजीके अभिप्रायोंकी वृद्धि होनेसे पुस्तक बड़ी उपयोगी हो जायगी।

गृहस्थों! गत हिन्दूसभा के प्रमुख स्वर्गवासी वैद्य प्रभुराम जीवनराम थे परन्तु दैवयोग से अब उनका स्वर्गवास हो गया है इसलिये धर्म सभा के उपप्रधान आ० सर भालचन्द्र कृष्ण से आज की सभा में प्रमुख का पद लेने के लिये मैं विनती करता हूँ। (तालियाँ)

इसके बाद आ० सर भालचन्द्र कृष्ण ने तालियों के ध्वनि के बीच प्रमुख स्थान लिया। उन्होंने कहा कि धर्मविषयक स्वामीजीका ज्ञान बहुत उच्च प्रकार का हैं, धर्मपर उपदेश देनेवाले तो बहुत हैं, परन्तु सच्चा अभिप्राय देकर उसके अनुसार वर्तने वाले बहुत थोड़े हैं। उन थोड़ों में से स्वामी जी एक हैं। इसके पश्चात् स्वामी जी को व्याख्यान देने की विनती की। स्वामी श्री नित्यानन्द जी के उठते ही श्रोताजनों ने उन्हें तालियों के हर्षनाद से आदर दिया था। उसके बाद उन्होंने नीचे लिखा भाषण किया था।

ओ३म् विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो, विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥

यजुः १७-१९

आज के व्याख्यान का विषय डाक्टर पोपट तथा डाक्टर सर भालचन्द्र अर्थात् डाक्टरद्वय ने आपको बतला दिया है, तदनुसार वेदों के स्वतः प्रमाण्य तथा आपौरुषेयत्व सम्बन्धी विचार यह है। इस विषय पर गत धर्म सभा में विवेचन हो चुका है। उसी पर मैं अपना अभिप्राय क्रमशः दूंगा; प्रथम के सात प्रश्न एक ही प्रश्न में आ जाते हैं।

संन्यासीका फर्ज, सबको खुश रखने की मुश्किल

परन्तु इन सातों प्रश्नों पर विवेचना करने के पहले मैं एक निवेदन करना चाहता हूँ, और मेरे पहले व्याख्यानों का अभिप्राय न समझने से कितने ही लोगों की भूल के संबन्ध में है। मैं किसी मनुष्य जाति, व्यक्ति, व समष्टि के साथ राग—द्वेष नहीं रखता हूँ। संन्यासी को राग—द्वेष रखना ही उचित नहीं है। मेरा अभिप्राय और सिद्धान्त न समझ कर बहुत लोगों ने मेरी बाबत असत्य बातें प्रगट की हैं। कोई भी मनुष्य प्रत्येक मनुष्य को तो खुश नहीं कर सकता, कोई न कोई तो अपने पुराने संस्कारों के कारण नाराज (अप्रसन्न) भी होते ही हैं; जो आदमी सबको प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता है, उसको असत्य ही जानना। जंगल में रहनेवाले महात्मा से महात्मा भी सबको प्रसन्न नहीं कर सकते हैं। कहा है कि—

मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्माणि कुर्वतः।
उत्पद्यन्ते त्रयः पक्षाः मित्रोदासीन शत्रवः॥

इसका अर्थ यह है कि जो महात्मा जंगल में जाकर तप करते हैं, जिनका समस्त संसार से कोई संबन्ध नहीं है उनके संबन्ध में भी तीन पक्ष होते हैं। कोई उनका मित्र, कोई शत्रु, और कोई उनसे उदासीन होता है। जब वनवासी महात्माओं के भी शत्रु होते हैं, तो जो संसार में उपदेश करते हैं और खासकर लोगों में प्रचलित रूढ़ि के विरुद्ध जो कहें, तो रूढ़िवश लोग जो उससे खुश न हों तो यह स्वाभाविक ही है। इससे जो वे बिरुद्ध हों तो मुझे इसकी फिकर नहीं है, परन्तु जो मैंने कहा ही न हो वह मेरे मुख में से निकला कहें, तो यह बलात्कार और जबरदस्ती ही कही जावेगी।

कितनी ही समझकी भूलें

संसार यात्रा के मेरे व्याख्यान में मैंने यह नहीं कहा था कि—आर्यों को मांसाहार करना चाहिये। मुझ से पूछते है, कि आज से आठ वर्ष हुए मैंने कावसजी इन्सीट्यूट में अहिंसा पर, महामहोपाध्याय प्राफेसर झलकीकरके सभा

पतित्व में जो व्याख्यान दिया था। उसमें मैंने मांसाहार के विरुद्ध कहा था और अब क्यों बदल गया? मेरा निवेदन है कि इस विषय में मेरे विचार जो उस समय थे वे ही अब भी हैं। मैं मांसाहार वेद विरुद्ध मानता हूँ। (तालियाँ) देशाटन विषयक अपने व्याख्यान में मैंने कहा था कि काश्मीर के पण्डित मांसाहारी हैं, सो इसलिये मैंने कहा था कि परदेश जाकर जो हिन्दू लोग मांसाहार करें तो इसी कारण से जो उनको जाति बाहर किया जाता है तो यह वास्तविक नहीं है; क्योंकि स्वयं हिन्दू पण्डित जो जाति के साथ व्यवहार रखते हैं और ऊँचे गिने जाते हैं वे ही मांसाहारी हैं। मैंने कुधारक और सुधारक दो शब्द कहे थे। इससे कहा जाता है कि मैंने सुधारक के विरुद्ध पक्ष को गालियाँ दीं परन्तु ऐसा नहीं हैं। सुधारक और कुधारक शब्द एक दूसरे के विरुद्ध में लिखे व बोले जाते मैंने वर्तमान पत्रों में पढ़े हैं। यद्यपि कुधारक शब्द का वास्तविक अर्थ और ही होता है, तो भी जो वह उस आशय से बोला जाता होय तो मैं नहीं जानता। हिन्दू शब्द वेद, उपवेद रामायण, महाभारत १८ पुराण आदि किसी ग्रन्थ में भी नहीं है, यह फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ काफिर काला होता है, तो भी हाल में वह और ही अर्थ में बोला जाता है। इसी तरह से मैंने कुधारक शब्द का प्रयोग किया था। मैंने टकोसले शास्त्री भी कहा था, धर्तींग करने वाले शास्त्रियों को उत्तर हिन्दुस्तान में टकोसले शास्त्री कहते हैं, परन्तु इससे यहाँ के कितने ही शास्त्री जिनको मैं भद्र और योग्य मानता हूँ उन्होंने समझा कि यह शब्द मैंने उनके लिये कहा था। जो बिल्कुल असत्य है, मैंने तो उन शास्त्रियों के लिये जो लोगों को हानि पहुँचाते हैं यह शब्द कहा था और कहा जाता है कि मैंने कहा था कि—"शंकर स्वामी वर्ण आश्रम नहीं मानते थे" सो मैंने ऐसा कहाही न था; उलटा शंकर स्वामी वर्ण आश्रम के इतने अभिमानी थे कि उन्होंने अपने शाङ्कर भाष्य में लिखा है कि—जो शूद्र वर्ण का कोई मनुष्य वेदमंत्र सुन ले तो उसके कानों में गरम सीसा डाल दिया जाय।

शास्त्रार्थ करनेकी इच्छा

कहा जाता है कि मैं शास्त्रार्थ करने से हटता हूँ, मैं खुद किसी को शास्त्रार्थ

करने को चैलेंज नहीं करता (तालियाँ), परन्तु कदाचित् और ही मेरी ओर से चैलेंज दे दे तो और बात है। परन्तु जो कोई मुझे चैलेंज करे तो उसके साथ शास्त्रार्थ करने से स्वप्न में भी नहीं डरता हूँ, फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो (जोर की तालियाँ) मैं अब अप्रासंगिक बातें छोड़ दूंगा।

मेरा शरीर भी औरों की तरह मलमूत्र का बना है, ऐसा जान कर मैं अपनी प्रशंसा से नहीं फूलता, तथा अपनी निन्दा अप्रशँसा से बुरा नहीं मानता; वेदविरुद्ध मैं कभी कहता नहीं; बुरा कहो, भला कहो, चाहे सो कहो, सत्य कहने से मैं कभी नहीं हटता हूँ, बुरा भला कहने से मैं अपनी डयूटी बजाने से नहीं हटता हूँ, इतना कहकर मैं अपने विषय पर आऊँगा।

वेदोंका स्वतः प्रामाण्य

वेदों के स्वतःप्रामाण्य विषयक विचार सबसे पहले करना है। जैसे सूर्य के देखने के लिये दीपक की जरूरत नहीं रहती, क्योंकि वह स्वतः सिद्ध स्वप्रकाश स्वरूप है, वैसे ही वेद स्वतः प्रमाण रूप है, इस लिये उसको सिद्ध करने के लिये अन्य प्रमाणों की जरूरत नहीं है। इस समय इस पर अधिक बोलने की जरूरत नहीं है। वेदों के पीछे एक एक वेद का एक २ ब्राह्मण इस प्रकार चार ब्राह्मण, ४ उपवेदों के उपनिषद, गृह्य सूत्र आदि वेदों के बाद उत्पन्न हुये (जन्मे) ग्रन्थ औषौरुषय हैं, या नहीं, इस बातका विचार करना रहता है, इस प्रकार वेदादि सम्बन्धी सात प्रश्न हैं, जिनको मैं एक ही व्यख्यान में पूरा करने का प्रयत्न करूंगा। हरेक प्रश्न को पूर्ण रीति से कहने जाँचने के लिये दो दो घण्टे चाहियें; परन्तु समय न होने से मैं उस पर संक्षेप में बोलूंगा। यह विषय शास्त्रीय है; इस लिये सम्भव है कि कितने ही इसको न भी समझ सकें, परन्तु उसको जहाँ तक बनेगा मैं सरल और स्पष्ट करने का प्रयत्न करूंगा।

नास्तिक और आस्तिक

इस संसार में दो पक्ष हैं; एक आस्तिक और दूसरा नास्तिक। आस्तिक पक्ष ईश्वर और परलोक को मानता है, परन्तु नास्तिक पक्ष उन दो में से एक को

भी नहीं मानता है। आस्तिकों में भी दो विभाग हैं, एक पक्ष ईश्वर को मानता है, परन्तु ईश्वरोक्त ज्ञान नहीं मानता, परन्तु दूसरा पक्ष दोनों को मानता है। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई ये दूसरे पक्ष में हैं। यद्यपि हिन्दू मुसलमान कुरान शरीफ, और ईसाई इंजिल अथवा बाइबिल को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, परन्तु उसका इस विषय में तो मतभेद नहीं है कि ईश्वर की ओर से ज्ञान प्रगट हुआ है।

ईश्वरीय ज्ञान न मानने वाले आस्तिक के मानने में दोष

पहले जो आस्तिक ईश्वरीय ज्ञान मानने वाले नहीं, उनके विषय में मैं बोलूँगा। जो ईश्वर को ही नहीं मानता, वह ईश्वरीय ज्ञान तो कहां से माने? उसमें उसका दोष नहीं है, परन्तु जो ईश्वर को मानता हुआ भी ईश्वरीय ज्ञान वेद वा अन्य पुस्तकों को नहीं मानता उसके मानने में ही एक बड़ा दोष है। परमात्मा अपना माता पिता है, माता पिता का धर्म है कि—संतान का पालन करें, उसको योग्य शिक्षा दे और उसको सुयोग्य बनावे, इस लिये ईश्वर हमारा माता पिता हो तो उसको चाहिये कि पहले मनुष्यों को ज्ञान देवे;—जो वह ऐसा न करे तो वह माता पिता नहीं कहा जा सकता। जब ईश्वर सब जगत् का स्वामी है तो उसका कानून भी होना चाहिये। जबसे दयालु ब्रिटिश सरकार का राज्य इस देश में हुआ है. तब वे उसने अपने कानून भी प्रसिद्ध किए हैं, उसने बतला दिया कि जो तुम अमुक फलाने फलाने दुष्कर्म करोगे तो तुमको फलाना (अमुक) सजा होगी, वैसा जो जो ईश्वर सृष्टिका कोई कानून न बनावे और पीछे से किसी को कानून विरुद्ध चलने के कारण सजा करे तो यह वाजबी न समझा जायगा; इससे तो वह अन्यायी कहलावेगा। इसलिये आस्तिक उसको न्यायी मानते हैं, उसको ऐसा मानना ही पड़ेगा, कि वह अपनी सृष्टि रूपी सरकार को ज्ञान रूपी कानून देवें, जब दो और दो ४ मानते हैं तो ४+४=८ मानने में उनको क्या बाधा है? जो कोई ईश्वर को माता पिता माने तो उसी न्याय से उसको Revelation भी मानना ही चाहिये!

कोई पूछेगा कि क्या ईश्वर ने ज्ञान का पुस्तक ऊपर से भेजा ? नहीं, शुरू में ईश्वर ने योग्य महात्माओं को ज्ञानी ही उत्पन्न किया, परन्तु हालमें जो २ पुस्तक ईश्वरीय होने का दावा करते है वे बहुत सी बातों में एक दूसरे से विरुद्ध हैं। तो प्रश्न होता है कि वे परमेश्वर की ओर से कैसे हो सकती हैं, हाल में जो थोड़ा धार्मिक ज्ञान अन्य मतों में है वह वेदों का ही है।

ईश्वरीय ज्ञान विरुद्ध डारविन का मत

मि० डाविनि की पुस्तक पढ़कर कितने ही पढ़े लिखे लोग कहते हैं कि जैसे अत्यन्त छोटे अमीबा नाम के जन्तु से बन्दर हुआ है और उसमें से मनुष्य हुआ है वैसे ही ज्ञान भी धीमे २ प्रगट होकर आज कल की उन्नत दशा को आजतक पहुँचा है। वे कहते हैं कि शुरूमें मनुष्यों ने वृक्षों की शाखाओं को एक दूसरी से जुटी हुई और उनमें से वर्षा के दिनों में पानी टपकता देखकर वे उसके नीचे खड़े रहे, और भीगने से बचे। इसपर से उन्होंने बरसात से बचने के लिये चटाई की तरह के छप्पर गूथने का ज्ञान प्राप्त किया। फिर किसी को पानी में डूबते देखकर आदि मनुष्यों को ज्ञान हुआ कि पानी में न गिरना चाहिये। इस तरह अनुभव होने से अग्नि से दूर रहना भी वे सीखे। ज्ञान अपने आप नहीं मिल सकता है, जो लोग कहते हैं कि—'क्रम से ज्ञान बढ़ा' यदि उन्होंने इतिहास पढ़ा तो उनको मालूम होगा कि जङ्गली लोग हजारों वर्षतक अपनी नीच दशा में पड़े रहे थे और कितना ही समय हो जाने पर भी उन्होंने अपना सुधार न कर पाया था। जब सं० १४९२ में कोलंबस अमेरिका में गया, तब वहाँ के जंगली रेड इण्डियन सभ्य होने लगे; अफ्रिका के सेमेटिक हबशी लोगों के देश में जब तक यूरोपियन लोग न गये थे, तब तक उनको बिल्कुल ज्ञान न हुआ था। परन्तु अमेरिका और आफ्रिका जैसे दूर देशों में उदाहरण ढूंढने को जाने की जरूरत नहीं है। अन्डमान के टापू जहाँ सबसे घोर पाप करने वाले को हमारी ब्रिटिश सरकार देश निकालने का दंड करके भेजती है, वहाँ के लोग अंग्रेजों के उस देश में जाने से पहले बिल्कुल अधम स्थिति में थे, तब तक वे कपड़े पहरना

भी न समझते थे, वे सभ्य प्रजा के संसर्ग में अपने से ही कपड़े पहरना सीखे, इसी प्रकार दूसरी जातियों के अनेकों दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। इसके ऊपर से हमको मानना पड़ता है कि—'नैमित्तिक ज्ञान और सत्संगविना ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है।' इसलिये मनना पड़ता है कि आरम्भ में ईश्वर ने अवश्य ज्ञान दिया।

भेड़ियारूपी मनुष्यका एक उदाहरण

एक समय मैं आगरे और अवध के सयुक्त प्रान्त के बरेली नगर में गया था। वहाँ एक अनाथालय में कि जो विशेष कर आर्य्य समाज की ओर चलाया जा रहा है और उनके उत्तम प्रबन्ध के कारण सरकार से प्रत्येक अनाथ को २॥ रु० महीने के हिसाब से खर्च मिलता हैं, मैंने एक भेडियारूपी मनुष्य देखा था। ऐसा अकस्मात् हुआ कि एक गड़ेरिये के लड़के को एक भेडिया जिसको संस्कृत में वृक कहते है उठा ले गया 'मांसाहारी कुतो दया ? अर्थात् मांसाहारी में दया कहाँ ? तो भी परमात्मा की अपरम्पार दया देखो। उस भेड़ियेने उस बच्चे को मार न डाल कर उसको पाला। वह मादा भेड़ियाँ उस बच्चे को दूध पिलाती। इस प्रकार वह बड़ा हुआ, परन्तु उसको किसीने दो पैरों से चलना न सिखाया। इस लिये भेड़िये की तरह वह चार पैरों (दो हाथों पैरो से) चला करता था। एक समय मथुरा का कलक्टर शिकार करता करता उस तरफ जा निकला। गड़ेरिये का बच्चा ठंड लगने से गुफा के बाहर धूप में बैठा था। मथुरा के कलक्टर ने देखा कि तुरन्त ही वह डरके मारे पेटके बल चलकर गुफा में घुस गया। कलक्टर ने जान लिया कि यह भेड़ियाँ तो नहीं है। उसने उसको पकड़ने के लिये आदमी भेजे उसने उनको काटने के लिये प्रयत्न किया और अन्त को बड़ी मुश्किल से पकड़ा गया। इस बच्चे की उस समय दस बरसकी उमर थी। कलक्टर के हुक्म से वह इस अनाथालय में लाया गया था। जब मैंने उसे देखा था उस समय वह ४ वर्ष का था। पहले तो वह कच्चा ही मांस खा जाता था, परन्तु ४ वर्ष खाने के बाद वह पकाया हुआ खाने लगा था और

नंगेबदन फिरना खराब समझने लगा था। पहले तो एक अक्षर भी नहीं बोल सकता था, परन्तु अब वह थोड़ा २ बोल सकता है। यह दृष्टान्त क्या सिद्ध करता है? यही कि नैमित्तिक ज्ञान न मिलनेसे भाषा और संसारके पदार्थों का ज्ञान नहीं मिल सकता है।

डार्विनसे विरुद्ध थियोरी

कोई कहेगा कि ज्ञान धीरे २ बढ़ सकता है, परन्तु हमारा मानना उससे एक तरह विरुद्ध है। बहुतसे ईसाई विद्वान् भी वैसाही मानते हैं। हम तो उनसे उलटा यों भी मानते हैं कि आरम्भमें मनुष्य विद्वान् हुए और फिर बिगड़ गये। नियम होता है कि पहले एक चीज अच्छी होती है, पीछे से बिगड़ जाती है,। उदाहरण लो कि सूर्य्यमें पहले उष्णता अधिक थी और अब दिनबदिन घटती जाती है। पहले पृथ्वीमें अन्न उत्पन्न करनेकी शक्ति अधिक थी, पर अब उतनी नहीं रही। पहले मनुष्योंके शरीर अधिक लम्बे चौड़े थे, अब वे घट गये हैं। पृथ्वीसे खोद कर निकाले हुए मनुष्योंके मस्तक मत्थे बहुत बड़े मिले हैं। इसपर से अनुमान होता है कि उनमें ज्ञानबुद्धि भी विशेष होगी। डारविन मतवादी यूं कहते हैं कि उत्क्रान्ति Evoluntion के नियमानुसार ज्ञान किशोर अवस्थासे युवावस्थामें और उससे वृद्धावस्थामें अधिक होता है। जितना ज्ञान ३०-३५ वर्षमें होता उतना १६-२० वर्षके बालकको नहीं होता; परन्तु बाल्यावस्थासे युवावस्थातक ज्ञान कहांसे प्राप्त हुआ? यदि आप किसी मनुष्यको जंगलमें रख दें तो ज्ञान कभी नहीं होगा। प्राचीन समयमें सृष्टिके आरम्भमें सब मनुष्य जंगलके समान स्थानोंमेंही थे और यदि सबही अज्ञानी थे ऐसा मानते हैं तो किशोरावस्था में ज्ञान कहां से आया। क्या गुरुके बिना किसीको कभी भी ज्ञान हुआ है? कालिजोंमें अच्छी पुस्तकोंके होते हुए भी कोई किस प्रकार पढ़े? क्या एक वैद्यको सहायताके बिना दूसरा वैद्य स्वयं बनगया। इसलिये ज्ञानका स्रोत कहीं न कहीं होनाही चाहिये। मेरा ऐसाही मन्तव्य है कि—समस्त विश्वके माता-पिता परमात्माने सृष्टिकी आदिमें अवश्य ज्ञान दिया।

प्रश्न होता है—यदि परमात्माने ज्ञान दिया तो किस प्रकार ? क्या वह पुस्तकरूपमें ? क्या पुस्तक लिखकर भेजा गया ? या कानमें कहा गया ? मैं कहता हूँ कि ईश्वरीय ज्ञान सृष्टिकी आदिमें दिया गया है, न कि बीचमें। जो ज्ञान सबसे पुराना है उसीका ईश्वरप्रणीत होना संभव है। प्रमाण स्वरूप New testament का नया भाग बने १९०० वर्ष हुए हैं और Old testament का कोई भाग ३००० वर्ष पहलेका नहीं है। वेदोंके अतिरिक्त सबसे पुराना ग्रन्थ पारसियोंके पैगम्बर जरदुस्त की गाथा है। ऐसा पूर्वके साहित्यके अभ्यासियोका निर्णय है।

वेदव्यास जरदोश्त

पारसियोंका "दसातोर" नामक एक धार्मिक पुस्तक है। उसका अनुवाद गुजरातीमें हो चुका है। एक पारसी सज्जनने इसके सम्बन्धमें मुझे खुलासा वर्णन सुनाया। इसमें कहा गया है कि अपने प्रसिद्ध वेदव्यास जिन्होंने वेदान्त फिलासफी पर एक दर्शन लिखा है, उनका शास्त्रार्थ पवित्र जरदोश्तके साथ हुआ और वह उसमेंहार गये जिससे जरदोश्तने उन्हें अपना शिष्य बना लिया! जो कुछ भी हुआ हो, परन्तु कथाप्रसंगमें उनके संवादका वर्णन आया है, महर्षि व्यासका असली नाम कृष्ण द्वैपायन था। व्यासका अर्थ गोल कुन्डलीके बीचकी लकीर Daimeter है और कृष्ण द्वैपायन वेदोंको व्यासके समान आरपार कर गये थे, अर्थात् उनमें साँगोपांग निपुण थे; इससे "वेदव्यास" यह नाम उनके सन्मानके लिये दिया था।

जरदोश्त के पहले के समयका पता उनके समकालीन वेद व्यास के ग्रन्थों में मिलता है।

वेदान्त में नीचे लिखा सूत्र—

अत एव च नित्यत्वम् (१—३—२९)

अर्थात् वेद नित्य है, इस प्रकार लिखा है और वेदोंका आदि कारण ब्रह्म है इस प्रकार

शास्त्रयोनित्वात् (१—१—३)

इस सूत्र से बताया है। इस प्रकार वेद व्यासने वेदों का ही नाम पुकारा है। और उस पुस्तक में उनसे पूर्व ऋषियों का नाम आया है। इससे सिद्ध होता है कि वेद सबसे प्राचीन पुस्तक है। (करतल ध्वनि)

प्रो० मोक्षमूलरकी सम्मति

प्रो० मोक्ष मूलर जो सब धर्मों के गम्भीर अभ्यासी थे अपनी Phisycal religion नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि "कोई मुझसे पूछे कि दुनियाँ में सबसे प्राचीन पुस्तक कौनसी है तो मैं बिना रोकटोक के अपनी ऊंगली हिन्दुओं के ऋग्वेद की तरफ उठाऊंगा।

(करतलध्वनि) कोई मुझसे पूछे कि—'सबसे प्राचीन धर्म कौन है' तो भीमेरी ऊंगली हिन्दू धर्म की ओर उठेगी मैं कहूँगा कि और सब धर्म इस धर्मसे फैले हैं (करतध्वनि) दूसरे देश और कुलके लोग हजारों कोस दूर होने पर भी सत्य और न्यायसे वेद सब से पुरानी पुस्तक है ऐसा बताते हैं परन्तु जो मनुष्य जिस देश और कुल में होय, उसके संस्कारों के बशमें वह रहता ही है। एक उदाहण दूंगा—।

करवत लेनेपर भी मोचीका मोची

एक मनुष्य की यह समझ में आया को काशी में करोत लेने से जीवते जीव शरीर के दो टुकड़े कराने से मुक्ति और मन मांगा परलोक मिलेगा। काशी की कचौरी गली में एक कूआँ है, ब्रिटिश सरकार के राज्य के पहले काशी करोतका महात्म्य चला आता था। वहां मुक्तिकी आशामें जाकर बहुत से भोले लोग अपनी गर्दन कटाते थे और काशी के पण्डे पीछे से उनकी मिलकियत स्वाहा कर जाते थे।

ऐक मोची था, वह बिचारा जूते सींतेसींते घबड़ा गया, उसने सोचा कि काशी में करोत लेनेसे यह झगड़ा छूट जायेगा (हंसी) वह काशी गया। करोत लेने के पहले पण्डोंने पूछा कि बोल तू अगले जनम में राजा होवेगा? उसने

सोचा की राज शत्रुओं का बहुत भय रहता है और अनेक प्रकारके जंजाल और उपाधियाँ लगी रहती हैं, इसलिये उसने राजा होना नहीं स्वीकारा। पंडोंने पूछा—'क्या तू' अगले जनम में सेठ होगा? (हंसी) मोची—उसमें भी काम धन्धे की बड़ी झंझट होती है, जिस प्रकार बम्बई के सेठों को प्रामिसरी नोटों की फिकर रहती है (हंसी) इसलिये यह भी नहीं।

पण्डा—तो तू क्या बनेगा?

मोची—मुझे तो कुछ नहीं सूझता, सब कुछ सोचने पर मोची रहना ही अच्छा है, करोते दो-दो मोची का मोची हूँ। (भारी हंसी) बाईबिल में लिखा है कि सृष्टि को उत्पन्न हुये फकत छ हजार वर्ष हुए, इसलिये यह मानना कि इससे प्राचीन पुस्तक नहीं हो सकती; कूप मंडूकन्याय है। एक समय भाग्यवश एक हंस कूप पर आया, जिसमें एक मेंडक रहता था। मेंडक ने पूछा 'तू कहाँसे आया? हंसने कहा—मानसरोवर से।" मेंढक ने पूछा—'वह कितना बड़ा है। हंसने कहा बहुत बड़ा—'तो मेंढक ने छलांग मारके कहा मैंने छलांग मारी इतना बड़ा? हंसने कहा इससे बड़ा। अन्त में मेंढक ने सारे कूएँ कूप की प्रदक्षिणा करके पूछा—'क्या इतना बड़ा?' तब भी हंसने मानसरोवर उससे बड़ा बताया। तब मेंढकने कहा—इससे बड़ा हो नहीं सकता (हंसी) क्रिश्चियन मतावलम्बियों के विचार भी इसी प्रकार संकीर्ण हैं, ऐसा मुझे अन्ततोगत्वा कहना पड़ता है।

स्वामीजी ने अपने भाषण में बतलाया कि मोची का धन्धा राज्य व्यापारी और ब्राह्मण से नीच होते हुए भी उसके संस्कार वैसे होने से उसने वही माँगा।

प्रोफेसर मोक्षमूलर एक सच्चे भले निष्ठावान् विद्वान् थे, परन्तु उनमें ख्रीष्ट धर्म के संस्कार इतने दृढ़ थे कि बाइबिलके लिखे मुताबिक ही वे अन्य धर्मों का अनुमान बांधते। बाइबिल में लिखा है कि सृष्टिको हुए छ हजार वर्ष हुए और उसे सत्य मान करके उन्होंने वेदोंको सबसे प्राचीन कहते हुए भी फकत ३५०० वर्ष प्राचीन सच्चे भाव से बताये, वे सृष्टि को ही ६००० वर्ष से पुरानी नहीं मानते, फिर किसी पुस्तक को उससे पुरानी कैसे मानें।

मि० तिलक और वेदोंकी प्राचीनता

इस विषय में अनेक विद्वानों ने भिन्न २ मत दिये हैं, इनमें से एक विद्वान् मराठा ब्राह्मण जातिके हैं। जिस जातिके विरुद्ध मैं हूँ ऐसा कहा जाता है। (हास्य) उनका नाम मि० बाल गङ्गाधर तिलक है (करतलध्वनि) उन्होंने "ओरायन" नामक ग्रन्थ में "वेद ३५०० वर्षों से प्राचीन है" ऐसा दर्शाया है। महाराजा रामचन्द्र के समय में नक्षत्रों की जो स्थिति थी, उसका वर्णन अयोध्या-काण्ड में राम के वनवास जाते समय के प्रसंग में है, उसी प्रकार महाभारत के भीष्म पर्व में युद्ध के आरम्भ में नक्षत्रों का वर्णन है, इसी प्रकार ऋग्वेद में ऋग्वेद की उत्पत्ति के समय नक्षत्रों की क्या स्थिति थी, उसके सम्बन्ध में कुछ मन्त्र हैं मि० तिलक ने उन मन्त्रों को उद्धृत किया है और उसमें वर्णित नक्षत्रों की स्थिति आज से छ हजार वर्ष पहले थी इस प्रकार कम से कम वेद छ हजार वर्ष पूर्व थे। जहां तक मुझे पता है। मि० तिलकने यह मन्त्र मोक्षमूलर के पास भेजा था और उन्होंने वेदकी प्राचीनता मि० तिलक के कथनानुसार स्वीकार किया।

वेदोंके कमसे कम छ हजार वर्ष पूर्व होनेकी ऐतिहासिक साक्षी

परन्तु वेद छ हजार वर्ष पूर्व थे इस विषयकी पूर्ति नहीं होती। आकाशमें ग्रहोंका चक्र घूम फिर कर कुछ हजार वर्षों पीछे उसी स्थान पर आ जाता है। सृष्टिके आरम्भसे इस प्रकार नक्षत्र एक ही स्थान पर हजारों बार आ चुके हैं। ऐतिहासिक शास्त्रोंमें यज्ञ करते समय अमुक नक्षत्र इस प्रकारकी स्थितिमें था इस प्रकार जो वर्णन आता है तो उसको सबसे अन्तिम चक्र मानना क्या आवश्यक है? सृष्टिके आरम्भमें हजारों बार नक्षत्रोंकी परिक्रमा हो चुकी तो क्या उससे पूर्व मानना उचित नहीं? सबसे अन्तका तो मानना ही पड़ेगा।

नक्षत्रोंके स्थानसे वेदोत्पत्तिकी तारीख

परन्तु कोई कहेंगे कि प्रथम अथवा मध्यकी परिक्रमाके प्रमाण नहीं मिलते

परन्तु बीती हुई घटनाओंके सम्बन्धमें पुस्तकोंको छोड़कर क्या प्रमाण दिया जा सकता है ? हिन्दुस्थान में जिस प्रकार "अकबर अथवा युधिष्ठिर राजा हुए" इसका इतिहासके अतिरिक्त और क्या प्रमाण है, व्यतीत बातोंको जानने के लिये अपने पास साधन इतिहास ग्रन्थ है।

तब अन्य बातोंमें तो इतिहास माने जावें, परन्तु वेदके विषय में उसे प्रमाण न मानना इसको न्याय नहीं कह सकते, इससे तो धर्मभावकी न्यूनता प्रकटहोती है।

संस्कृतके शास्त्री और अंग्रेजी पढ़े हुए विद्यार्थियों में धर्मभाव

मैं स्वीकार करता हूँ कि वर्तमानके संस्कृत पढ़े हुए शास्त्री धर्मविषयमें भोले तो अवश्य हैं परन्तु सच्चे धर्म भाव रखते हैं। आज तक भी वे प्राचीन शिष्ट सम्प्रदायके अनुसार गुरुचरणोंका स्पर्श किया करते हैं। आजकलके जैंटलमेन विद्यार्थियोंमें (हंसी) अपने गुरु अथवा प्रोफेसरके प्रति कोई ऊंचा मान नहीं होता। उनकी यह धारणा है कि ये जो हमें पढाते हैं तो हमारे ऊपर कुछ एहसान नहीं करते। वे अपने शिक्षककी टीका और मजाक बारम्बार करने से नहीं चूकते।

मेरा निजी अनुभव है कि एक स्कूलमें हेडमास्टरका कमरा एकान्तमें था। उसके ऊपर लड़कोने मोटे हरफोंमें Bad Master's room दुष्ट मास्टरका कमरा लिख दिया (हंसी)। प्राचीन काल में इस प्रकारकी धारणा थी कि विद्या पैसा लेकर नहीं परन्तु मुफ्त पढ़ाना। (करतल ध्वनि) यदि कोई पैसा लेकर विद्या पढ़ाता तो ब्राह्मणत्वसे बहिष्कृत होता। और ब्राह्मणके आसनपर समानतासे नहीं बैठ सकता। उस समय विद्या मुफ्त होनेसे कोई मूर्ख नहीं रहता था।

अब मैं अपने विषय पर आता हूँ, यदि धर्मभाव और न्यायदृष्टि से निर्णयकिया जावे तो यह सिद्ध है कि संस्कृत ग्रन्थों व इतिहास के प्रमाणों से वेद सबसे प्राचीन है।

कितनेही लोग ज्योतिषके ग्रन्थोंको ३, ४ हजार वर्षोंके ही पुराने बतलाते हैं परन्तु वे लाखों वर्ष पुराने हैं। इस प्रकार उनमें बताई तारीखसे पता चलता है

और संस्कृतके लाखों वर्षों पूर्व बने ग्रन्थोंमें वेदोंका नाम है। यदि उन्हें प्रमाणिक नहीं मानते तो वेदोके प्रति आपकी अरुचि है इसके सिवाय और क्या कहा जाय ?

वेदोंकी ठीक तारीख

वेदों को प्रकट हुए आज अनुमान से १९७२९४९००५ वर्ष हुए (करतल ध्वनि) तारीख के विषय में एक प्रमाण दूंगा। ऋषि ग्रन्थों में विशेष कर ज्योतिष अवश्य होता है। प्रत्येक कृत्य के आरंभ में और कर्मकाण्ड सम्बन्धी ग्रन्थों में संवत्सरका उपयोग अवश्य होता है। प्रत्येक कृत्य के आरम्भ में ब्राह्मण द्विज लोग नीचे लिखे प्रकार से बोलते हैं।

ओ३म् अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्धे श्वेत वाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशति कलयुगे कलि प्रथमचरणे इत्यादि। अर्थ—आज श्री अर्थात् ब्रह्म के दूसरे पहर का आधा दिवस हो गया है उसमें श्वेत वाराह कल्प में वैवस्वत मन्वन्तर है उसमें अट्ठाइसवाँ कलियुग है इसकी गणना करने से ठीक ऊपर कहे अनुसार वर्ष आते हैं।

वेदोंके सम्बन्धमें सत्यवादी क्या कहते हैं ?

क्रमशः ऋषि अपने शिष्य को इस प्रकार समय बताते हैं। उस में अगर कोई गड़बड़ हो तो साक्षी की आवश्यकता पड़ती है। लेख में कोई गड़बड़ हो तो मजिस्ट्रेट सत्यवादी साक्षी से निश्चय करता है। महाराज युधिष्ठिर के समान कोई सत्यवादी साक्षी आपको नहीं मिलने का ! उनको झूट बोलने के लिये राजनीतिज्ञ कृष्ण ने आग्रह किया, तो उन्होंने कहा—

"न मे वाक् अनृतं प्राह नाऽधर्मे धीयते मतिः"

युधिष्ठिर महाराज कहते हैं—"झूठ बोलने में मेरी जिह्वा नहीं चलती, अधर्म में मेरी मति नहीं चलती !

यह बात सत्यवादी युधिष्ठिर महाराज, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र, आदि पुकार के कहते हैं कि वेद लाखों बरसों से हैं क्या आप यह साक्षी झूठी गिनेंगे ? यह सम्बत्सर रामचन्द्र और विक्रमादित्य के समय में प्रचलित था, इसकी सत्यता में शंका कैसे हो (करतलध्वनि) यदि आप मैजिस्ट्रेट की दशा में इतनी जबरदस्त

साक्षी नहीं मानते तो मैं लाचार हूं, मेरी शक्ति नहीं है कि सृष्टि का आदि काल लाकर आपके सामने रक्खूं।

वेदोंके स्वतः प्रामाण्यके सम्बन्धमें ऋषि और शंकरका मत

वेद स्वतः प्रमाण है, वशिष्ठ, गौतम, अंगिरा, अत्रि, भृगु आदि अति प्राचीन काल के ऋषि इतने सत्यवक्ता और महान् योगी थे कि जो उनके चरित्र पढ़कर अभ्यासी और दिग्विजयी हुए हैं उन्होंने वेदों को अपौरुषेय अथवा पुरुष नहीं परन्तु ईश्वरकृत कहा है। फारसी में एक कहावत है, जिसका अर्थ यह है—'कि मक्खी हलवाई की दुकान को छोड़कर अन्यत्र जाना नहीं चाहती'।

शंकर स्वामी के साहित्यरूपी मिठाई पर जर्मन विद्वान् मक्खियों की तरह घूम रहे हैं। शंकर स्वामी में असाधारण नैतिक धैर्य था। जिन शंकर स्वामी ने बौद्धधर्म में गये हुए हिन्दुओं को पीछे वेद धर्म में मिलाया वे शंकर स्वामी कहते हैं कि चार वेदों का ज्ञान ईश्वर की ओर से है। वे कहते हैं कि—'चार वेद सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, सब विद्यायें उसी में हैं, इससे प्रतीत होता है कि ईश्वर ही इस प्रकार मूलज्ञान दे सकते हैं।

मनु महाराज कहते हैं—

'भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति'

मनु० अ० १२

भूत, भविष्य और वर्तमान सब वेदों से प्रसिद्ध होते हैं। सांख्यदर्शन के कर्त्ता और Evolution फिलासफी के प्रतिपादक महर्षि कपिल (जिन्हें बहुत से भूल से नास्तिक कहते हैं) कहते हैं निजशक्ति से प्रादुर्भूत होने के कारण वेद स्वतः प्रमाण हैं।

इस समय साढे सात बज गये थे, इसलिये स्वामीजी ने कहा कि समय हो जाने से प्राचीन ऋषियों के मत अधूरे बतला कर ही आजका व्याख्यान रोकना पड़ता है। वेद स्वतः प्रमाण किस प्रकार हैं और अन्य छ प्रश्नों के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन मैं कल के व्याख्यान में करूंगा।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

९

वेदशास्त्रानुसार वर-कन्याके विवाहका समय

इस विषयके प्रतिपादन करने के पहले मुझे आपसे दो तीन बातें कहनी हैं।

मधुपर्क क्या है ?

"यज्ञ में मांसाहार करना वेदानुकूल है वा नहीं" इस विषय पर व्याख्यान देते समयगत दिवस मैंने निवेदन किया था कि—वेदमें पशुहिंसा करने का कुछभी नहीं लिखा है, उस समय मैंने "मधुपर्क" शब्द का भी प्रयोग किया था। मुझे कितने ही गृहस्थ पुरुषों की ओर से विनती की गयी है कि —'इस शब्द के अर्थ का स्पष्टार्थ करना चाहिये।' प्राचीन काल में ऐसा रिवाज था कि राजा, ऋषि विद्वान् आदि मान्य लोग जब अन्य लोगों के यहाँ जाते थे, तो प्रथम उनके पैर धोये जाते थे, तत्पश्चात् आचमन करके मुख्य वस्तुओं का बना हुआ पदार्थ, जिसको आजकल श्रीखण्ड कहते हैं, और उस समय जिसको मधुपर्क कहते थे, वह प्रसाद खाने को दिया जाता था और ऐसा भी रिवाज था कि सम्मान के तौर पर गौ भी भेंट देते थे। स्मृति में कहा है कि मधुपर्क मधु, दही, घी, पानी और मिश्री इन वस्तुओं से बनाया जाता था। इसका अर्थ कितने लोग ऐसा करते हैं कि अतिथि किसी के घर आवे तो गाय को मार कर उसके रुधिर से मधुपर्क बनाते थे, परन्तु यह दुष्टों की करतूत है। वे लोग भी प्रमाण देते हैं कि "नामांसो मधुपर्को भवति" और उसका अर्थ ऐसा करते हैं कि मांस बिना मधुपर्क नहीं होता। परन्तु "न अमांसो मधुपर्को भवति" इस प्रकार जो पदच्छेद करें तो ऊपर कहा अर्थ हो सकता है। परन्तु जो "अमांसो" ऐसा पदच्छेद करें तो अर्थ होगा कि मांसवाला होय वह मधुपर्क नहीं हो

सकता और यह अर्थ वेदानुकूल है और यह उत्तम तथा सत्य होने पर भी ऊपर के अर्थ के बदले यही क्यों न माना जाय? मधुपर्क का अर्थ मांसयुक्त होना कूडापन्थ (वाममार्ग) के समय में चलता होगा। तुम जानते हो कि वाममार्गी लोग बहुत ही भ्रष्ट और मद्य मांस आहारी थे।

'एक सूखा चना मिले तो एक घड़ा मद्य पीऊं'

वाममार्गी लोग मद्यमांस के ऐसे शौकीन थे कि उनके तांत्रिक ग्रन्थों में एक वाममार्गी ने लिखा है कि—

एकेन शुष्कचणकेन घटं पिबामि पिबामि कूपम् यद्याप्रवेन। इत्यादि

इसका अर्थ यह है कि जो मुझे (वाममार्गी को) एक सूखा चना मिले तो एक घड़ा भरके मदिरा पिऊं! जो पकाया चना मिले तो कुआभर मदिरा पिऊं!! जो रोटीका एक टुकड़ा मिले तो नदीभर मदिरा पिऊं और जो मछली मिले तो समुद्र भर मदिरा पिऊं (हंसी) यह श्लोक कहता है कि वाममार्गी मदिरा आदि मादक द्रव्यों के कैसे उपासक थे? कालीतन्त्र आदि में लिखा है कि जो शराब मांस व्यभिचार इत्यादि में प्रवृत्त हो वही बुद्धिमान और उत्तम मनुष्य है। और जो अज्ञानी होते हैं वेही मांस आदि से अलग रहते हैं।

आर्ष ग्रन्थों में वाममार्गी श्लोकों का प्रक्षेप

वाममार्गी लोगों के ग्रन्थों के ऐसे श्लोक कालक्रम से आर्ष ग्रन्थों में भी घुस गये। हिन्दुओंकी गपड़ शपड़ के कारण जो चाहता उनकी पुस्तकों में प्रक्षिप्त कर देता। उदाहरण के तौर पर हाल में महाभारत में हजारों ऐसे अध्याय हैं, जिनका नाम निशान तक अनुक्रमणिका में नहीं है! इस प्रकार महाभारत के हजारों अध्याय व्यास के बनाये हुए नहीं हैं और पीछे से उसमें डाले गये हैं, यह सिद्ध होता है। क्योंकि कहा है कि—

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः।

पर्व १ अध्याय १ श्लोक

इस श्लोक में बतलाया है कि उपाख्यान छोड़कर २४००० श्लोकों का महाभारत बनाया गया था। वाल्मीक की रामायण में भी कितने ही श्लोक पीछे से मिला दिये गये हैं। महाभारत के भीष्म पर्व में भगवद् गीता आई है। महाभारत में गीता के जितने श्लोक हैं, उनसे जुदी पुस्तकाकार बिकती गीता में ४४ श्लोक अधिक हैं। गृह्यसूत्र, मनुस्मृति आदि पुस्तकों में भी इसी तरह मांस आदि के सम्बन्ध में पीछे से श्लोक मिलाये गये हैं। वेदोक्त सत्य शास्त्रों में यह बात नहीं है। इसीलिये आर्ष ग्रन्थों में से जो प्रमाण मैं देता हूँ सो जो वेदानुकूल होते हैं वेही प्रमाण मैं देता हूँ और जो वेदविरुद्ध हैं, उनको मैं अप्रमाण मानता हूँ। अपने गत व्याख्यान में जो प्रमाण मैंने दिये थे उनके सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझना चाहिये।

विवाह और लग्न भेद

अब मैं अपने विषय पर आऊंगा। 'विवाह' शब्दसे जो हालमें तुम्हारे यहाँ 'सगाई' होती है सो न समझना। जिसको तुम गुजरातीमें विवाह कहते हो उसका अर्थ उत्तर हिन्दुस्तानमें लग्न होता है। संस्कृतमें भी विवाह शब्दका अर्थ लग्न ही होता है। इसलिये मैं जहां विवाह शब्दका उपयोग करूं वहां तुमको लग्न ही समझना चाहिये। हालमें जो सगाई होती है उसकी विधि शास्त्रोंमें है नहीं। विवाह एक ही बार होता है। मनु महाराज कहते हैं कि 'संस्कृतकाकन्या प्रपद्यते' अर्थात् कन्याको संस्कारी बनाकर लग्नमें दी जाती है।

"शास्त्रों में विवाह का समय"

विवाहका समय क्या है इसका जवाब देनेसे पहले हम देखेंगे कि धर्मशास्त्रोंमें शिरोमणि वेद इसके सम्बन्धमें क्या कहते हैं। वेदोंमें लड़कियों और लड़कोंके

विवाह बड़ी ऊमरमें करना कहा है। वेदोंके पीछे उपनिषद् ब्राह्मण और गृह्य श्रौतसूत्रोंमें विवाहके सम्बन्धमें क्या कहा है और पीछे वैद्यकविद्या और सृष्टिक्रम देखनेसे और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विवाहकी उमर क्या होनी चाहिये, तथा बाल-विवाहसे क्या हानि होती है, यह मैं क्रममे कहूँगा।

"दसवें वर्ष कन्याका विवाह न करे तो मा बाप नरकको जाय"

प्राचीन शास्त्रोंमें तो बालविवाहके लिये कोई प्रमाण मिलता नहीं, परन्तु अर्वाचीन कालकी पाराशर स्मृति और काशीनाथके शीघ्रबोध वगैरह पुस्तकोंमें इसके प्रमाण देखे जाते हैं। पाराशरी और शीघ्रबोधमें लिखा है कि—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत् कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्।

अर्थ—कन्याकी आठवें वर्ष गौरी, नवें वर्ष रोहिणी और दशवें वर्ष कन्या संज्ञा होती है और इसके बाद रजस्वला होती है। जो उस रजस्वला कन्याको अविवाहित रखकर देखें तो उसके मातापिता तथा बड़ा भाई नरकको जाते हैं। गौरी पार्वतीका नाम है और पार्वतीको माताके समान माना जाता है अर्थात् आठवें वर्ष विवाह करना तो माताके साथ विवाह करने जैसा पाप है। और नवें वर्ष रोहिणी जो कृष्णकी माता है उसका भाव उसमें किया जाता है। इसलिये उसका भी निषेध किया गया है। हिन्दू शास्त्रोंमें लिखा है—'कन्यादान देना चाहिये'। मैं अब शास्त्रोंसेही सिद्ध करूंगा कि कन्या जबतक अविवाहित होय वहाँतक वह कन्याही कहलावे, चाहे फिर वह सौ वर्षकी क्यों न हो? महाभारतमें लिखा हैं कि—

"कौमारं ब्रह्मचर्यं मे कन्यैवास्मि न संशयः"। अनु० पर्व अ० २०

जबतक ब्रह्मचर्य पाला जाय जबतक कन्या को कन्या ही कहना चाहिये। ५३ वर्षों की बड़ी उमर की स्त्री को कन्या कहा है। पाराशर के बड़े टीकाकार माधवाचार्य जिन्होंने वेदोंका भाष्य किया है उन्होंने लिखा है, कि ऋतुकाल होने के पश्चात् रजोदर्शनसे शुद्ध होने के बाद ही उसको कन्या कहना चाहिये। (तालियों को ध्वनि) वह टीकावाली पाराशरस्मृति यहाँ नहीं मिलती है। परन्तु कलकत्ते की रायल एशियाटिक सोसाइटी की लायब्रेरी में मिल सकती है।

'नव वर्षकी उमरमें रजस्वला कैसे हो सके?'

ऊपर कही हुई पाराशरीके श्लोक में दश वर्ष बाद रजस्वला होती है ऐसा जो लिखा है सो वास्तविक है वा कल्पित? सच पूछो तो वैसा नहीं है; क्योंकि कन्याको १२—१३—१४ वर्ष की उमर में शरीरावस्था के अनुसार स्त्रीधर्म प्राप्त होता है, परन्तु 'सब लड़कियों को दशवें वर्ष ही रजोदर्शन प्राप्त होता है' यह कहना कितने प्रमाद की बात है। जो दशवर्ष की मर्यादा कल्पित होय तो उसको सच्चे व्यवहार में उपयोग करना ठीक नहीं है। प्राचीन वैद्यक के ग्रन्थ सुश्रुत में लिखते हैं कि स्त्रीधर्म जल्दी में जल्दी बारहवें वर्ष प्राप्त होता है और ५५ वर्ष पीछे रोजदर्शन बन्द हो जाता है। जो दश वर्ष की उमर मनुको इष्ट होती तो मनु किस लिये लिखते कि—'जो कन्या के योग्य लायक वर न मिले तो चाहे जन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करे, परन्तु नालायक वर के साथ विवाह न करे" (तालियाँ) हिन्दुओं के संस्कार करने की "संस्कारकौस्तुभ" नामक पुस्तक जिसको सब हिन्दू मानते हैं, उसमें लिखा है कि—

"पिता ऋतून् स्वपुण्याश्च गणयेदादितः सुधीः।
दीनावधि गृहे यत्नात्पालयेच्च रजोवतीम्॥"

अर्थः—पिता पुत्रीकी ऋतुप्राप्तिकी संख्या ठीक २ गिनता रहे, यह उसका धर्म है और रजोवती कन्याको जितने दिन घरमें रखना लिखा है, उतने दि

घरमें रखकर उसका पालन करना चाहिये। (तालियां) यह कुछ मेरा कहना नहीं है, परन्तु तुम्हारे शास्त्रकारका कहना है। पाणिनीयकी अष्टाध्यायीमें लिखा है कि—'कन्यायाः कनीन च' अर्थात् कन्याका जो कुछ होय वह कनीन और कन्यासे कानीन शब्द बना है और जो कन्या दशही वर्षकी होय तो इतनी वर्षमें उसके पुत्र कैसे हो सकता है? (तालियाँ) फिर महाभारतमें लिखा है कि **'कानीनः करणो व्यासश्च'** अर्थात् करण और व्यास कन्याके पुत्र थे। पांडवों की माता कुन्तीको महाभारतमें कन्या कहा है। जो वह कन्या अर्थात् दश वर्षकी होती तो क्या पांडवोंका उससे जन्म होना युक्त हो सकता है?

विवाह कौन करे? स्वयं कि माँबाप?

अब मैं वेदमें विवाहका समय बतलाऊंगा, मैं छातीपर हाथ धरके कहूँगा कि कोईभी संस्कृतका पण्डित वेदोंमें बतलावे कि—'पुत्र पुत्रीके विवाह माता-पिता करें'। अखबारोंमें जैसे कितनेही लोग अपना नाम नहीं देते हैं, परन्तु "एक लिखनेवाला' इस प्रकार अपने नाम लिखते हैं और अपना नाम छिपाते हैं (हंसी) वैसे नहीं, परन्तु मैं खोलकर कहता हूँ कि जो वेदोंमें ऐसा हो तो कोई पण्डित बतलावे। सब शास्त्रोंमें दोनोंको युवावस्थामें पहुँचकर अपने आप विवाह करना लिखा है। (**जोरसे तालियाँ**) माता-पिताका काम पुत्रपुत्रीको पढ़ाना वेदोंमें कहा है, परन्तु उनके विवाह करना वेदोंमें नहीं कहा है। मनु आदिने ऐसा लिखा है कि—'पुत्रीका विवाह पिता कर दे, परन्तु स्मृतिमें भी पुत्रका विवाह करनेको तो नहीं लिखा है। अस्तु। अब वेदोंमें विवाहका क्या समय कहा है, इसपर मैं आऊंगा। वेदमें लिखा है कि—

सोमोवयुर भवदश्विनास्तामुभावरा।
सूर्या यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात् ॥८॥

ऋ० १०—८५

सूर्यकी पुत्रीका विवाह और उमर

कि जिसने वेदोंका भाष्य पौराणिक पद्धतिसे किया है, उसने

इसका अर्थ क्या किया है, सो देखें। सायणने भाष्यके उपोद्घातमें तो लिखा है कि वेदोंमें वस्तुविशेषका नाम नहीं है, परन्तु स्वयं भाष्यमें उसने बहुतसे इतिहास तथा बड़ी निन्द्य बात लिखी हैं। यहांतक कि मैं उनका उच्चारण भी नहीं कर सकता हूँ। ऐसा है तौ भी वह वेदोंके अर्थ कहांतक बदलेगा ? ऊपरके मन्त्रका अर्थ उन्होंने ऐसा किया है कि सूर्य्य भगवान् जो पृथ्वीसे १३—१४ लाखगुना बड़ा है उनकी पुत्री सूर्याका विवाह चन्द्रके साथ हुआ ! चन्द्रमा (सोम) को उनके साथ विवाहकी इच्छा हुई थी उसी समय दो अश्विनोंको (जिनको हिन्दू लोग बड़े वैद्य मानते हैं) भी उसके साथ विवाहकी इच्छा हुई थी, उस समय उसकी उमर क्या थी ? जो कि सायणने इस अंशमें अशुद्ध अर्थ किया है तौ भी वे भाष्यमें कहते हैं कि **'पतिकाम्यमानाँ पर्याप्तयौवनां'** इत्यर्थः अर्थात् वह युवावस्थामें आ गई थी और पतिकी कामना करनेवाली होगई थी। अश्विन उसके साथ विवाह करना चाहते थे, तथा वह चन्द्रके साथ विवाह करना चाहती थी। इससे उसका विवाह उसके पिताने उसके साथ कर दिया। इस मन्त्रका इतना अर्थ होते भी सायणाचार्य इतना तो न छुपा सके कि कन्याका विवाह उसकी इच्छानुसार उसके युवा होने बाद किया गया था। सत्य अर्थ तो और ही है। सूर्याका अर्थ विद्वान् पढ़ी लिखी लड़की होता है। यजुर्वदके ४० वें अध्यायमें

'असुर्या नाम ते लोका अंधेन तमसा वृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥

इसमें असुर्यका अर्थ अविद्वान् है, वैसेही सूर्यका अर्थ विद्वान् होता है। वैसी विदुषी स्त्री होय तो स्वयंवर करे। इस स्वयंवरमें अनेक लोग आते हैं। उसमें जिसको वह वरमाला पहनावे, वह उसका पति होवे। स्वयंवरमें जो आते थे, उनमेंसे किसीको भी कन्या पसन्द कर सकती थी। अश्विनका अर्थ जैसे माना जाता है वैसे वैद्य नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें उसका अर्थ स्त्रीपुरुष किया है। तथा उसका अर्थ पृथिवी, आकाश, रात्रि, दिवस, चन्द्र, सूर्य्य विद्वान् और अध्वर्यु होता है। जिसको कन्या पसन्द करे, उसीके साथ पिता विवाह करा सके।

उसको पुत्रीको आज्ञा करनेकी सत्ता नही है। वह तो सलाह और सहायताही दे सकता है। ऊपर कहे वेदमन्त्रका सत्य अर्थ ऊपर कहे अनुसारही हो सकता है। ऋग्वेदके १०—२७—१२ मन्त्रमें लिखा है कि विवाह करनेवालेको कौनसी स्त्री उत्तम लगती है? जो सुन्दर हो, जो प्रिय पतिकी याचना करती हो वही स्त्री पतिको प्यारी लगती है। वेदमन्त्रका अर्थ स्पष्ट करनेको स्वयं सायणने भी एक उदाहरण दिया है। उन्होंने लिखा है कि जैसे दमयंती आदिने स्वयंवर किया था, वैसेही दूसरी स्त्रियाँ भी परस्पर गुण जानके विवाह करें। दश वर्षसे अधिक उमरतक कन्याका विवाह न होनेसे मातापिता नरकमें जाते हैं, यह बात बिल्कुल गलत है।

पाँडवोंकी माता कुन्तीका स्वयंवर

महाभारतमें पांडवोंकी माता कुन्तीके स्वयंवरका वर्णन आया है। उसमें उसको तेजस्विनी, रूपयौवनकी खान कहकर लिखा है कि उसके साथ विवाह करनेको बहुत राजा उत्सुक थे। जो कुन्ती उस समय दश वर्षकी होती तो उसमें ऊपर कहे हुये गुण कैसे होते? कुन्ती माताने बाल्यावस्थामें नहीं किन्तु युवावस्थामेंही विवाह किया था, इससे उसके ऐसे बहादुर शूरवीर महान पुत्र उत्पन्न हुये थे युधिष्ठिर जैसे दृढ धर्मात्मा, अर्जुन जैसे बलवान् पुत्र किसके हुये हैं? इसका कारण माताके ब्रह्मचर्यके प्रतापके सिवाय और कुछ नहीं है (जोरसे तालियां)

मुझे नहीं मालूम, मेरे बापको पूछो

परन्तु आजकल क्या देखा जाता है? पांच आठ अथवा दश वर्षकी छोकड़ी का ८—१०—१२ बरसके छोकड़ेके साथ विवाह किया जाता है। मैं एक उदाहरण दूंगा। उन बिचारे पुत्रों (बालक) को विवाह का क्या प्रयोजन है, यह बिल्कुल नहीं मालूम होता है। आठवर्ष हुये, मैं बम्बईमें था, उस समय मुझे एक गृहस्थने एक हास्यजनक बातसुनाई थी सो अभीतक मुझे याद है। एक छोटा लड़का शादी करने जाता था। घोड़ेपर बैठे उस लड़केसे उसके एक सम्बन्धीने पूछा-अरे! यह सब क्या होता है? यह वरघोड़ा क्यों निकला है?

तब वरराजा ने कहा—मुझे नहीं मालूम ! (हंसी) मेरे बापसे पूछो। किसका बरघोड़ा निकला है" (ज्यादा हंसी).

मइसोर में विवाहसम्बन्धी कानून
उसके बननेका एक हास्यजनक कारण

आठ वर्ष हुये, मैं मुम्बई से चलकर मइसोर गया था। मइसोर के राज्यमें वहाँ के पूर्व राजाने ऐसा कानून बनाया था कि १२ वर्ष से कम उमर की लड़की का विवाह न किया जाय। मैंने मइसोर के महाराजासाहब से पूछा कि यह कानून बनाने का क्या कारण है ? श्रीमानों ने उत्तर दिया कि—'छोटी उमर में विवाह करने से जो नुकसान हुआ है, उसका मुझे अनुभव है। एक समय ऐसा हुआ कि मैंने एक पाँच वर्ष की छोटी लड़की का विवाह करते देखा। हमारे राज्यमें नियम है कि विवाह होते समय पहले कन्या वरको एक केला देती है और उसको खिलाकर पीछे आप खाती है। इसका आशय यह है कि स्त्री पहले पतिको भोजन कराकर पीछे से स्वयं भोजन करे। यह जो पतिसेवाकी मर्यादा है सो व्यवहारिक रीति से विवाह के समय साक्षात्कार करना चाहिये। इस ऊपर कहे हुए उदाहरण में ऐसा हुआ कि उस पाँच वर्षकी कन्याको केला दिया गया, परन्तु बालिका क्या समझे ? उसने उसका छिलका उतारकर पतिको देने के बदले आपही खा गई ! (खूब जोरकी हंसी) आगे चलकर महाराजाने मुझे बतलाया कि यह हाल देखकर मुझे बहुतही बुरा लगा और छोटी उमरमें विवाह करने से जो अन्धेर होता है सो मुझे मालूम हुआ ! उस दिनसे मैंने विवाह की उमर का कानून बनाया। बिचारी छोटी लड़की को क्या खबर कि पति किस चिड़िया का नाम है ? (बड़ी हंसी)

अब आर्यावर्त में योद्धा और विद्वान् क्यों नहीं होते हैं ?

ब्रह्मचर्य का पालन न करना कुदरतके उत्तम नियम का उल्लंघन करने के बराबर है। कुदरत के नियम के विरुद्ध जल्दी विवाह करने के पक्ष में चाहे हजारों पुस्तकें लिखी जायं तो भी क्या कुदरत अपना स्वभाव छोड़

देगी ? प्राचीन कालमें महान् ऋषि राजा और विद्वान् होते थे; अब क्यों नहीं होते हैं ? क्या आर्यावर्त्त की भूमि के वायु जलमें परिवर्त्तन हो गया है ? नहीं, हिमालय पर्वत जहाँ था हाल में भी वहीं है। गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियाँ भी जैसी थीं वैसी ही बहती हैं; तो भी आज आर्य संतानों की स्थिति में परिवर्त्तन हो गया है, इसका कारण यह है कि पहले ऋषि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करते थे, उस समय स्त्रियां भी कम से कम १६ से २४ वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रहती थीं। इससे उन ब्रह्मचारी मातापिताके संतान बहादुर शूरवीर होते थे।

बालब्रह्मचारी भीष्म पितामह

महाभारत में कृष्ण महाराज कहते हैं कि हे युधिष्ठिर ! भीष्म पितामह सारी पाँडव सेना से न डिगे, महाबाहु अर्जुन से भी न थके; और जब छलकपट से उनके सामने शिखण्डी खड़ा किया गया तबही वे बाणों से विन्ध गये। अब वे अनेक बाणों से विन्धे बाणशय्यापर पड़े हैं तो भी अभी कैसे स्वस्थ हैं ? ऐसी असाधारण सहनशक्ति का क्या कारण ? कारण यही कि भीष्म की माता गङ्गाका गर्भ जब मजबूत हुआ था तभी उसने भीष्म को धारण किया था। (तालियाँ) आर्यावर्त्त में सबसे महान् ब्रह्मचारी योद्धा श्रीभीष्म हुए हैं। उनके बाद कोई हुआ ही नहीं। (तालियां)

लड़केका लड़का

आजकल कन्या दशवें बारहवें वर्ष और पुत्र १४-१५ वें वर्ष में विवाह करते हैं। खुद लड़का और उसका भी लड़का (हंसी) बड़े रोआब से कहते हैं कि हम तो मर्द के बच्चे हैं परन्तु मर्द का बच्चा तो कुछ भी पुरुषार्थ कर सकता है, लड़के का लड़का क्या कर सकता है ? (हंसी और तालियां) आज कल सब ही गाय, भैंस, बकरी जैसे नरम हैं। यह तो ठीक है कि अंग्रेज सरकारका राज्य है; फ्रेंच रूसियों का भय नहीं है। नहीं तो तुम लड़कों के लड़के क्या कर सकते हो ? हिन्दुओ की कायाशक्ति का नाश ब्रह्मचर्य के नाश से हुआ है।

१२—१३ वर्ष की लड़की का पेट तो प्रमाण में बहुत छोटा होना चाहिये। वह हथेली में समा जाय (हाथ दिखाकर बतलाया) उसका बच्चा भी उतना ही छोटा हो सके और इसीसे उसके जो बच्चे पैदा होवें भी चुहे जैसे छोटे पिल्ले जैसे हो होंगे। (हंसी)

यमराजका वारंट

जो तुम शान्त भाव और बुद्धिपूर्वक देखोगे तो तुमको मालूम होगा कि आज कलकी प्रजा के अधिक भागको आंखें गहरी घुस गयीं, गाल बैठ गये, रंग पीला गया पड़ गया और शरीर माँसरहितसा होता है। जब तक जवानी की उमर में विवाह न किया जाय तबतक देश की उन्नति नहीं होने की। मैं यह सुधार करने का आग्रह करता हूँ, क्योंकि यह वेदानुकूल है। मैं कुछ ऐसा सुधारक नहीं हूँ कि जिसके लिये वेद और शास्त्रों में सम्मति न हो तो भी मैं उसका प्रतिपादन करूं। शास्त्रों में ऐसा कुछ भी नहीं लिखा है कि जो तुम कन्याका दशवें वर्ष विवाह न करोगे तो तुम्हारे ऊपर यमराज का वारण्ट आवेगा। (हंसी) युरोपियन लोग जबतक जवान नहीं होते, तबतक कुवारे रहते हैं और शायद विवाह भी नहीं करते। यह नियम कुछ नया नहीं है, परन्तु अपने प्राचीन ऋषि मुनियों की ही रीति है (तालियां)

बड़ी वयमें कन्याका विवाह होनेके महाभारतमें दृष्टान्त

महाभारत में कन्याके बड़ी उमर में विवाह करने के अनेक दृष्टान्त हैं। उनमें से थोड़े से यहां दूंगा :—

स समीक्ष्य महीपालः स्वां सुतां प्राप्तयौवनाम्।
अपश्यदात्मनं कार्यं दमयन्त्याः स्वयंवरम्॥

वनपर्व अ० ५३ श्लोक ८।

वैदर्भीन्तु तथा युक्तां युवतीं प्रेक्ष्य वै पिता।
मनसा चिन्तयामास कस्मैदद्यामिमां सुताम्॥

दमयन्तीको जवान हुई उसके पिता राजाने देखी। इसलिये उसने दमयन्ती के स्वयंवर की इच्छा की। विदर्भ देशकी लोपामुद्रा जब यौवनावस्था में हुई तो उसके पिताने विचार किया कि इसका विवाह किसके साथ करना चाहिये।

संप्राप्तयौवनां पश्यन् देयां दुहितरं तु ताम्।
स शीलयन् देवयानीं कन्यां संप्राप्तयौवनाम्॥

(महाभारत आदि० अध्याय ७६, श्लोक २५)

ऊपर कहे अनुसार शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने ब्राह्मण कुलोत्पन्न होने पर भी क्षत्रीय राजा ययातिके साथ विवाह किया था। जन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करनेवाली स्त्रियोंके उदाहरण भी महाभारत में दिये हैं। जैसे लोमश ऋषि कि जिनका जैसा दीर्घायुष कोई ऋषि हुआ ही नहीं, वे भारत के शल्य पर्व ५४ अध्याय में कहते हैं।

अत्रैव ब्राह्मणो सिद्धा कौमारब्रह्मचारिणी।
योगयुक्ता दिवं याता तपः सिद्धा तपस्विनी॥६॥
बभूव श्रीमतो राजन् शांडीलस्य महात्मनः।
सुता धृतव्रता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी॥७॥
सा तु तप्त्वा तपो घोरं दुश्चरं स्त्रीजनेन ह।
गता स्वर्गं महाभागा देवब्राह्मणपूजिता॥८॥

(शल्यपर्व अ० ५४)

लोमश ऋषि युधिष्ठिर से कहते हैं, इस स्थान पर शांडिल्य ऋषि की कन्या धृतवती ने आजन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करके तप किया और विद्वानों से सत्कार पाकर मोक्षधामको चली गई। फिर कहा है कि :—

भारद्वाजस्य दुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि।
श्रुतावती नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारिणी॥

साऽहं तस्मिन् कुले जाता भर्तर्यसति मद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम्॥

महाभारत के ४६ वें अध्याय में लिखा है कि भारद्वाज की पुत्रीने भी जन्म-पर्यन्त कुमारव्रत पाला था। सुलभा नामकी राजपुत्री ने अपने समान कोई पति न पाने से विवाह न किया था। जो ब्रह्मवादिनी थी और जिसने योगबल से सीता के पिता महराजा जनक के होश भुला दिये थे, वह भी कुमारी थी। अब जो कन्याका अर्थ दशवर्ष की लड़की ऐसा होता होय तो ऋषिकन्याओं का आजन्म विवाह न करना और ब्रह्मचर्य पालन करना कैसे संभव हो सकता है? परन्तु अब गड़बड़ हो गई है। कितनी ही अर्वाचीन पुस्तकों में तो यहां तक लिखा है कि 'नग्निका तु श्रेष्ठा' अर्थात् नंगी फिरती कन्याके साथ विवाह करना सबसे उत्तम है (हंसी) कइये कुनबियों की जातिमें एक दिनके पुत्रपुत्रियोंका विवाह हो जाता है और मैंने सुना है कि कभी २ तो पेट में ही विवाह कर दिये जाते हैं (हंसी)

वेदमें विवाहसम्बन्धी परस्पर प्रतिज्ञावाक्यादि ये हैं

ऋग्वेद के आठवें अष्टक में वर-कन्याजो (प्रतिज्ञा) एकरार करते हैं, उसका वर्णन किया है। उसमें बतलाया है कि वरको ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि—'हे स्त्री! मैं तेरा संग इस जन्मभर न छोरूंगा। मैं सदा तुझको सुख दूंगा और तेरे अधीन रहूँगा, स्त्री को ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि—'हे पते! तेरी इच्छा विरुद्ध मैं आचरण न करूंगी, मैं तेरा सन्मान ही करूंगी मैं तेरा सत्कार अवश्य करती रहूँगी, ऐसी ऐसी प्रतिज्ञाएं कन्या बाल्यावस्थामें कैसे कर सकती है? सरकारी कानून देखने से भी मालूम होगा कि लड़का १८ वर्ष की उमर के अन्दर अल्पायु (नाबालिग) गिना जाता है, और उसकी प्रतिज्ञा प्रमाणभूत नहीं समझी जाती है। छोटे २ अबुद्ध बच्चे तो क्या प्रतिज्ञा कर या समझ सकते हैं? परन्तु आजकल तो ऐसा अन्धेर है कि—'वर मरो कि

कन्या मरो, गोरका घर भरो ! आजकल पुत्र पुत्री तो छोटे होने से प्रतिज्ञा पढ़ ही नहीं सकते हैं, इससे पुरोहितजी ही पढ़ लेते हैं। जो बड़ी उमर में पुरोहितजी की पढ़ी प्रतिज्ञाके विरुद्ध चले तो उसका पाप किसके शिरपर ? (पुरोहित के शिरपरकी आवाज) जो वे एक दूसरे को छोड़ें तो भी उसके भागी वे नहीं हो सकते; क्योंकि अज्ञानतामें उनका विवाह होता है।

कन्याकी योग्यता आदिके संबन्धमें वेदमन्त्र—

इयं नार्युपब्रूते पुल्यान्यावपन्तिका।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवानि शरदः शतम् ॥

अथर्व० १४—२—७५

वेदमें इस प्रकार की आज्ञा है कि विवाह करनेवाली स्त्री पुल्यानि, कदाबर मजबूत होनी चाहिए और "आवपन्तिका" अर्थात् वह (गृह) संसार कर्म करने के योग्य होनी चाहिये। उसको प्रार्थना करना चाहिये कि मेरा पति सौ वर्ष तक जीवे और सौ वर्ष की आयुष्यवाला होवे, अथर्व वेद में—

"प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासीदीर्घं त आयुः सविता कृणोतु।"

अथर्व० १४—२—७५

इस प्रकार पतिको कन्या के साथ विवाह करके कहना चाहिये कि—'तू बड़ी बुद्धिमती है, अनुभवी है; दीर्घ सौ वर्ष की उमर बिताने को तू घर चल और घर की मालिक हो। सविता परमेश्वर तेरी उमर बड़ी करे।" अथर्ववेदके १४ वें काण्ड में कहा है कि—

चक्रवाकेव दम्पती अथ० १४—२—६४

अर्थात् "जैसे चकवा चकवीका एकही जोड़ा रहता हैं वैसे पुरुषको भी एक ही समयमें अनेक विवाह न करना चाहिये, परन्तु आजकल तो अन्धेर चल रहा

है। ६० वर्षका बुढा आठ वर्षकी लड़कीसे विवाह करे। जब वह बारह वर्षकी हो तब बूढ़ेकी राम राम सत्य है (हंसी) तोभी ऐसी छोटी उमरकी विधवा फिरसे विवाह न कर सके यह कौनसे न्यायकी बात है ! मनुष्य नीतिमें सबसे बढ़कर होशियार और साथ ही दुष्टभी होता है। कोई भी प्राणी विश्वासघात नहीं करता है, परन्तु मनुष्य करता है। सिंहके गरजसे बकरी डरकर बलवान् मनुष्यके शरणमें जाती है, परन्तु वह विचारी थोड़ाही जानती है कि ये हजरत खुद उसको स्वाहा करनेवाले हैं, परन्तु पुरुष कुछ अकेली बकरी कोही नहीं किन्तु अपनी स्त्री, माता, बहनके ऊपरभी अन्याय करता है। एक आदमीने मुझसे पूछा कि—'स्त्रियोंकी नथनीका मतलब तुम जानते हो ?' मेरे ना कहनेसे उसने कहा कि असलमें बैलकी तरह पुरुष स्त्रियोंके नाथ डालते थे, परन्तु सुधारेके प्रतापसे यह रिवाज मिट गया है। तोभी वह नाथ बदलकर अब सिर्फ नथनीके रूपमें बाकी रह गई है। मेरे कहनेका तात्पर्य इतनाही है कि पुरुषको एकही स्त्री के साथ बड़ी उमरमें विवाह करना चाहिये और दोनोंके समान सत्व (हक) समझकर वर्ताव करना चाहिये। पुरुष चाहे कितनीही उमरतक विवाह करता जाय और स्त्री न करे ऐसा मानना कैसी दुष्टताकी बात है ?

माताके गर्भके संस्कारोंका पुत्रपर असर

माताका गर्भ मज़बूत होनेसेही संतान मज़बूत हो सकती है। पिताकी अपेक्षा माताके संस्कार संतान पर बहुत ही भारी असर करते हैं। मैं एक दृष्टान्त दूंगा। एक समय एक एम० ए० ने मुझसे पूछा कि—"मैं भूत प्रेत नहीं मानता हूँ। मुझे मेरे प्रोफेसरोंने बहुतही समझाया कि भूत कोई वस्तु नहीं है और मुझे निश्चय भी हो गया है; परन्तु मैं अन्धेरेमें जाता हूँ तो मुझे भूतकी शंका होती है इसका क्या कारण होगा ?' मैंने उनसे बहुत बातें पूछी, अन्तको मैंने पूछा कि—'तुम्हारी माता पढ़ी है ?' उसने कहा नहीं। फिर मैंने पूछा कि — 'वे भूत मानती हैं ? और तुमको लड़कपनमें भूतसे डराया करती थी ?' उन्होंने कहा — 'हां, मैं जब छोटा था, तब मुझे हमेशा कहा करती थी कि फलाने पीपलपर भूत

रहता है, इसलिये वहां मत जाना' मैंने कहा कि 'बस यही तुम्हारे डर का कारण है, हजारों प्रोफेसरोंकी क्या ताकत है लड़कपनमें माताके घुसेडे भूतको निकाल सकें (हंसी) चाहे कितना ही प्रोफेसर कहे, परन्तु रातको तो सोनापुर (मरघट) तरफ जाते तो वह डरतेही ! (हंसी) हालमें हिन्दुओंमें बहुतेरे लड़के बेरिस्टर होते हैं, सिविलियन होते हैं, डाक्टर इंजिनियर होते हैं; परन्तु आखिरको बन्दा मोची (हंसी) क्योंकि माताओंकी ओरसे उनको शायदही कहीं उत्तम शिक्षण मिलता है। और छोटे गर्भवाली माता होने से सन्तानों में शूरवीरता नहीं आती है, तथा अधिकांश वे अशिक्षिता होती हैं, इसलिये उनकी तरफ सन्तानोंकी जैसी चाहिये वैसी पूज्य बुद्धि नहीं होती है। हिन्दू लोग स्त्रियोंके विषयमें बहुत ही स्वार्थी हो गये हैं। उन्होंने जाना कि पुत्र तो एम० ए० बी० ए० होकर टके कमावेगा, परन्तु पुत्रीको पढ़ानेमें खर्चे हुये रुपये व्यर्थही जायगे; क्योंकि लड़की की जात पराया धन है बड़ी होनेपर पराये घर चली जायगी। इसलिये क्यों पढ़ावें ? (हंसी) परन्तु उनकी इतनी दीर्घ दृष्टि नहीं होती है कि जैसी उनकी पुत्री दूसरोंके घर जावेगी वैसेही दूसरोंकी उनके घर आवेगी और जो वे भी इनकी तरह अपनी पुत्रियोंको शिक्षा न दें और इसी तरह अगर माता छोटी उमरकी होवे तो वह अशिक्षित भी होगी इससे सन्तानपर बहुत खराब संस्कार पड़ते हैं। यह तो सब जानते हैं कि बालकपर गर्भमें सबसे बलवान् संस्कार पड़ते हैं। इस विषयमें मैं फ्रांसकी लड़ाईका उदाहरण दूंगा। ३०—३२ वर्ष हुये, युरोपमें फ्रांको जर्मन लड़ाई हुई थी। उस समय फ्रांसमें स्त्रियोंको और खासकर गर्भवती स्त्रियोंको ऐसा भय लग गया था कि—'कौन जाने जर्मन लश्कर हमको क्या करेगा' माताओंके इस डरका पुत्रों पर बड़ाही भयंकर असर पड़ा था। यहाँतक कि इस अवसरमें जो बालक जन्मे थे, वे अल्पायु तथा डरपोक हुये थे। पिताकी अपेक्षा माताके साथ संतानोंका विशेष सम्बन्ध होता है, इसलिये शास्त्रों में माताको बालकोंका प्रथम आचार्य कहा है परन्तु अफसोस है कि हालमे सन्तानोंके इन आचार्योंमे 'तीनों नदारद' हैं (हंसी)

ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें धर्मशास्त्रकी अपेक्षा वैद्यकविद्याकी श्रेष्ठता

धर्मशास्त्रोंमें जो बात वेदविरुद्ध हो तो वह अमान्य है। जैसे प्रसंगोपात्त वैद्यकसम्बन्धी कोई बात इन्जिनियरिंगकी पुस्तकमें आई हो और वह वैद्यकके ग्रन्थोंसे विरुद्ध हो, तो वैद्यकके ग्रन्थकी बातही मानने योग्य समझी जायगी, न कि इन्जिनियरिंगकी। एक शास्त्रका दूसरे शास्त्रसे संबन्ध होता है। वैद्यकविद्या का जैसे विवाह और ब्रह्मचर्यके साथ सम्बन्ध है; वैसेही धर्मशास्त्रोंके साथ भी सम्बन्ध है; परन्तु विवाहके विषयमें प्रधानतासे वैद्यकविद्याकाही सम्बन्ध है। विवाहकी जो उमर वैद्यकशास्त्रमें अयोग्य कही हो और धर्मशास्त्रमें जो योग्य कही होय तोभी वह धर्मशास्त्रका कथन मिथ्या समझा जायगा। वैद्यकके ग्रन्थोंमें लिखा है कि—'वर-कन्याकी उमर कमसे कम पचीस और सोलह वर्षकी होनी चाहिये, परन्तु दूसरे ग्रन्थोंमें उससे बहुत छोटी उमर लिखी है और वह वैद्यक विद्यासे विरुद्ध होनेके कारण अमान्य होनी चाहिये। धन्वंतरीको हिन्दू लोग ईश्वरका अवतार मानते हैं। वे कहते हैं :—

ऊनषोडषवर्षाणामप्राप्तः पञ्चविंशतिः।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भः कुक्षिस्थः स विपद्यते॥
जातो वा न चिरं जीवेत् जीवेत् वा दुर्बलेन्द्रियः॥
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

कि कमसे कम कन्या सोलह वर्ष और पुरुष पचीस वर्ष से पहिले उनके बीच में संबन्ध न होना चाहिये। यदि संबन्ध होगा तो गर्भ नहीं रहेगा और जो गर्भ रह भी गया तो गिर जायगा। जो संतान हो भी गई तो वह दीर्घजीवी नहीं होगी और जो कदाचित् जीवे तो दुबली पतली रहेगी। इसके अतिरिक्त प्राचीन वैद्यकसंबन्धी महान् लेखक चरक, वाग्भट्ट, आदिभी ऐसा ही कहते हैं। हम सब प्रत्यक्ष प्रमाण से देखते हैं कि—'आज कलकी अब्रह्मचारी प्रजा दुर्बल निर्बल और

अल्पायु है, मान लो कि धर्मशास्त्रों में काली मिर्च का ऐसा वर्णन किया हो कि वह बहुत मीठी होती है, परन्तु इससे क्या उसकी तिखास कुछ मिट जायगी ? इसलिये यदि धर्मशास्त्र में कुछ नियम विरुद्ध लिखा हो तो उसको ग्रहण करने से नुकसानकी जगह कुछ फायदा न होगा। मैं तुमसे देश उन्नतिके लिये कहता हूँ कि बालविवाहरूपी डाकिनको तुम छोड़ो, कि जिससे देशकी उन्नति होय (तालियाँ)।

श्रीकृष्ण कन्यादानके विषयमें क्या कहते हैं ?

धन्वंतरी ऋषिको ईश्वरका अवतार मानते हुएभी हिन्दुओंमें उनका बहुत मान नहीं है। २४ अवतारोंमें जो सबसे ज्यादा मान्य श्री कृष्ण हैं, वे स्वयंवरके विषयमें क्या कहते हैं सो मैं कहूँगा। हिन्दू दूसरे अवतारोंको तो ईश्वरकी एक कलारूपही मानते हैं और उनको शिरसा वंद्य मानते हैं। महाभारतमें लिखा है कि....'वसुदेवकी पुत्री सुभद्राका स्वयंबर जब हुआ तो उसमें अनेक राजा एकत्र हुये थे। अर्जुन उस विदुषीपर मोहित होकर साथ विवाह करनेकी इच्छा श्रीकृष्ण को दिखाई। कृष्णने कहा कि सब राजाओंको छोड़कर तुमको कैसे कह दूं ? परन्तु एक उपाय है कि—'तुम क्षत्रिय हो और इससे तुममें तामस गुण है; इसलिये यदि तुम चाहते हो तो सुभद्राको भगा ले जाओ।' अर्जुन रथमें उसको बिठाकर वैसाही किया। इस जगह शुक्राचार्य लिखते हैं कि—'श्रीकृष्ण समान पोलिटिकल, राजद्वारी, कुशल, थोड़ेही होने चाहियें कि जिन्होंने अपनी बहनको भगा ले जानेका उपदेश किया !!' (हंसी)। अस्तु सुभद्राके गुप्त हो जानेसे यादवोंमें कोलाहल मच गया। बलभद्र बड़े शूरवीर थे। परन्तु उनमें एक दोष था कि वे भोले थे (हंसी)। उनको क्रोध आया और कहने लगे कि—'हे अर्जुन ! मैं तुझे मार डालूंगा'। कृष्णने कहा कि—'जरा दृढ़ हो तो। बलभद्रके शान्त होने पर कृष्णने काहा कि—'हे बलभद्र ! अर्जुनने शास्त्रानुसार सुभद्राके साथ आसुर विवाह किया है। वह जरा कनिष्ठ प्रकारका विवाह है। परन्तु तुम कहो तो सही कि उसमें बुरा क्या है ? क्या सुभद्राको अर्जुनसे श्रेष्ठ कोई पति

मिलता ?' उन्होंने कहा कि—'न मिलता तो कन्यादान तो मैं करता !' इसपर कृष्णने कहा :—

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्कोनुमन्यते।
विक्रयं पाप्यपत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषो भुवि॥

महाभा० आ० अ० २२२

हे बलभद्र ! कन्याका दान तो पशुबेचने समान है

कन्याको वेचनेका किसीको (सत्व) हक नहीं है। पशु और निर्जीव वस्तुका दान हो सके कि मनुष्यका ? मनुष्य बेचना वा दान करना कौन उत्तम समझे ? इसलिये तुम्हारा शोक मिथ्या है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय कन्यादान का रिवाज शुरू होगा; नहीं तो कृष्ण खण्डन क्यों करते ? कन्याको पूरी उमरकी होकर उसको अपनी इच्छानुसार पति पसंद करके विवाह करना चाहिये। पिता उसको इस विषयमें सलाह और सहायता दे, परन्तु उसको आज्ञा नहीं कर सकता। (तालियाँ)

पिंगलमें 'धी, श्री, स्त्री' ऐसा एक सूत्र है। प्राचीन ऋषि लोग अपने ग्रंथोंमें ऐसे सूत्र बनाया करते थे कि जिनमें शब्दलाघव हो और अर्थबाहुल्य हो। धी, श्री, स्त्री इन तीनोंका अर्थ बुद्धि, धन, तथा स्त्री है। इसका आशय यह है कि इनको जिस क्रमसे सूत्रमें रक्खा है उसी क्रमसे प्राप्त करना चाहिये अर्थात् मनुष्यको प्रथम बुद्धि प्राप्त करके धनप्राप्तिके साधन प्राप्त करने चाहिये और पश्चात् न कि पहिलेही विवाह करना चाहिये। (तालियाँ)

बालविवाहका कारण

महाभारत युद्धके पश्चात् देशमें अविद्या तथा कुसंग फैल गये। कालक्रमसे विदेशियोंके आक्रमण शुरू हुये। उनमेंसे कितनेही दुष्ट युवा कन्याओंको उड़ा ले जाते थे और खासकर अविवाहित कन्याओंको ले जानेमें पुण्य समझते थे। उस समयके पण्डितोंने देखा कि इस आफत्मेंसे बचनेका यही उपाय है कि

कन्याओंका विवाह जल्दी कर देना चाहिये, कि जिससे वे बच तो जाय। परन्तु अब तो अंग्रेजी सरकारका राज्य है, इसलिये अब उस रीतिकी जरूरत नहीं है। अब तो उससे नुकसान है। शास्त्रोंमें पुरुषके लिये ज्यादा ४८ वर्षतक ब्रह्मचर्य पालन करना लिखा है। परंतु आजकल तो ४८ वर्षमें मरघटकी चितामें घुसनेका समय आता है (हंसी)। परंतु अब धोरे २ लड़कोंकी उमर २०, २१, २२ वर्ष तथा लड़कियोंकी १४, १५, १६ इस प्रकार बढ़ाना चाहिये (तालियाँ)। कुछ हमारे लोगही नहीं किन्तु प्राचीनकालमें और लोगभी ब्रह्मचर्यको लाभ समझते थे। एक समय "लुकमान हकीमकी स्त्रीको 'पुत्रेच्छा होनेसे उसको पतिसे स्वयं कहनेकी हिम्मत न होनेसे अपने एकलौते पुत्रद्वारा कहलाया कि—'मुझे दूसरा भाई चाहिये।' लुकमानने कहा कि—एक बारही दुनियाँदारीमें पड़नेसे मेरी आधी अकल गुम हो गई है, और जो फिर परूं तो बाकी रही आधी भी चली जाय' (हंसी)। इससे ज्ञात होता है कि विद्वान् लोग ब्रह्मचर्यको कितना जरूरी समझते थे। प्राचीन कालमें बिना ब्रह्मचर्यके कोई ब्राह्मणत्वको नहीं पाता था, ब्रह्मचर्यके प्रतापसे हिमसे ढके हिमालयके शिखरोंपर वास करके ऋषि लोग महान् विद्वान हुये थे।

महान् कार्य करनेवाले ब्रह्मचारी

ब्रह्मचारी ब्राह्मण भी क्षत्रिय जैसे शूरवीरों को हरा सकते थे। इसका दृष्टांत परशुराम है। परशुराम क्षत्रियों को २१ बार परास्त किया था, परशुराम एक बार राजा दशरथ को रास्ते में मिले; उनको देखते ही दशरथ भयभीत हो गये। भीष्म जैसे सहनशील, हनुमान् जैसे शक्तिमान्, शंकर और दयानन्द, (जोर की तालियाँ) जैसे धर्मयोद्धा, शकुनि आदि महान् ब्रह्मचारी थे वही दुनियां में महान् कार्य करने योग्य हुये। अंत में मेरी यही प्रार्थना है कि—"युवावस्थातक ब्रह्मचर्य धारण करके विवाह करने के लाभों का उपदेश तुम अपने बहनों, पुत्रियों तथा भाईयों को करके उनका तथा अपना परलोक तथा इहलोक सुधारो" इत्याशास्महे (तालियां)

★

१०

विधवा विवाह शास्त्रसम्मत है वा नहीं ?

तारीख २ अगस्त १९०२ बुधवार को सायंकाल के ६ बजे गेइटी थियेटर में ऊपर कहा हुआ व्याख्यान दिया गया था। उस समय नाटकशाला श्रोताओं से बिल्कुल खचा-खच भर गई थी और भीड़ के मारे जगह न रही थी। लगभग सौ स्त्रियाँ भी हाजिर थीं। उसके सिवाय कितने ही पारसी गृहस्थ तथा संन्यासी भी पधारे थे। सैकड़ों आदमी गेलेरी में और दूसरी जगहों में जगह न मिलने से खड़े सुनते थे। स्वा० जी के आनेपर तालियां बजाकर उनका सत्कार किया गया था और रंगभूमि पर विराजमान सभावित गृहस्थों ने उठ कर उनका मान किया।

डाक्टर पोपट प्रभुराम का भाषण

प्रारम्भ में धर्मसभा के संयुक्त मन्त्री डाक्टर पोपट प्रभुरामने कहा' विधवा-विवाह शास्त्र सम्मत है वा नहीं' यह विषय बड़े महत्वका है। इतनी भारी संख्या में आप लोग आज यहाँ प्रस्तुत हुये हैं इसलिये आपका मैं उपकार मानता हूँ। आज के विषय पर माधव बाग में हुई सभा में अतिशय चर्चा चली थी और यहाँपर हम लोग स्वामी श्रीनित्यानन्दजी का अभिप्राय लेने को एकत्र हुये हैं। आ० डाक्टर सर भालचन्द्र ने मुझे हाल अभी ही टेलीफोन में कहलाया है मैं जहाँ तक बनेगा जल्दी आ पहुचूंगा, परन्तु आज समय थोड़ा होने से उनके आनेतक रुक न सकने से मैं स्वामीजी से अपना व्याख्यान आरम्भ करने को विनती करता हूँ।

इसके पश्चात् तालियों की ध्वनि के बीच में स्वामी श्रीनित्या नन्द जी महाराज ने अपना व्याख्यान शुरू करते कहा कि मेरी प्यारी बहिनो और भाइयों! आज के व्याख्यान का विषय धर्मसभा के सुयोग मन्त्री जीने

विदित कर दिया है। विधवा विवाह को कोई शास्त्रीय तथा कोई अशास्त्रीय बतलाते हैं। मैं उस पर निवेदन करने से पहिले एक बात कहना चाहता हूँ। पुनर्विवाहके दो भाग हैं। एक अंशमें तो पुनर्विवाहको सब हिन्दू तथा पण्डित मानते हैं, दूसरे अंश को कितने ही पण्डित मानते हैं; परन्तु बहुत से नहीं भी मानते। पहिला अंश तो केवल मान्य ही नहीं, किन्तु व्यावहारिक है। वह कौनसा अंश है? मैं कहूंगा कि रंडवा (जिसकी स्त्री मर गई हो उसको रंडवा कहते हैं) और शास्त्र में विधुर कहते हैं उनका पुनर्विवाह पहला अंश है। इसमें किसी हिन्दू गृहस्थ या पण्डितका विरोध नहीं है। एक साठ वर्ष का बूढ़ा बारह, व आठ वर्ष की कन्या के साथ विवाह करे तो इसमें आपत्ति नहीं समझी जाती है। मुझे अनुभव है कि बंगाल में कुलीन ब्राह्मण एक पीछे दूसरी इस प्रकार इतनी बार पुनर्विवाह करते हैं, कि विचारी उन विवाहित स्त्रियों को उसके घर जाकर उसके दर्शन करने की भी बारी नहीं आती! और मरणपर्यन्त पिता के यहाँ ही रहती हैं। शायद कभी पति अपने श्वशुर के यहाँ सो भी रुपये लेने जाय तो वह उसको मिल ले तो उसका नसीब! इस प्रकार पुरुष के लिये तो सब रास्ते खुले हैं; बाधा मात्र स्त्री के लिये है। परन्तु सबही शास्त्री इसके विरुद्ध में नहीं है। कितने ही धर्मात्मा संस्कृतज्ञ भी ऐसे हैं जो स्त्रियों के पक्ष में हैं (तालियाँ)।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय आदि

बंगाल के सुप्रसिद्ध सुधारक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर * ने सब पण्डितों को बतला दिया था कि स्त्रियों का पुनर्विवाह शास्त्रविरुद्ध नहीं है, वे केवल मुख-

* पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रणीत "विधवा विवाह" नामक पुस्तक देखिये। इसमें विधवा विवाह के पक्षमें शास्त्रों एवं इतिहासों के सैकड़ों प्रमाण दिये हैं। ३०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य १॥) मात्र।

पता—वैदिक पुस्तकालय २० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता

यह सूचना १०० वर्ष पुरानी है। —सम्पादक

वादी ही नहीं थे; परन्तु व्यवहारिक भी थे। उन्होंने अपनी विधवा पुत्री का पुर्नविवाह करके अपनी दृढ़ सहानुभूति सिद्ध कर दिखाई थी (तालियाँ)। दक्षिणमें भी विष्णु शास्त्री ने दिखला दिया था कि पुर्नविवाह शास्त्रसम्मत है (तालियां)

राजा राममोहन राय और सती का रिवाज

बंगाल के प्रसिद्ध राजा राम मोहन राय ने प्रथम यह हलचल उठाई थी कि—सती रिवाज शास्त्र तथा वेद विरुद्ध हैं। उन्होंने सरकार से अरज की कि सती का रिवाज बुरा तथा शास्त्रविरुद्ध होने से बन्द कर देना चाहिये। इसपर से गवर्मेंट ने शास्त्रियों का अभिप्राय मांगा और कहा कि सती होनेका विधाना वेदोंमें होय तो बतलाओ। इसपर से शास्त्री वेदोंको टटोलने लगे। ढूढते २ एक जगह "अग्रे गच्छ" ऐसा शब्द मिला! उन भले आदमियों ने अग्रे की जगह अग्नें बतलाया और कहा कि—'अग्नि में जाने की स्त्री को आज्ञा है' इस प्रकार सरकार को लिख भेजा तब राजा राममोहन रायने वेदों के अनेक हस्तलिखित पुस्तक सरकार को भेज दिये और लिखा कि जो मुकाबला किया जाय तो मालूम होगा कि सच तो अग्रे शब्द है और अग्नें शास्त्रियों ने झूठ लिखा है। राजा राममोहन राय ने अपनी अरजी में लिखा कि जो शास्त्रों में स्त्री के लिये सती होने का विधान हो तो पुरुषको भी अपनी स्त्री के पीछे जल भरना चाहिये (तालियाँ और हंसी) जो ऐसा ही हो तो उनका भी जल मरने को कहना चाहिये। शास्त्र सम्बन्धी गवर्मेन्ट का निश्चय हो जाने पर सती न होने देने के लिये कानून बनाया गया। जहाँ बुरी रीति पड़ गई हो, वहाँ लोगों से अन्याय और अत्याचार होने में आश्चर्य नहीं है।

स्त्रियों की आधुनिक ग्रन्थों में निन्दा

ईसाइयोंने तो एक बार इतनी ही कहा था कि स्त्रियों में आत्मा नहीं है तालियाँ) परन्तु आधुनिक हिन्द लोग तो उनसे भी आगे बढ़े हुये हैं। उन्होंने

अपनी माता बहन पुत्रीतक का इतनी कठोरता से अनादर किया है कि जिससे हमको अत्यन्त दुःख होता है। पञ्चतन्त्र में स्त्रियों के लिये देखो कैसा खराब लिखा है—

मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदये हालाहलमेव केवलम्।
अत एव निपीयतेऽधरो हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते॥

इसका अर्थ यह है कि स्त्री की वाणी में तो मधु मीठापन) है, परन्तु हृदय में तो हालाहल अर्थात् विष है। जो सचमुच उसके हृदयमें विष होय तो पुत्र जो उसके गर्भ में रहता है उसमें भी जहर क्यों न होना चाहिये ? (तालियां) आगे तो इससे भी खराब विशेषण उनको दिये हैं और कहा गया है कि क्षणभर के सुख के लिये जैसे भौंरा कमल में बन्द हो जाता है, वैसे ही पुरुष भी स्त्री के जाल में फंस जाता है।

वेद और मनु स्त्री के विषय में क्या कहते हैं ?

वेद में ईश्वर ने स्त्री-पुरुष को समान भाव से देखा है। मनु तो दयालु न्यायकारी थे; इससे उनका अभिप्राय ऐसा नहीं है कि—"स्त्री अनीतिवान् पापनी है"। देखो, मनु महाराज स्त्री की कितनी प्रतिष्ठा करते हैं :—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥

अ० ३—५५

अर्थ—पिता, भ्राता, पति और देवर तथा जो अपना कल्याण चाहते हों वे स्त्रियों को अनेक वस्त्र आभूषण आदि से प्रसन्न रक्खें (तालियां) मनु स्त्री को पूजनीय कहते हैं इतना ही नहीं; वे तो उसको देवता देवी तथा लक्ष्मी की भी उपमा देते हैं। पूजाका अर्थ यह नहीं है कि उसको सिंहासनपर बिठाकर उस पर फूल चन्दन माला नैवेद्य चढ़ावें (बड़ी हंसी) परन्तु पूजाका अर्थ सत्कार होता है॥

स्त्रीका अनादर होनेसे क्या परिणाम होता है

जब प्राचीन कालमें स्त्रियोंको पुरुषकी तरह न्याय मिलता था और उनका सत्कार होता था, तब आर्यावर्तदेश अनेक प्रकारसे सुखी था, परन्तु जबसे उनका असत्कार, अन्याय तथा अनादर होने लगा तबसे ऋषियोंकी मानी हुई स्त्रीरूपी शक्तियां हिन्दुओं पर कोप करने लगीं। आज कल जो हिन्दू लोग मानते हैं कि—'देवी कोप करती है सो सत्य है। हिन्दू, महाकाली देवीको मानते हैं, यह नाम शक्तिवाचक है, परन्तु उसकी जाति पर अन्याय होनेसे क्रुद्ध हो वह शक्तिरूपी देवी अब युरोप, अमेरिका आदि देशोंको चली गई है, उसके साथ दूसरी देवी महासरस्वती भी युरोप चली गई है। इसलिये अब उच्च प्रकारकी विद्याके लिये युरोप जाना पड़ता है। जब दो देवी बहनें चली गईं तो तीसरी देवी महालक्ष्मी भी प्रयाण कर गई, इसलिये यह देश निर्धन हो गया है (जोरकी तालियाँ) जो तुम भलाई चाहते हो तो तुमको अपनी बहन—माताओंके साथ असभ्य व्यवहार करना छोड़ देना चाहिये (तालियां)

स्त्रियोंके सम्बन्धमें इतना कहके अब मैं अपने विषय पर आऊंगा।

पुनर्विवाहके लिये वेदका मन्त्र—

उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ।

ऋ० १०।१८।८॥

अर्थ—हे (नारी) स्त्री ! (गतासुमेतं) निकल गये प्राण वाले प्रेतके (उपशेष) पास तू सोती है अथवा पड़ी है, (उदीर्ष्व) उठ। (अभिजीव लोकं) जीते लोक समुद्रके पास (एहि) आ। (हस्तग्रभस्यदिधिषोः पत्युः) हाथ पकड़ने वाले, पुनर्विवाह करनेकी इच्छा रखनेवाले पतिके साथ (तव इदं) तेरा यह स्त्रीपन (अभिसंबभूथ) अच्छी तरह होवे पतिके मरनेसे विधवा उसके प्रेतपर प्यार करती है और वह उसपर लिपट पड़ती है, इसलिये ईश्वर उपदेश करता है कि यह काम निरर्थक है और अब तुझे अपने व्यवहारमें प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

पति सम्बन्धी ऋग्वेदका मन्त्र—

ऋग्वेदमें लिखा है कि—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

ऋ० १० । ८५ । ४० ॥

इसके अर्थ जुदी २ तरहसे किये गये हैं। कितनेही ऐसे अर्थ करते हैं कि पहले स्त्री सोमके साथ व्यहार करे, फिर अग्नि, फिर गन्धर्व, और फिर मनुष्यके साथ। परन्तु असली अर्थ तो यह होता है कि स्त्रीके साथ पहले विवाह करने वाला पुरुष सोम अर्थात् वह पुष्ट धातुके कारण सोम अर्थात् चन्द्रमातुल्य सुन्दर होता है और ऐसा होना ही चाहिये। जो स्त्रीके साथ रहकर वह मर जावे तो दूसरी वार उसके साथ विवाह करनेवाला गन्धर्व अर्थात् रसिकताको प्राप्त होना चाहिये। तीसरी वार विवाह करे तो इस दफा पति अग्नि होना चाहिये, अर्थात् तपाई हुई धातु जैसा होना चाहिये। चौथी दफा विवाह करनेवाला पति मनुष्य अर्थात् विचारशील होना चाहिये।

पुनर्विवाह उत्तम है वा नहीं ?

मैं बतलाऊंगा कि—"पुनर्विवाह उत्तम है कि मध्यम वा निकृष्ट ?" मैं कहूँगा कि—"वेदमत अनुसार सबसे उत्तम बात तो जन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करना है" परन्तु यह कोई हंसी खेल की बात नहीं है। जो ब्रह्मचर्य पालन करने की इच्छा न हो तो विवाह कर ले और उस जोड़ेमें से कोई मर जावे तो सबसे उत्तम यह है कि विधवा अथवा विधुर ब्रह्मचर्य ही पालन करें। परन्तु जो ब्रह्मचर्य न रख सके और संतान न हो तो विधवा स्त्रीके साथ विधुर पुरुष विवाह करे। इसके पश्चात् मैं मनु आदि शास्त्रोंके प्रमाण दूंगा, इससे पहले एक अथर्ववेदका मन्त्र दूंगा—

अनेक पति विषयक वेदमन्त्र—

उत यत् पतयो दशस्त्रियाः पूर्व अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥८॥
ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः तत् सूर्यः ।
प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यो मानवेभ्यः ॥९॥

अ० का० ५ । १७ । ८—९ ॥

इसका अर्थ ऐसा है कि यदि स्त्रीके प्रथमके दश पति अब्राह्मण मूर्ख (अविद्वान्) हो तो यह प्रशस्त नहीं है, अर्थात् विद्वान् पति ही उत्तम माना गया है ।

जहां ऋषि नियोग करते थे वहां ऐसा मतलब था कि स्त्री अपने वर्णके अथवा उससे श्रेष्ठ वर्णके साथ नियोग करे, वही अच्छा समझा जाता था, परन्तु शायद कोई कहे कि तुम यह दश पतियोंका रगड़ा कहांसे ले आये ? तो इसका उत्तर यह है कि नियोगमें एक पीछे दूसरा पति किया जाता था । इसके अनेक उदाहरण शास्त्रों और इतिहासोंमें मिलते हैं । महाभारतके आदि पर्वमें द्रौपदीके स्वयंवरमें, व्यास और द्रौपदी तथा व्यास और युधिष्ठिरके बीचमें संवाद है उसमें द्रौपदीके पिताकी तरफसे पूछा गया है कि—'पांचों पाण्डव एक ही स्त्रीके साथ कैसे विवाह कर सकते हैं ?' युधिष्ठिरने इसका उत्तर ऐसा दिया है कि—यह कोई नई बात नहीं, ऐसे बहुतसे उदाहरण हैं । प्रचेतस के भाईके दशों पुत्र एक ही स्त्रीके पति थे फिर दूसरी वार सात एक ही पत्नीके पति ये । यह महाभारतका प्रमाण है, जिसको लोग "पांचवां वेद" मानते हैं । जब जीतेजी ५, ७, १० पतिके साथ एक स्त्रीके विवाह करनेके उदाहरण महाभारतमें हैं तो फिर नियोगमें एक दूसरेके पीछे थोड़े समयके लिये होवें तो उसमें क्या नवीनता है ?

पुराणमें पुनर्विवाह की आज्ञा

पद्मपुराण पातालखंडमें एक कथा है । उसमें लिखा है कि दिवोदास राजाकी

पुत्री दिव्या देवीका विवाह हो जानेके पश्चात् विवाहमण्डपमेंही उसके पतिका देवलोक हो गया। राजाने शास्त्रियोंसे पूछा कि—'अब क्या करना चाहिये ?' यद्यपि पुत्री का पाणिग्रहण हो गया था, तथापि शास्त्रियोंने पुनर्विवाहकी आज्ञा दी थी। २१, २१ बार स्वयंवर होनेकी कथा महाभारतमें है। एक कन्याका २१ वां पति अर्जुन हुआ था। बहुतसे हिन्दू शास्त्रियोंका मत है कि मनुके अनुसार पुनर्विवाह नहीं हो सकता है। विधवा दो प्रकारकी है, (१) जिसने केवल पति का हाथही पकड़ा हो, (२) जिसने संसार भोगा हो। इनमेंसे पहली मनुके मतानुसार पुनर्विवह कर सकती है, और दूसरी नियोग कर सकती है। मनु कहते हैं—

सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गताप्रत्यागताऽपि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥

मनु० ९। ७६

अर्थात् जो स्त्री पतिके यहां गई हो और जाकर आ गई हो परन्तु जो अक्षतयोनि हो और उसका पति मर गया होय तो उसका पुनर्विवाह होना चाहिये। इस विषयमें मनुके सातों टीकाकारोंका एकमत है। विशेषमें उनके एक राघवनन्द तो यहांतक कहते हैं कि श्लोककी पहली पंक्तिके अन्तमें 'वा' शब्द आनेसे ऐसा अर्थ होता हो, कि क्षतयोनि होनेपर भी उसका फिरसे विवाह होना चाहिये (जोरकी तालियां)

नियोग कब करना चाहिये ?

पतिके मरनेके पश्चात् ही नही परन्तु पतिकी जिन्दगीमें जो सन्तान न हो तो संततिके लिये शास्त्रमें नियोग करनेका विधान है, इस विषयको पण्डित लोग समझते नहीं हैं, इसीसे स्वयं धोखा खा जाते हैं और दूसरोंको भी भ्रममें डालते हैं। नियोग सन्तानके लिये है। परन्तु जो सन्तति होय फिर भी नियोग किया जाय तो मनु कहते हैं—

ज्येष्ठो यवीयसा भार्यां यवीयान्वाऽग्रजस्त्रियम् ।
पतितो भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥५८॥

आपत्कालके बिना यदि बड़ा भाईकी स्त्रीके साथ व छोटा भाई बड़े भाईकी स्त्रीके साथ नियोग करे तो वे पतित हो जाते हैं, परन्तु सन्तति न हो तो मनुने लिखा है कि—

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यक् नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥५९॥

अर्थ—संतानके अभावमें श्वसुर आदिसे आज्ञा लेकर स्त्री सपिण्डके साथ अथवा देवरके साथ नियोग करके, स्त्री इच्छित प्रजा प्राप्त करे ।

"देवरो कस्मात् द्वितीय वर उच्यते ?" अर्थात् देवर दूसरा वर कहलाता है । फिर मनुजी लिखते हैं—

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशिः ।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥६०॥

मनु० अ० ९ ॥

अर्थ—विधवा स्त्रीसे मातादिकी आज्ञा लेकर पुरुष रातको मौन होकर शरीर में घी लगाकर एक ही पुत्र उत्पन्न करे, दूसरा नहीं । इससे विदित है कि नियोग केवल प्रजोत्पत्तिके लिये है, विषयवासनाके लिये नहीं ।

रूढी विरुद्ध नियोग और पुनर्विवाह

आजकल नियोग और पुनर्विवाह, इससे कितनेही शास्त्रियोंको बुरा लगेगी । परन्तु हमको देखना चाहिये कि शास्त्रोंमें क्या लिखा है ? यदि विधवा विवाह शास्त्रसम्मत है तो यह बात रूढ़ी व रीतिविरुद्ध हो तो भी, मुझे वा आपलोगोंको माननी चाहिये । वैष्णवोंके शिरोमणि रंगाचार्यने 'दुर्जनकरिपचानन नामक अपने पुस्तकमें लिखा है कि विधवा विवाह (पुनर्लग्न) शास्त्रसम्मत है । सुधारक और

बहुतसे विद्वान् भी ऐसा ही कहते हैं, परन्तु कितने ही शास्त्री और आर्थोडाक्स लोग जो अकलका दखल नहीं रखते, (हंसी) वे ही इसके विरुद्ध हैं। शायद मेरा ऐसा कहना उनको बुरा लगेगा. परन्तु मैं वेदानुकूल कह रहा हूँ इसलिये उनको बुरा या भला लगनेका मुझे रत्ती भर भी ख्याल नहीं है (तालियां) नियोगका मतलब पुत्रोत्पत्ति है। यह सच्चे पवित्र ऋषियोंका ही काम था। पूर्ण जितेन्द्रियही इसके योग्य थे, परन्तु आजकल प्रजा विषयासक्तिमें विशेष प्रवृत्त है और जघन्य दरजेकी है, इसलिये उनको नियोग (कठिन) मुशकिल ही प्रतीत होता।

नियोग हुए महाभारत के उदाहरण

ऋषियोंके विनयोग करनेके अनेक उदाहरण महाभारतमें हैं। खुद महाभारत के कर्त्ता वेद व्यासने भीष्मपितामहको माता सत्यवतीकी आज्ञासे वंशनाश न होने देनेके लिये विचित्रवीर्यकी स्त्री अम्बालिका और चित्रवीर्यकी स्त्री अम्बाके साथ नियोग किया था। ये दोनों स्त्रियां काशीके राजाकी पुत्रियां थीं। नियोगके ही परिणामसे महान् नीतिकार विदुर उत्पन्न हुये थे। सत्यवतीने कहा था कि—कौरववंश नाश न हो, इसलिये हे व्यास ! तुमको नियोग करना पड़ेगा, क्योंकि भीष्म पितामहने कई कारण तथा राज्यके लिये ब्रह्मचर्य्यव्रत लिया है।' इसलिये व्यासजीने नियोग किया।

तारका पुनर्विवाह, लोगोंकी गप्प
रामके पहले रामायण

पुनर्विवाह सम्बन्धी रामायणमें एक कथा है। रामायणके सम्बन्धमें लोगोंमें ऐसी गप्प चल रही है कि रामके जन्मसे दस हजार वर्षसे पहले वाल्मीकिने रामायण लिखी थी, परन्तु स्वयं रामायणसे यह गप्प झूठी ठहरती है। रामायणके पहले अध्यायमें ऐसी कथा है, कि एक समय महर्षि वाल्मीकि बैठे थे, नारद मुनि इनको मिलने आये। वाल्मीकिने पूछा कि ऐसा कोई पुरुष बताओ जो सर्व गुण सम्पन्न हो, जो ईश्वरका भक्त, शूरवीर; पुरुषार्थी, परोपकारी हो; और

एक धर्मको मानने वाला होय। उसका जीवन चरित्र लिखने का मेरा विचार है। नारद ने कहा ऐसा पुरुष मिलना दुर्घट तो है, परन्तु वैसा एक ही पुरुष है, जिसको तुम्हारे कहने अनुसार मैं गुणवान् समझता हूँ। और वह दशरथका पुत्र रामचन्द्र है। (तालियाँ)। आपके कथित बहुत से गुण राममें घटते हैं। इसलिये उसका जीवन चरित्र शुरू करो। ऐसी ही एक गप्प व्यासजी के नियोग के विषयमें है कि उन्होंने नियोग नहीं किया था। किन्तु दृष्टि मात्र से ही पाण्डु आदि उत्पन्न हो गये। यह बात गप्प है। सृष्टिकर्म विरुद्ध रज वीर्य का संयोग हुये विना, प्रजोत्पत्ति नहीं हो सकती है। महाभारत में साफ लिखा है, कि उन्होंने नियोग किया था। मनु तो यहां तक लिखते हैं कि यद्यपि कितने ही लोग ऐसा मानते हैं, कि एक सन्तान होने तक ही नियोग करना चाहिये। परन्तु दूसरों का कहना है कि एक सन्तान काफी नहीं है, दूसरा लड़का भी होना चाहिये। क्योंकि एक मर जाय तो दूसरा काम दे। विशेष में मनुजी कहते हैं कि नियोग का मतलब सिद्ध हो जाने पर उस स्त्री को गुरु की स्त्री के समान समझना चाहिये।

नियोग से हुए पुत्रकी स्थिति

मनुजी ने बारह प्रकार के पुत्र बताये हैं।

"औरसः क्षेत्रजश्चैव"

इत्यादि। मनु० ६।१५९॥

प्रथम विवाहिता स्त्रीका पुत्र और नियोगवाली स्त्री का पुत्रक्षेत्रज होता है ऊपर के श्लोकों में मनुमहाराज कहते हैं कि "सिवाय पिताकी संपत्ति के, बापदादों की उपार्जित जायदाद में दूसरे दश पुत्रों का हिस्सा नहीं पहुँचता।' परन्तु उसमें क्षेत्रज और औरस को बराबर हिस्सा मिलता है।

नपुंसककी स्त्रीका नियोग

मनु महाराज कहते हैं कि जो कोई नपुंसक होय और सन्तति न हो तो

उसका भाई उसकी स्त्री के साथ नियोग करे और जो पुत्र नपुंसक की स्त्रीके नियोग से होवे, उसको उस नपुंसककी सम्पत्ति का दायभाग मिले।

मनुजी कहते हैं कि जो नियोग की विधि बतलाई है उसको छोड़कर और तरह से संसार का व्यवहार नहीं करना चाहिये। व्यभिचार से वर्णसंकर प्रजा उत्पन्न करना महापाप है।

क्या मनुजी नियोग का निषेध करते

मनुस्मृति के नियोग प्रकरण में यह नीचे का श्लोक आता है—

नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः।
अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम्॥

अ० ९।६४॥

मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट इस श्लोकका ऐसा अर्थ करते हैं कि द्विजोंको विधवा को नियोग नहीं करना चाहिये। परन्तु मनुका सबसे उत्तम टीकाकर मेधातिथि हैं। उसने मनु-स्मृति के श्लोकों की एकवाक्यता सर्वोत्तम रीति से की है। वे कहते हैं कि मनुजीकी नियोग के लिये पूर्ण सम्मति है। राघवानन्द कहते हैं "अन्योंसे" अन्ये से प्रयोजन पति के कुल से अन्य जगह नियोग करने का निषेध है। वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों के टीकाकार माधवाचार्य ने पराशर स्मृतिकी टीका लिखी है। अब वह सब जगह नहीं मिलती। उसमें यह श्लोक नहीं। परन्तु कलकत्ते की रायल एशियाटिक सोसाइटी की लायब्रेरी में है। उसमें इन श्लोकोंके अर्थमें लिखा है कि अन्यका मतलब अपने से नीची जाति है, जो पति से नीची जाति के साथ नियोग करे, तो सनातन धर्म नाश होता हैं। परन्तु अन्यका मतलब न समझने से शास्त्री लोगों ने धोखा खाया है। जो मनुजीको नियोग अनिष्ट था तो आगे चलकर उन्होंने लम्बाई के साथ क्यों प्रतिपादन किया, इतना ही नहीं बल्कि उसको नियमानुसार ठहराया। क्या वे ऐसे बुद्धिहीन थे कि उसी पृष्ट में दूसरी जगह अपने कहने के विरुद्ध अभिप्राय

देते ? क्या उन्होंने भांग पी थी ! (हँसी) जो मनुजीको नियोग अभीष्ट न होता तो मनुको माननेवाले व्यास, याज्ञवल्क्य नियोग का प्रतिपादन कैसा करते ? आगे चल कर स्वामीजी ने पुनर्विवाह और नियोग हिन्दू शास्त्रों के अनुकूल हो इस विषय में अनेक प्रमाण दिये थे।

पराशरका पुनर्विवाहसम्बन्धी श्लोक—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ।
चञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

"जो पति अदृश्य हो जाय, मर जाय, संन्यासी हो जाय, नपुंसक हो जाय, पतित हो जाय, तो इन पाँच आपत्तियों में स्त्री दूसरा पति कर ले' यह स्पष्ट है परन्तु उसमें प्रतिवाद किया जाता हैं कि "पतौ" शब्द व्याकरण की रीतिसे अशुद्ध है, पति शब्द का सप्तमी एकवचन में, पत्यौ होता है। परन्तु पाराशरीमें पतौ लिखा है, इससे कहा जाता है कि पतौ का अर्थ पति के समान आचरण करने वाले का है। "पति इव आचरति इति पतिः" अर्थात् "जिसकी सगाई हो गई हो, किन्तु विवाह न हुआ हो परन्तु यह वास्तविक नहीं है। पराशर का मतलब विवाहित पति ही होना चाहिये। प्रथम तो सगाई हुए की नपुंसकता की परीक्षा, बिना स्त्रीसंसर्ग के नहीं हो सकती है। परन्तु श्लोक में क्लीब शब्द आया है इससे स्पष्ट है कि स्त्रीपुरुष साथ साथ रहते होंगे और वे विवाहित भी अवश्य होंगे। फिर श्लोक में नारी शब्द है इसलिये कन्या नहीं हो सकती है, क्योंकि जबतक विवाह न हो, तबतक नारी हीं हो सकती है। क्योंकि शास्त्र में "नरस्य धर्मा नारी ऐसी व्यख्या की है। अब सवाल यह रहा है कि पत्यौ के बदले पतौका प्रयोग हो सके कि नहीं ? "पतिः समास एव" १-४-८ यह पाणिनि का सूत्र हैं, परन्तु जो छन्दव्याकरण के नियम से छन्द भंग होय तो, कभी २ व्याकरण का नियम एक किनारे धर दिया जाता है, इसी रीति के अनुसार रामायण में अनेक जगह पत्यौकी जगह पतौ आया है। छन्द भंग न हो

इसलिये हिन्दुओं के माननीय श्रीकृष्ण ने भी गीता के चौदहवें अध्याय के २३ वें श्लोक में "योऽवतिष्ठति नेगंतं" "अवतिष्ठतेके बदले अवतिष्ठति लिखा है।" व्याकरण में परस्मैपद और आत्मनेपद ऐसे दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं। इसके अनुसार अव के साथ स्थाधातुको आत्मनेपद का प्रत्यय लगना चाहिये, परन्तु पाणिनि की "समवप्रविभ्यः स्था" १-३-२२ के अनुसार करने से छंदभंग न होने के लिये अवतिष्ठति का प्रयोग किया है, इसमे कुछ श्लोक अशुद्ध नहीं होता है। पराशर में भी पत्यौके प्रयोग से छन्द का भंग होता, इसीलिये लाचार होकर पतौ लिखा है, अर्थात् पत्यौका ही होता है, यह निःसंशय है। बम्बई में अष्टादशस्मृति संग्रह नामकी एक पुस्तक छपी है। मैंने उसे पढ़ा है। पाराशर के ऊपर के श्लोक में 'विधीयते' है, परन्तु अष्टादशस्मृतिवालों ने अपनी मरजी से 'न विद्यते' ठोक दिया है (हंसी) कोई तो अर्थ में ही फेर करता है, परन्तु छापने वाले भले आदमी ने श्लोक ही पलट दिया है!

मनुस्मृतिमें से पुनर्निवाह सम्बन्धी एक श्लोक ही उड़ा दिया है

मनु का पुनर्विवाह के पक्ष में एक श्लोक पहले से मनुस्मृति में चला आता था, परन्तु पीछे से विधवा विवाह के विरोधियों ने उसमें से वह उड़ा दिया है। परन्तु कितनी ही मनुकी प्राचीन टीकाओं में वह श्लोक है, किन्तु उसमें पाठ भेद हैं। शंकर स्वामी ने भी वह श्लोक दिया है, उसमें और पराशर के श्लोक में भेद इतना है कि उसमें 'पतौ' की जगह 'तथा' है।

दूसरे प्राचीन ग्रन्थकारों ने मनुस्मृति में से यह श्लोक लेकर अपने ग्रन्थों में लिखा है और लिख दिया है कि यह 'मनुस्मृति का है'। परन्तु आजकल मनुस्मृति में नहीं दिखाई देता है। इससे जान पड़ता है कि वह उड़ा दिया गया है। वह श्लोक यह है—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते तथा ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधियते ॥ मनुः ॥

इस प्रकार 'पतौ' शब्द का शास्त्रीय रगड़ा हो 'तथा' शब्द के प्रयोग से निकाला गया। इससे मनुका पुनर्विवाह विधान स्पष्ट हो जाता है। शास्त्रियों की सब दलीलें नष्ट हो जाती हैं।

पुनर्विवाह के सम्बन्ध में राम की अनुमति

राम ने बालिको जब मार डाला, तब उसकी विधवा तारा ने जिसको हिन्दू लोग सती मानते हैं, उसके भाई सुग्रीव के साथ विवाह किया था। रामने किष्किन्धाकांड में सुग्रीव की बड़ी प्रशंसा की है। यदि राम सरीखे धर्मात्मा पुरुष सुग्रीव का विधवा के साथ विवाह पाप समझते, तो क्या वे उसके निकट जाते यह सम्भव है? रामचन्द्र विधवा विवाह को शास्त्रमर्यादानुकूल मानते होंगे, ऐसा इससे सिद्ध होता है। फिर आरण्यकांड में मारीच राक्षस ने सुवर्णमृग का रूप धारण किया था। सीता के कहने से राम उसके पीछे शिकार करने गये और रामके हाथों मरते २ मारीच ने "हे सीते! हे लक्ष्मण!" की झूठी पुकार की। सीता ने समझा कि हमारे पतिको कुछ हानि पहुँची, इसलिये उन्होंने जाकर लक्ष्मण से प्रार्थना की। इस विषय का सीता और लक्ष्मण के बीचमें सम्वाद चलता है और लक्ष्मण ने जब रामके भय से होनेकी असम्भावित ठहराई तब सीता ने कहा कि—तू "अपने भाई की आपत्ति में मुझे प्राप्त करने की इच्छा रखता है, परन्तु मैं तुझे नहीं मिलूंगी! देख, मैं अभी प्राण त्यागती हूँ"

प्राह लक्ष्मण दुर्बुद्धे भ्रातुर्व्यसनमिच्छसि ।
प्रेषितो भरतेनैव रामनाशभिकांक्षिणा ॥३३॥
मां नेतुमागतासि त्वं रामनाशे उपस्थिते ।
न प्राप्यसे त्वं मामद्य पश्य प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥३४॥

जो नियोग वा पुर्नविवाह की चाल राम के समय में नहीं होती तो सीता इस तरह न कहती। पीछे जब लक्ष्मण सीता के आग्रह से चले गये, तब रावण सीता को उठा ले गया। महाभारत में लिखा है कि वसिष्ठ ऋषि ने राजा सौदासकी स्त्री दमयन्ती के साथ नियोग किया था, इससे अक्षमक पुत्र पैदा हुआ था और दीर्घतमा ऋषिने बलीराजा की स्त्री सुदेष्णा के साथ नियोग किया था, यह बात महाभारत आदिपर्व १७६ अध्याय में है। पुत्र हो जाने पर दीर्घतमा अपने घर चला गया।

क्षत्रिय और परशुराम

परशुरामने क्षत्रियोंका वंशनाश किया थोड़े क्षत्रिय रह गये, इसलिये क्षत्रिय स्त्रियोंने ब्राह्मणोंके साथ नियोग किये थे, और हालमें क्षत्रिय लोग पाये जाते हैं, वे सब ब्राह्मणोंकी औलाद हैं। ऐसा महाभारतमें लिखा है। (तालियां

विधवा विवाह न होनेसे नुकसान

इस प्रकार "प्राचीनकालमें नियोग और पुनर्विवाहकी चाल उच्च जातियोंमें थी" यह मैंने संक्षेपसे सिद्ध किया है, परन्तु हालमें तो ६० वर्षका बूढ़ा मरनेकी आखिरी घड़ी सोनापुर (स्मशान) की लकड़ियोंमें दबता २ भी (हंसी) आठ वर्षकी कुवारी लड़कीसे विवाह कर सकता है, परन्तु बिचारी आठ बरसकी विधवा विवाह नहीं कर सकती है। यहाँ की तो मुझे खबर नहीं है, परन्तु उत्तर हिन्दुस्थानमें इस क्रूर बन्धनके कारण भागजाती है, और जो गुप्त लीलायें होती है, सो तो तुम जानते ही हो। इससे बाल हत्या भी होती है। हाय! यह कैसा अन्याय है! परन्तु पुनर्विवाह करके इस पापको रोकना शास्त्रीय नहीं है, यह कहना दुराग्रह और निर्दयता नहीं तो और क्या है? (तालियां)

हिन्दुओंमें पुनर्विवाहकी वृद्धि

हालमें हिन्दुओंमें पुनर्विवाह होता ही नहीं, यह बात नहीं। मैं छाती ठोकके कहता हूँ कि अब भी कई एक देशोंके सारस्वत ब्राह्मणोंमें पुनर्विवाह

होते हैं। (जोरकी तालियां)। कौन कहेगा कि—"वे ब्राह्मण नहीं हैं?" क्षत्रियों लुवानोंमें भी पुनर्विवाह होते हैं, तब उनको कौन कहेगा कि—"वे क्षत्रिय नहीं हैं" विहारमें एक प्रकारके वैश्योंमें भी ऐसा ही होता है, तब कौन कहेगा कि—"वे वैश्य नहीं हैं"। शूद्रोंमें तो ऐसा है ही, पर कितने एक द्विज ही निषेधके आग्रही हैं। ठेठ रामके समयमें पुनर्विवाहकी चाल थी, सो तो मैंने बता दिया। शायद कोई कहे कि "पुनर्विवाह करनेवाला सुग्रीव तो बन्दर था" परन्तु यह बात असत्य है। वे कपड़े पहनते थे, बोलते थे। यदि बन्दर होते तो कैसे बोलते चालते? वे जंगली स्थितिमें थे। यह उनकी बैठनेकी रीतिसे सिद्ध होता है।

पुनर्विवाह से जहर पिलानेका डर

पिछली मनुष्यगणनाके अनुसार इस इलाकेमें लगभग दश लाख आदमी घट गये हैं, जिसमें हिन्दू विशेष हैं। हिन्दुस्तानकी मनुष्यवृद्धि चाहे उतनी नहीं बढ़ी, इससे देशको बड़ी हानि हुई है। मैं नम्रतापूर्वक कहता हूँ कि स्त्रियोंको न्यायानुसार पुनर्विवाह करनेकी छूट नहीं दी तो निश्चय कहता हूं, कि—"अभी इससे भी बुरे दिन आवेंगे, और तुम्हारे बुरे हाल होंगे।" कितनेही लोग कहते हैं कि—"दूसरा पति करने दिया जाय तो अपने वर्त्तमान पतिको जहर देकर पुनर्विवाह करेगी।" परन्तु विचारी स्त्रियां ऐसी कोमल है कि वे ऐसा काम नहीं कर सकतीं। अदालतोंके मुकद्दमोंको देखो, तो मालूम होगा कि, सौ पुरुषोंमें भी एक स्त्री नहीं होती है। (जोरकी तालियां)। कुनबी वगैरा और अंगरेजोंमें पुनर्विवाह होते हैं। परन्तु क्या उनमें जहर देनेके कोई उदाहरण हैं? (तालियां)। पारसियोंके विषयमें मुझे मालूम नहीं है, (एक पारसी गृहस्थ उनमें भी रिवाज है।) ऐसा कहा जाता है तो क्या दूसरे पतिके लिये किसी स्त्रीने प्रथम पतिको जहर दिया है? वे बेचारी स्वभावसे दयालु होती हैं। उनका नाम ही अबला है, वे ऐसे दुष्कृत्य कभी करही नहीं सकती है (तालियां)। तुम जो दुःखी होतो अपने कर्मोंके फलसे, परन्तु ईश्वर तो न्यायी और दयालु

है। मैं विधवाविवाहका पक्ष करता हूं, इससे आपको यह न समझना चाहिये कि मेरे कोई विधवा पुत्री है, कि जिसका मैं विवाह करना चाहता हूं (बड़ी हंसी। परन्तु नियोग और पुनर्विवाह वेद और सृष्टिक्रमके अनुकूल हैं ! इसलिये मैं उनका पक्ष लेता हूं (तालियां और ध्वनि)।

धर्मसभाकी ओरसे अन्तिम व्याख्यान

ता० २८ अगस्त १९०२

ब्रह्मचारी श्री रामेश्वरानन्दजीकी सभाकी ओरसे स्वामी श्री नित्यानन्दजीने दिये हुये व्याख्यानोंमेंका अन्तिम व्याख्यान कल ६॥ बजे गेइटी थियेटरमें ओनरेबल सर भालचन्द्र कृष्णके प्रधानपदमें दिया था। थियेटर ३ बजेही स्त्री पुरुषोंसे भर गया था प्रारम्भमें डा० पोपट प्रभुरामने कहा कि निश्चित किये हुये समयसे आधे घटेकी देर हुई है इसलिये क्षमा चाहता हूं। धर्मसभाकी ओरसे स्वामीजीका आज अन्तिम व्याख्यान है। स्वामीजीने धर्मसभाके लिये अत्यन्त श्रम किया है। स्वामीजीके प्रारंभके व्याख्यान को लेकर आज तकके व्याख्यानों पर बहुत चर्चा हुई है।

स्वामीजी को प्रत्येक प्रश्नोंके सम्पूर्ण उत्तर देनेके लिये अब समय नहीं रहा। धर्म सभा का उद्देश्य यह है कि—"हिन्दूधर्म के शास्त्रों में से धर्म के वास्तविक स्वरूप का संशोधन करना। इस सभा का उद्देश्य दूसरों को बुरा भला मनाने या कहने का नहीं हैं। ब्रह्मचारी रामेश्वरानन्दजी का भी यही हेतु है। स्वामी नित्यानन्दजी के व्याख्यानों में से यदि सत्य का ग्रहण किया जायगा तो जनसमाज को उससे अधिक लाभ होगा। आज जिस विषय पर स्वामीजी बोलने वाले हैं, उसमें जैन धर्म का भी कुछ अंश है। परन्तु कई जैनबन्धुओं की इच्छा इससे विरुद्ध पाकर मैंने स्वामीजी से प्रार्थनाकी है कि—"वे जैन धर्म सम्बन्धी अधिक चर्चा नहीं करेंगे वा उस विषय को छोड़ देंगे।"

यहाँ जैनधर्मसम्बन्धी ऐसी चर्चा जिससे किसी को बुरा लगे करनेकी न थी, तो भी जैनों की खास प्रार्थना से अब उस सम्बन्धी कुछ भी नहीं कहा जायेगा।

स्वामी श्री नित्यानन्दजी, ब्र० श्रीरामेश्वरानन्दजी तथा सभासदों की ऐसी इच्छा है कि तुम सब अपने २ धर्म में आनन्द से रहो। परन्तु सत्यासत्य समझने और धर्मका रहस्य जानने के लिये प्रयत्न करो। स्वामीजी ने अपने श्रमके बदले में कोई भी प्रकार की भेंट लेने का इनकार किया है। इससे उनकी सेवा में एक प्रशंसापत्र अर्पण करने की मैं प्रार्थना करता हूँ। यह अभिनन्दन पत्र लेख सुवर्ण-अक्षरों में छपवाया था और उसमें ब्र० रामेश्वरानन्दजी की तसवीर भी थी। लेख हिन्दी भाषा में था।

सर भालचन्द्र ने कहा कि माधवबाग की सभा में अन्याय पण्डितों के व्याख्यान आपने सुने हैं। स्वामी नित्यानन्दजी ने भी दो तीन विषय सम्बन्धी अपने विचार अनेक प्रमाणों के साथ प्रगट किये हैं। उसका धर्मसभा के विचारों के साथ एक पुस्तक छपवाया गया। भारत में अनेक मतमतान्तर होने के कारण और हर एक के मन्तव्य भी भिन्न २ होने से सबको सन्तोष देना असम्भव है। स्वामी जी ने जो श्रम लिया है, इसके लिये सबकी ओर से मैं उनका अभार मानता हूँ।

स्वामी श्रीनित्यानन्द जी अपने व्याख्यानका प्रारम्भ करते हुये कहा कि २६ प्रश्नों में से बाकी रहे हुये विषयों पर आज विचार करने का है। दश विषयों पर बोलने के लिये आधा घंटा मात्र हैं जो हरेक विषय में कुछ कहने के लिये कम से कम २॥ से ३ घन्टे चाहिये। परन्तु केवल आधाही घंटा रहने से मैं केवल अपना मत ही दे सकूंगा। आप जानते हैं कि जो विषय स्पष्टता से प्रतिपादन किये हैं वे साररूप ही कहे गये हैं। यदि इन्हीं विषयों पर मुझे लिखने का हो तो अनेक प्रमाण दलीलें और रहस्य प्रगट करने की आवश्यकता है, परन्तु व्याख्यानों में केवल भावार्थ ही स्पष्ट किया गया है। आजकल जो चर्चा हो रही है उसमें मैं केवल इतना ही कहूँगा कि—"जिसको धर्म का विचार करना हो उसको धर्मात्मा होना चाहिये अर्थात् काम, क्रोध, राग द्वेष इत्यादि से दूर रहकर निष्पक्ष होकर विचार करना चाहिये।" सहनशीलता की भी उतनी ही

जरूरत है। गर्म-मिजाज रखने से कोई भी कार्य नहीं होता। और प्रयत्न भी निकम्मा निष्फल जाता है। हमारे धर्म में वा कौम में यदि कोई महात्मा हो तो उसका अनुकरण करना चाहिये। महात्मा सम्बन्धी दृष्टान्त देते हुए स्वामीजी ने स्वामी श्रीशंकराचार्य जी, स्वामी श्रीदयानन्द सरस्वती, गुरु गोविन्द सिंह जी, मरहूम मि० ग्लेडस्टन, महाराणी विक्टोरिया, मि० दादाभाई, मि० ताता, नामदार जज मि० बद्रुद्दीन इत्यादि के दृष्टान्त दिये थे।

स्वामीजी ने अपने आजके विषय को प्रतिपादन करते हुये कहा कि छः शास्त्रों का आपस में विरोध नहीं है। स्वामीजी ने अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया कि एक शास्त्र दूसरे शास्त्रका पुष्टिकर्त्ता है। स्वामी जी को अपने विषय सम्बन्धी बहुत कुछ कहना था, परन्तु समय न रहने से अन्य प्रश्नों सम्बन्धी आज अधिक कुछ न कह सके। अन्त में स्वामीजी ने कहा कि मेरे व्याख्यानों में मैंने कुछ भी पक्षपात वा स्वार्थ नहीं रक्खा है, तो भी किसी को बुरा लगा हो तो मैं क्षमा चाहता हूँ।

गौतम बुद्ध ने क्षमासम्बन्धी एक दृष्टान्त अपने शिष्यों को दिया था, वह मुझे अभी याद आ गया है। एक समय काशी के राजा ने अयोध्या का राज्य ले लिया और वहाँ के राजा, रानी और राजपुत्र को मरवा डालने के लिये हिंसकों के साथ वन में भेज दिया। राजा ने आगे से अपने पुत्रको यह उपदेश कर रक्खा था, कि—"यदि तू जीता रहे तो बैरका बदला वैर से न लेकर प्रीति से लेना। क्योंकि अग्नि अग्नि से शान्त नहीं होता। जलसे ही शान्त होती है।" राजपुत्र ने इस अमूल्य उपदेश का उपयोग यहाँतक किया कि वह काशी के राजा का प्यारा बन गया। एक दिन राजा अपना शिर उसकी गोद में रखकर सोया था, तब उसको अपने बैरका स्मरण आया और उसको मारने के लिये उद्यत हुआ। उतने में अपने पिता के शब्द उसको याद आ गये और उसने राजा के मारने का संकल्प छोड़ दिया, और अपनी दुष्ट इच्छा राजा को प्रकट की। बुद्ध ने इस दृष्टान्तको देते हुए कहा कि जब क्षत्रियों में इतनी दया रही हुई है तब आप जैसे

साधुओं में कितनी सहनशीलता होनी चाहिये। गौतम बुद्ध का यह दृष्टान्त ध्यान में लेकर मैं मेरे पर की गई टीकाओं (आक्षेपों) से बुरा न मानकर उनको उतनी ही प्रीति से चाहता हूँ।

व्याख्यान पूरा होने पर धर्म सभा और श्रोताओं की तरफ से स्वामीजीका पुष्पमालादि से बहुत ही धूम धाम के साथ सत्कार किया गया। इस समय धर्म सभा की तरफ से स्वामी जी को कुछ रुपये भेट करने का प्रबन्ध किया गया था, परन्तु स्वामी जीने धन्यवाद पूर्वक उसको अस्वीकार किया। इसके पश्चात् स्वामी जी के सम्मान के लिये नगर के प्रतिष्ठित सज्जनों की तरफ से चार घोड़ोंकी गाड़ी सुसज्जित की गयी।

यद्यपि बहुत से सज्जनों का आग्रह था कि बम्बई के मुख्य २ बाजारों से स्वामी जी का प्रोसेशन निकाला जाय, परन्तु ऐसा करना भी स्वामीजी ने अस्वीकार किया और चुप चाप चार घोड़ों की गाड़ी में बैठकर अपने निवास स्थान (सेठ जयनारायण जी दानी का बंगला) को चले गये।

जितना कुछ व्यवहार संसार में है, उसका अधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता, तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहाँ से हो सकते ? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वह निन्दनीय है, और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है, जब स्त्री और पुरुष दोनो परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञात हों। इसलिए गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

११

संस्कृत भाषा की आवश्यकता।

हम सबको मानना पड़ेगा कि संस्कृत भाषामें अपूर्व गौरव है, परन्तु उसमें मुख्य न्यूनता उसकी कठिनता है। भाषाका मुख्य हेतु ऐसा होना चाहिये कि सूक्ष्मसे सूक्ष्म, व्यापकसे व्यापक और स्थूलसे स्थूल विचार भी स्पष्टतासे अनर्थक वा द्व्यर्थक हुए विना सूक्ष्मतासे वक्ता श्रोताको दर्शा सके। प्राचीन संस्कृत विद्या चाहे ऐसी हो, परन्तु ये सब गुण वर्त्तमान समयमें संस्कृत भाषामें नहीं दीखते। खास करके आज्ञावाचक शास्त्रोंको उपरोक्त गुणोंसे युक्त होना चाहिये। परन्तु शोक का विषय यही हैं कि शास्त्रोंकी भाषाका ही अनर्थ और अर्थान्तर द्विअर्थ हो सकता है। हिन्दुओंके धर्मका आज कोई ठिकाना नहीं है, इसका कारण भी यही है कि प्रत्येक आचार्यने अपने २ स्वार्थके अनुसार अर्थ किये हैं। वस्तुतः शास्त्रोंका अर्थ विद्या और बुद्धि के अनुकूल किया जाय तो द्विअर्थ होनेका कुछ सम्भव नहीं है। परन्तु हिन्दुओंकी एक विचित्र मान्यता ऐसी है कि शास्त्र-सम्बन्धमें वे मनुष्यबुद्धको निकम्मी मानते है। मानो जैसे शास्त्रकर्त्ताओंने अपनी बुद्धि शास्त्र बनाते समय कोई कोनेमें रक्खी हो और उन्होंने ऐसी आज्ञा दी हो कि—"हमारे शास्त्र पढ़ते समय अकलको कोने में रखना!"

इस तरहसे सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेसे पता लगता है कि संस्कृत भाषाके शास्त्र यद्यपि द्वि-अर्थी हैं तो उसमें दोष भाषाका नहीं है, किन्तु पढ़नेवालोंकी बुद्धिका ही है। स्वाभाविक बात यह है कि जो शब्द शास्त्र लिखनेवालोंने सैकड़ों वर्ष पहले लिखे हों वे उस युगके संयोगोंको ध्यानमें रखकर लिखे होने चाहिये और उन संयोगोंको ध्यानमें रखकर उसके अर्थ भी वर्त्तमान समयमें करने चाहियें। वर्त्तमान समयके शास्त्री ऐसा करते नहीं हैं और इसीसे जो बुद्धियुक्त और पदार्थों के विद्यायुक्त अर्थ कहते हैं उनके और शास्त्रियोंके बीचमें अर्थोंके सम्बन्धमें भिन्न

मत हो जाता है। संस्कृत व्याकरणमें समाससे भी अनेक अर्थ होनेका सम्भव रहता है, परन्तु जैसे स्वामीजीने दिखलाया कि व्याकरणके नियम ध्यानमें न रखनेसेही अनेक अर्थ होते हैं और इस तरहसे संस्कृतसे अनभिज्ञ लोग संस्कृत भाषाको मोमके जैसी नरम और उसका जैसे अर्थ करो तैसा हो सकता है ऐसा कह कर दोष लगाते हैं। वर्त्तमान समयके अंग्रेजी भाषाके लेख सैकड़ों वर्षके पश्चात् शब्दोंके अर्थ समयके परिवर्त्तन होनेके पश्चात् अर्थ किये जाय तो वे भी उसी तरहसे द्वि अर्थी होनेका सम्भव रहेगा। वर्त्तमान समयके कायदे कानून उनके अर्थ या द्विअर्थ न होसकें इसलिये बहुत ध्यानसे बनानेमें आते हैं। धारा शास्त्री भी अपने स्वार्थकी कोई बात आने पर उसका किस प्रकार अर्थ करनेका प्रयत्न करते हैं सो सबको ज्ञात है, परन्तु इससे अंग्रेजी भाषामें दोष है ऐसा नहीं माना जाता। ऐसा ही संस्कृतके सम्बन्धमें है ऐसा स्वामीजीने कहा था। आगे बढ़कर स्वामीजीने कहा कि आर्यावर्तसम्बन्धी प्राचीन उपयोगी विषय और विद्याओंका संशोधनके लिये संस्कृत भाषाकी अति आवश्यकता है। संस्कृत व्याकरणसम्बन्धी स्वामीजीने एक शब्द दिखलाकर कहा कि इसमें कई ठकोसले अर्थात् निरर्थक सूक्ष्मतायें है। तिङन्त (क्रियापद) प्रकरणके बहुतसे नियम परस्मैपद और आत्मनेपद सेट् और अनिट्, संप्रसारण धातुओंके दशरूप जैसे कि भ्वादि, अनादि तुदादि अदादि जुहोत्यादि सात प्रकार के कृदन्त Aorist इत्यादिमें जो अनेक सूक्ष्म विभाग नियमोपनियम और अपवाद आते हैं वे मेरे विचारानुसार बहुतसे उनमें निकम्मे हैं। उनको याद करनेमें विद्यार्थियोंकी आधी अकल और समय मारी जाती है। उससे भाषाकी सरलता जो भाषा का मुख्य भूषण है कम हो जाता है। किसी प्रकारके वाकचातुर्यसे उसकी (भाषाकी) उपयोगिता सिद्ध नहीं हो सकती। संस्कृतलिपि उत्तम होनेसे वह भाषा उत्तम सिद्ध नहीं होसकती। उसका श्रेष्ठत्व सिद्ध करनेके लिये इतना कहना पर्याप्त नहीं कि वह सर्व भाषाओं की माता है क्योंकि पुत्री मातासे भी अधिक लावण्यवती हो सकती है। संस्कृतमें धातुके अनेक रूपोंका होना खटपट है, परन्तु वह केवल संस्कृतमें ही नहीं किन्तु ग्रीक लेटिन आदि सर्व भाषाओंकी यही स्थिति हैं। हरेक भाषामें अनियमित

रूप होते ही हैं। कारण यह है कि भाषा कोई यन्त्र में बनी नहीं। परन्तु मि० जान स्टुअर्ट मिलके तर्कशास्त्र नामक पुस्तकके कथनानुसार अनेक मकान एक स्थानपर बननेसे जैसे रास्ता अपने आप बनजाता है। वैसेही भाषाका बननेका प्रकार है। मि० मिलके "Necessity of a Chilorophical Language नामके पुस्तकमें प्रगल्भ विचार प्रकट करनेके लिये भाषा में क्या २ गुण होने चाहिये वह लिखा हैं। वे गुण संस्कृत भाषामें प्रायः अधिकतर देखनेमें आते हैं। खासकरके संस्कृत समासपद्धति ठीक होनेसे वह भाषा अन्य भाषाओंसे सब प्रकार श्रेष्ठ है। यद्यपि भाषा शास्त्रका वेत्ता इस विषयमें प्रमाणभूत माना जाता है तो भी हम अपने अनुभवसे इतना अवश्य कहेंगे कि संस्कृत भाषा सर्वोत्तम है, अति उपयुक्त है और उस भाषाके प्रचारकी, खास करके इस देशके लिये अतीव आवश्यकता है। इतिशम्।

●

स्वायंभुव राजा से लेकर पाण्डव-पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्त्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये। क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी अन्यायकारी अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। और यह संसार की स्वभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है, तब आलस्य पुरुषार्थरहितता ईर्ष्या-द्वेष विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं। जैसे कि मद्यमांस-सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

१२

संसारकी विचित्र गति ।

ता० १५ । १२ । १९०२

"स्वर्गवासी सेठ जेठाभाई प्रेमजी स्मारक व्याख्यान माला" का प्रथम व्याख्यान स्वामी श्रीनित्यानन्दजी महाराजने १४-१२-१९०२ को "आर्यसमाज मन्दिर बम्बई" में दिया था। व्याख्यान के समय श्रोताओं की इतनी अधिक उपस्थिति हुई थी कि उन्हें मन्दिरमें खड़े रहनेके लिये भी जगह न थी।

प्रथम आर्य समाज के प्रधान जीवन दास दयालदासजी ने स्वर्ग वासी सेठ जेठाभाई प्रेम जी के ३००० तीन हजार के दान के विषय में कुछ विवेचना की; फिर स्वामी जी ने नियमानुसार ईश्वरस्तुति करके व्याख्यान प्रारम्भ किया—

यह संसार कभी एकरस नहीं रहा और न रहता है, इस लिये इस संसार को विचित्र कहा जाता है और इसी कारण विद्वान् लोग इसे सागर या नाटक की उपमा देते हैं।

जन्म होते समय मनुष्यको "वह कहाँ से आया है ?" इस बात का ध्यान नहीं रहता है। सब प्राणियों में मनुष्य योनि श्रेष्ठ गिनी जाती है और वास्तव में है भी ऐसा ही; परन्तु सैकड़ों मनुष्य कहाने वालों में मनुष्य नामको सार्थक करनेवाला एक भी मनुष्य कठिनता से मिलता है। प्राणी दो तरह के होते हैं एक हिंसक और दूसरे अहिंसक। हिंसक अपनी आवश्यकता से भी अधिक हानि करते हैं। भेड़िये की एक बकरी से तृप्ति हो सकती है, परन्तु वह किसी के बाड़े में घुस कर व्यर्थ अनेक बकरियोंका घात करता है। संसार में भेड़िये जैसे भी मनुष्य होते हैं। मनुष्य जो कर्म करता है, उससे उसकी परीक्षा होती है। संसार में जन्म पाकर कोई भी अपराध न किया हो और जिसने बचपन में बिना गिरे ही चलना सीख लिया हो। ऐसा मनुष्य मिलना कठिन है। मनुष्यमात्र में परिमित

शक्ति है, मनुष्य भूलते हैं और ठोकरें खाते हैं। इन विघ्नों से मनुष्यको रुक न जाना चाहिये किन्तु कर्मयोगी बनकर योग्य होते जाना चाहिये। केवल वे ही मनुष्य, मनुष्य कहलाने के योग्य हैं, जो विघ्नों के आने पर भी कार्यक्षेत्र में डटे ही रहते हैं।

तदनन्तर स्वामी जी ने "व्याख्यानमाला" के प्रयोजक स्वर्गवासी मि० जेठाभाई प्रेम जी की प्रशंसा की।

स्वर्गवासी उक्त सेठ साहब ने १५००० रुपये कन्यापाठशाला को ३००० रुपये काशी पाठशाला को और (अपने परिवार के लिये ५००० सहस्र मात्र रखकर) शेष श्रीस्वामी दयानन्द कृत 'सत्यार्थप्रकाश' का गुजराती भाषान्तर करवाके कम कीमत में बेचने के निमित्त देने के लिये अपने 'मृत्यु पत्र' में आदेश किया है। उन्होंने मुझ से दश व्याख्यान देने के लिये आग्रह किया था। यद्यपि इसके लिये मेरे पास समय नहीं है, तथापि उनके मृत्यु पत्र के ट्रस्टियों (संरक्षकों) के विशेष आग्रह से मैंने व्याख्यान देना प्रारम्भ किया है।

कवियों ने संसार की विचित्रता पर अनेक काव्य लिखे हैं। मनुष्य को कई २ भांति के ज्ञान होने का अभिमान होता है, परन्तु वस्तुतः वह छोटी २ बातों को भी नहीं जानता, ऐसा देखा गया है। यदि उसने वनस्पति शास्त्र का उत्तम प्रकार अध्ययन नहीं किया हो तो वह पुष्पकी पंखुड़ियों की बाहरी खूबसूरती के सिवा उसके संगठन के विषय में कुछ भी नहीं कह सकता। "हाउस वाइफ" सीरीज के एक पुस्तक में मैंने एक बात पढ़ी है। उसमें उसका लेखक कहता है कि, मैं जब दश वर्षका था, तब अपनी रक्षिका से पूछता था कि, दीपक की ज्योति बुझकर कहाँ गई? वह मुझको कुछ उत्तर न दे सकती थी। गेहूँ कहाँ से उत्पन्न हुआ यह प्रश्न भी मैंने बाल्यावस्था में किया था, परन्तु आजतक मेरी शंका का समाधान नहीं हुआ। विद्युत का ज्ञान आजतक भी अपूर्ण है। अधिक क्या कहा जाय' अपने आपको भी तो हम नहीं समझते! आत्मा सम्बन्ध में

कई मन्तव्य है। सायन्टीफिक विषय सिद्ध होने से समझ सकते हैं परन्तु फिलासोफी की बात केवल बुद्धिगम्य होने से दिमाग फिर जाता है। एक फूल को उठाकर "मेरे हाथ में यह फूल है" इसका निरूपण सायंस से सहज में हो सकेगा, परन्तु फिलासोफीकी दृष्टि से (एक पंखे को उठाकर) "यह पंखा है" ऐसा सिद्ध करना भी कठिन होगा। कई (शंकराचार्यादिक) कहते हैं कि "सृष्टि में जो कुछ है, वह कल्पना मात्र ही है। हर्यर्ट स्पेन्सर कहता है 'कि पदार्थों की उत्क्रान्ति और अवक्रान्ति होती है, परन्तु सृष्टि कल्पनामात्र नहीं।'" जब साकार पदार्थों में इतना विवाद होता है, तो निराकार की तो बात ही क्या? और हम अपने को उस विषय में अज्ञानी समझें उसमें क्या आश्चर्य! इसलिये संसार की प्रथम विचित्रता तो यह है कि हम—आप क्या हैं सो भी हम नहीं जानते।

"पोलीटीकल इकोनोमी' (अर्थशास्त्र) में जिससे अपना अर्थ सिद्ध हो उसको धन कहा है। नोटका दश वा दश हजार मूल्य है, वह कृत्रिम है। नोटों के प्रभाव का कारण राज-सत्ता का धर्म है। संसार में सबसे श्रेष्ठ साहूकार (महाजन) सरकार है। उसपर विश्वास होने से अथवा उसका अधिकार होने से कम कीमत के रुपये का और निकम्मे कागज के नोट का पूरा मूल्य होता है। उसी प्रकार पीतल के टुकड़े की मूर्ति बना; उसपर चन्दन लगा लोग उसको त्रिलोकीनाथ मानते है; यह भाव भी कृत्रिम है। कल्पना करो कि, मूर्तिकार उस पीतलकी मूर्ति को बेचता है तो उसकी कीमत पीतल के भाव के अनुसार ही होगी, यह मूर्ति की कीमत कल्पित है। इस संसार में अन्ध विश्वास, भाव और कृत्रिमता से जो वास्तविक मूल्य से कई गुणा अधिक मूल्य बढ़ जाता है यह संसार की द्वितीय विचित्रता है।

एक मनुष्य मूर्तिपूजनार्थ एक पैसे की शर्करा (चीनी मोल लेता है, पंसारी का शर्करा की परीक्षा न होने से पंसारी उसको फिटकरी दे देता है, पूर्ण श्रद्धा से उसका नैवेद्य बनता है, परन्तु जब वह मनुष्य उसे पूर्ण भाव से (शर्करा समझकर) प्रसाद के प्रयोजन से मुँह में रखता है उसे शर्करा का स्वाद आता

नहीं है। भैंस के आगे भागवतकी कथाकरनी निरर्थक है, परन्तु यदि विचार किया तो इसी से सत्य और असत्य भावना की सुस्पष्ट परीक्षा हो जाती है! लोग रूढ़ि के आधीन होकर जिस अन्धपरम्परा को मानते आये उसी को मान रहे हैं। परन्तु सत्या सत्य का निर्णय परीक्षा से हो जाता है। जैसे सब पुराणों में लिखा है कि पृथिवीका वृत्त (परिधी) पचास क्रोड़ योजन है। परन्तु ज्योतिष शास्त्र में लिखा है कि वह पचीस हजार माइल है!" इन दोनों में झूठा कौन? पौराणिक या ज्योतिष, जब तक जांच न की जावे तबतक कुछ न बन पड़ेगा यदि तर्क से सिद्ध हो जाय कि वह पचीस हजार मील है तो फिर व्यासजी तो क्या, परन्तु व्यासजीके पिता क्यों न कहें कि "पचास हजार योजन (दो, अब्ज मील) है" किन्तु वह मानना अनुचित होगा। यहाँ यह भी प्रकट कर देना आवश्यक है कि वस्तुतः पुराणों के कर्त्ता व्यास नहीं है।

आगे चलकर स्वामीजी ने 'सिद्धान्त शिरोमणि' नामक ग्रन्थ के कुछ प्रमाण और उनके अर्थ करके समझाये।

भास्कराचार्य कहते हैं कि द्वितीया के दिन चन्द्र जी शृङ्गयुक्त अर्ध वृत्ताकार शिरा जो किसी समय न्यूनाधिक होती है, उसका कारण सूर्य का प्रकाश चन्द्र पर पड़ना ही है। यदि पृथिवी की परिधि भागवतादि पुराणों के अनुसार दो अब्ज मील होती तो ग्रहण ही न हो सकता! पुराण में लिखा है कि "पृथिवी के बीच में मेरु पर्वत है और उस मेरु के चारों ओर सूर्य घूमता है' परन्तु भास्कराचार्य के कथन से सिद्ध होता है कि सूर्य उत्तरायण और दक्षिणायन होता है। इससे भी पुराणों की बातें झूठी समझी जाती है, कई मनुष्य अपने धर्मानुसार दो सूर्य मानते है। यद्यपि अनेक भांति सिद्ध हो चुका है, कि पृथ्वीपर सूर्य एक है, तथापि वे कहते हैं कि दो सूर्यों का होना तो भगवान् स्वयं कहा है। क्या वह मिथ्या हो सकता?' "हम प्रत्यक्ष देखते हैं सो असत्य हो सकता है, परन्तु हमारे पोथाजी की बात कैसे असत्य होगी?,' ऐसी अन्धश्रद्धा रखना यह भी संसार की एक विचित्रता है।

आकाशकी माप कोई नहीं कर सकता, संस्कृत में उसको अनन्त कहा है कई ऐसी बातें हैं जिनको हम देख नहीं सकते; वे केवल बुद्धिगम्य है। परन्तु इससे जिसकी परीक्षा हो सके उसकी कुछ भी परीक्षा करने की जो बान (आदत) पड़ गई है, वह बहुत बुरी है।

फिर स्वामी जी ने अन्धविश्वास से कैसे २ अनर्थ होते हैं सो विदित कराने के लिये अनेक रोचक दृष्टान्त दिये और भर्तृहरिका एक सार्थ श्लोक कहकर बतलाया :—

"भतृहरि कहते हैं कि जब मैं पिंगला के आधीन हो गया अर्थात् कामके वश हो गया तो मुझे अन्धेरी रात में कोई वृद्ध मिल जाता तो वह भी मुझे स्त्री भान होता, परन्तु अब मुझे सब जगह ब्रह्मही ब्रह्म दीखता है।" यदि आपको प्रकृतिका सौन्दर्य देखना हो तो आप कालिदास के काव्य देखो। उन काव्यादिकों से "सत्य भावना किसमें रखनी" सो आपको ज्ञात होगा। कीट-पतंग के सदृश और हमारे सदृश अनेक हैं, परन्तु रामचन्द्र समान महानुभाव कम हुये हैं। फिर हमारे भाव विचित्र हों तो इसमें आश्चर्य क्या? जैसे सबके उच्चारण में भिन्नता होती है, वैसे ही सबके मनोगत भावों में भी भेद होता है। पिता और पति स्त्रीको प्रेम से देखते हैं, परन्तु उनके भावों में अन्तर होता है, इसका एक दृष्टान्त मैं दूंगा।

एक मांसाहारी अफगान मुझे मिला। उसने मुझसे कहा कि "भला ऐसा कोई मनुष्य हो सकता है जो मांस न खाता हो?" मैंने कहा हां! ऐसे कोई मनुष्य हैं। इसपर उसने कहा अल्लाह! अल्लाह!! कोई भी मनुष्य मांस न खाता हो क्या यह सम्भव है? वस्तुतः बात तो यह है कि कई मनुष्य जब मांसको अमृत मानते हैं तब कई उसे मलसे भी अधिक भ्रष्ट समझते हैं। त्यागीको यह सुनकर आश्चर्य होता है कि स्त्री मनचकित करने वाली है। परन्तु दूसरी ओर विषयीको स्त्रीसे मन चलित नहीं होता। ऐसा सुनकर त्यागीके समान आश्चर्य होता है। संसार की विचित्रता इससे अधिक क्या हो सकती है? भर्तृहरिजी

कहते हैं कि "पतंगकी दीपकमें और मधुमक्षिकाकी गुड़में मृत्यु होगी" यह बात न जाननेसे वे दीपकादिमें गिरते हैं। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि मेरी मृत्यु होगी पर तो भी दूसरेका धन हरण करनेमें तत्पर रहता है। हिन्दके ब्राह्मण मरे हुए का भी धन लेते हैं, तो ऐसे समयमें वास्तविक मार्ग कहांसे मालूम हो। जादूगरीकी बनावट असत्य है ऐसा जानते हुए भी लोग मार्गमें तमाशा देखनेके लिये खड़े रह जाते हैं, मनुष्य कुछ ऐसे ही विचित्र तत्वोंसे भरा हुआ प्रत्येक मनुष्य क्षण-भंगुर प्रवृत्तिमें इसी उपमाके साथ फंसता है। इसीसे स्वात्माका सूक्ष्मतासे ज्ञान नहीं हो सकता। कायदे कानूनकी सूक्ष्मता वकील लोग दिखलावेंगे, परन्तु उससे ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान मिलता नहीं है। कई थोड़ा बहुत प्रयत्न करके मि० ब्रेडलोकी तरह छोड़ देते हैं। रोटी खानेसे भूख मिटती है, उसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञानके मिलने से मनकी क्षुधा नष्ट हो, तब जानना कि सत्य ज्ञान हुआ। परंतु वर्त्तमान समयमें लोगोंको वैसे सुअवसर प्राप्त नहीं होते। किन्तु वैसे आत्मिक और ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक मनुष्यको प्रयत्न करना चाहिये। आजका व्याख्यान आगे होनेवाले व्याख्यानोंकी मानो भूमिका है इस वास्ते मैं अधिक न कहूँगा। परन्तु अन्तमें संसारकी विचित्रतासे इतना ही ग्रहण करनेकी प्रार्थना करूंगा कि कि आप अन्धश्रद्धा न रखते हुए जो कुछ सिद्धांत की परीक्षा हो अर्थात् जो कुछ सत्य ठहरे उसीको ग्रहण करेंगे।

प्रमुखने दर्शाया कि कई लोग ज्ञातिभोजनादिमें बहुत धन व्यय करते हैं, परन्तु स्वर्गवासी सेठ जेठाभाईने अपने धनको अन्धपरम्परामें खर्च न करके सत्य धर्मके प्रचारार्थ खर्च करनेकी व्यवस्था की है, यह प्रशंसाकी बात है। इत्यादि २।

★

१३

आर्यसमाज क्या है ?

ता० १६ दिसम्बर १९०२

आर्य समाज के सम्बन्ध में कई द्वेषी, ने लोगों को बहका दिया है जिससे उससे अनभिज्ञ लोग समाज से दूर भागते हैं। आर्य समाज सम्बन्धी जो २ अच्छी बातें हैं, उनको छिपाकर उसे बदनाम करते हैं। स्वामी दयानन्दजी प्रथम संस्कृत में प्रचार करते थे, परन्तु उस समय अन्यमतवाले पण्डित उनके कथन का उलटा अर्थ करके लोगों को समझाते थे। इससे उन्हें भी संस्कृत छोड़ कर हिन्दी में प्रचार करना पड़ा। इसी तरह आर्य समाज सम्बन्धी अन्याय होता हुआ देखकर आर्य समाज क्या है यह कहने की आवश्यकता है। कई लोग कहते हैं कि आर्य समाजी ईसाई जैसे हैं। दूसरी तरह के भी अनर्थ हुए हैं, उन्हें टालने की आवश्यकता है।

प्रत्येक प्रकार के प्राणियों का स्वभाव ऐसा है कि अपनी जाति के अन्य प्राणियों के साथ मिलकर काम करना। जब पशुओंमें ऐसे संस्कार देखे जाते हैं तब उससे उच्च पंक्ति धारण करने वाले मनुष्यों में ऐसे संस्कार हों इसमें आश्चर्य ही क्या ? एक मनुष्य की अपेक्षा यदि कई मनुष्य साथ मिलकर कार्य प्रारम्भ करें तो वह कार्य शीघ्र होता है, इसी तरह समाजी लोग मिलकर कार्य करें तो बहुत उत्तम कार्य कर सकते हैं। परन्तु जब उन्हीं समाजियों में विचार का स्थान विकार ले लेता है, तब उनकी अवस्था बुरी होती है। इतिहासों में देखने से अच्छी तरह ज्ञात होगा कि भिन्न २ समाजों के नाश होने का कारण उनमें विचारों की जगह विकारों की अधिकता हो गई यही था। वर्तमान समय में जो आर्यसमाज की स्थापना हुई है; वह भी हिन्दू सोसाइटी है और उसका नाम मैं आर्यसमाज रक्खूंगा, क्योंकि हिन्दू शब्द संस्कृत नहीं किन्तु फारसी है, आज-

कल हिन्दू शब्द में भी विरोध चलता है और उसकी ओरसबका मन आकर्षित रहा है। सामाजिक दशा ऐसी बिगड़ती हुई है कि एक हिन्दू पर अन्याय होता हुआ देखकर भी दूसरा हिन्दू आँख कान बन्द करके चला जाता है। ऐसे कारणों से हमें उसे समाज कहते भी लज्जा आती है। क्योंकि समाज में एकता का अभाव है इससे जानवर (पशु) अच्छे हैं। एक समय मैं जंगल में भ्रमण कर रहा था, उस समय मैंने एक बन्दर को वृक्ष के ऊपर चढ़ता देखा। वह आधे वृक्ष पर तो चढ़ गया, परन्तु आगे न जासका पीछे जो उसने देखा तो एक दो कुत्ते पीछे लगे हुए थे। न वह ऊपर चढ़ सकता था और न नीचे उतर सकता था। उसने वहाँ किलकारना आरम्भ किया, उसकी आवाज सुनते ही दूसरे दस पाँच बन्दर वहाँ आ पहुँचे और कुत्तों को भगा कर उन्होंने उस बन्दर को बचा लिया। ऐसी एकता प्राणियों में भी देखी जाती है, परन्तु मनुष्यों में इससे विपरीत ही दशा देखी जाती है। अन्तिम सात सौ वर्ष में सात कोटि हिन्दू मुसलमान हो गये, परन्तु उन्हें रोकने के लिये हिन्दुओंने कुछ भी नहीं किया। अब भी दो सौ वर्ष में कितने ही हिन्दू ईसाई हो गये यह आप सब जानते हैं। तो भी रोकने का कुछ प्रयत्न न हुआ। इस प्रकार एकता की न्यूनता से भारत को अत्यन्त हानि हुई। परन्तु इस हानि से बचाने के लिये स्वामी दयानन्द ने ही केवल अपना कर्तव्य बजाया है। वेद शास्त्रों के सम्बन्ध में जो २ अनर्थ उत्पन्न किये गये थे, उनकी पोल प्रकट करने में उन्होंने बहुत कष्ट उठाये और अपना यह अभीष्ट प्रसिद्ध करने के लिये आर्य समाजों की भी स्थापना की. आर्यसमाजों को जो उच्च स्थिति में रखने का हेतु स्वामी दयानन्द जी का था वह अभीतक सिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि कई हिन्दू उसमें निकम्मी न्यूनताओं को देख उससे लाभ उठाना नहीं जानते। आर्य समाजों की ओर से वेदों की आज्ञा के अनुसार ही काम किया जाता है। यदि कोई सभासद वेद व आर्य समाज की आज्ञानुसार काम न करें तो उसमें समाज का दोष नहीं है, संसार की भिन्न २ आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये नाना प्रकार के समाजों की जरूरत है और इसी कारण भिन्न २ व्यापार करने वालों ने समाजें स्थापित की हैं। इस तरह

समाजों के बढ़ जाने से जातिभेद उत्पन्न हुआ। देशमें जो २ भिन्नतायें प्रगट हुई हैं उन्हें मिटाकर लोगों को वास्तविक सत्यमार्ग पर ले जाना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है।

आर्यसमाज का प्रथमोद्देश यह है कि ईश्वर के सत्यस्वरूप को समझना कि वह सच्चिदानन्द स्वरूप निराकार है। स्वामी दयानन्द जी ने भी अपना यही प्रथम कर्तव्य माना था। यदि ईश्वर को निराकार के स्थान पर साकार माना जाय तो फिर उसके भी बनानेवाले की आवश्यकता है। कई ऐसा भी कहने को तैयार हैं कि ईश्वर अपने निराकार स्वरूप में साकार हुआ, परन्तु यह असम्भव है क्योंकि प्रत्येक पदार्थ में जो गुण होते हैं उससे विपरीत गुण उसमें रह नहीं सकते। कई ऐसा भी कहते हैं कि यदि ईश्वर निराकार है तो उसने जगत् व सूर्य इत्यादि को कैसे बनाया ? ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। वह सर्वशक्तिमान् है अतएव उसे किसी वस्तु को बनाने के लिये हाथ पैरों की आवश्यकता नहीं है। यदि पीसी हुई सूक्ष्मचीनी में बालू मिला दी जाय और किसी विद्वान् रसायन शास्त्री से चीनी तथा बालू को पृथक् २ करने को कहा जाय तो वह कर नहीं सकता। परन्तु एक पिपीलिका (चींटी) इनमें से चीनी निकालकर खा जायगी। इसका कारण यही है कि उसका मुख (मुँह) अतिसूक्ष्म होने से वह चीनी को खा सकती है। उसी तरह से आप विचार कर देखोगे तो ज्ञात होगा कि दुनियाँ के सर्व स्थूल पदार्थों का मूल स्वरूप अतिसूक्ष्म है। उस सूक्ष्म स्वरूप को साकार तो नहीं पकड़ सकेगा। इसी प्रकार यदि ईश्वर साकार हो तो सूक्ष्म पदार्थों में से पृथ्वी सूर्य आदिको कैसे प्रकट कर सकता ? परन्तु वह सर्वशक्तिमान् होने से निराकार अवस्था में ही सब सृष्टि को बना सकता है। ईश्वर न्यायकारी और दयालु भी है। क्योंकि ईश्वर कभी अन्याय नहीं कर सकता। उसको न्यायी समझने में दयालु शब्द बहुतों को भ्रांति उत्पन्न करता है कि यदि वह दयालु हो तो पापियों को शिक्षा नहीं कर सकेगा। यदि वह योग्य शिक्षा करे तो वही दयालु कैसे माना जाय ? परन्तु वास्तविक बात यह है कि ईश्वर जो न्याय करता

है, वह इस दुनियाँ के न्यायाधीश की तरह वेतन अर्थात् किसी फलको प्राप्त करने के लिये नहीं करता है, केवल निष्काम अर्थात् अपना कुछ भी स्वार्थ रखे विना न्याय देता हैं। यही उसकी दया है। जैसे महात्मा वा सच्चे साधु अपनाबुरा करने वाले बुरा चाहनेवाले वा निन्दा करनेवाले का भी भला ही चाहते हैं। उसी तरह से ईश्वर भी है। ईश्वर अजन्मा और अनन्त है। इससे वह जन्म या अवतार नहीं ले सकता। इस तरह से ईश्वर के सत्य स्वरूपका जतलाना आर्य समाज का उद्देश्य है। अनर्थों को प्रगटकर सत्य अर्थों का प्रतिपादन करना, वेदशास्त्रों का सत्यार्थ समझाना, उसका अभ्यास करना; आर्यसमाज का दूसरा उद्देश है। पुरुषों ने वेद सम्बन्धी बहुत अनर्थ किये हैं। इसलिये उनके सत्यार्थ समझाने आवश्यकता है। आर्य समाज या हिन्दू समाज में कुछ भी फर्क नहीं है। भेद केवल इतना ही है कि, भारतवर्ष के सब धर्म जो वेदशास्त्रों का आधार रखते हैं उन वेदों का सत्यार्थ करके लोगों को समझाने का धर्म यदि कोई समाज समझता है तो वह केवल आर्यसमाज ही है। वेदों के मन्त्रों के जो अनर्थ किये गये हैं उन्हें पकड़े कई पण्डित व महात्मा अन्धे की तरह बैठे रहते हैं। परन्तु अपनी आँखें खोल सत्यार्थ जानने का प्रयत्न नहीं करते, आर्यसमाजी बैठे नहीं रहते। वे वेद का गुप्त रहस्य देखते हैं और उसका प्रचार करते हैं। आर्यसमाज मानता है कि, वेद सत्य है और उसका (पढ़ना) अभ्यास करना हमारा परम धर्म है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदके जो २ अर्थ किये उसकी परीक्षा करके आर्यसमाज ने उन २ अर्थों को ग्रहण किया है। और वैसे ही दूसरों को समझाने के लिये तैयार है। और वे यदि असत्य हों तो छोड़ने के लिये उद्यत हैं।" स्वामीजी ने दृष्टान्तों से आर्यसमाज के अन्य हेतुओं पर भी विवेचन किया था। आर्यसमाज सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझता है। इस विषय पर व्याख्यान देते हुए कहा कि इसका अर्थ कि स्वार्थ को छोड़ सबकी भलाई में मन लगाना है। मनुष्यको अपनी उन्नति से ही सन्तुष्ट न होना चाहिये परन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। मैं जबतक आर्यसमाजी न था उसको बुरा मानता था। परन्तु सद्भाग्य से मैं ने जब उसका रहस्य समझा

तब ज्ञात हुआ कि आर्यसमाज केवल सत्यका ही प्रचार करना चाहता है और उसमें किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं है। अन्तमें मैं यही चाहता हूँ कि आप भी इस समाज के हेतुओं का रहस्य समझ लो और जब आपको विश्वास हो जाय कि समाज शुभ कर्म करने के लिये स्थापित किया गया है तो अवश्य उसकी तन मन धन से सहायता करो और यह भी ध्यान में रक्खो कि कुछ भी देखे बिना निन्दा न करना।

व्याख्यान समाप्त होने पर प्रधान ने विवेचन किया और स्वर्गवासीजेठाभाई के पिता आज की सभा में उपस्थित थे उन्हें धन्यवाद दिया गया।

१४

ईश्वरावतार

ता० १८।१२।१९०२

प्रारम्भमें समाजके प्रमुख मि० जगजीवनदासकी प्रार्थनासे वैद्यशास्त्री मणिशंकर गोविन्दजीने कुछ विवेचन किया। उन्होंने कहा कि बम्बईमें अनेक प्रकारके उपदेशक अन्यान्य कारणोंसे आकर अज्ञानी लोगोंको बहकाते हैं और इसलिये शोक प्रदर्शित किया। प्रमुख स्थान वेद प्रचारिणी सभाके पण्डित श्रीनान् बालकृष्णजीको दिया था। स्वामीजीने अपना व्याख्यान प्रारम्भ करते कहा कि मुझे अवतारसे वा आर्यसमाजसे द्वेष नहीं है। आर्यसमाज जो सिद्धान्त मानता है वह केवल स्वार्थके लिये नहीं परन्तु परोपकारके लिये मानता है। जो कोई आर्यसमाजी बनता है उसको अरथोडाक्स गाली देते हैं। समाजके सभासद होनेसे उसको अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं परन्तु सत्यका माहात्म्य विलक्षण है। जो निर-

पराधी है उसको सैकड़ों मनुष्य अपराधी कहनेपर वे डरते नहीं हैं। और जो वास्तविक अपराधी है यदि उसे सैकड़ों मनुष्य निरपराधी भी कहें परन्तु उसका अन्तःकरण नहीं मानता। तारीफ या निन्दासे, थरमामेटरका पारा जैसे जाड़ा या गर्मीसे ऊपरनीचे जाता है आर्यसमाजियोंको भी उसी तरह उत्साह रहित न होना चाहिये। सत्यका प्रचार करते समय अखबारवाले वा लोग कुछ भी कहें उनकी परवाह न करके अपना काम करते रहना चाहिये। अन्तमें सत्यकी जय होगी। राम या कृष्णके साथ मुझे द्वेष नहीं है, प्रत्युत उन्हें मैं आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ और राम या कृष्णको खुद ईश्वर माननेवालों की अपेक्षा मैं कृष्णको अनेक सद्गुणयुक्त मानता हूँ।

इस संसारकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयकी कर्त्री जो महती शक्ति है वह परमात्मा है। उसका प्रत्यक्ष ज्ञानयोगियोंको ही होता है और लौकिक विद्वानोंको उसका अनुमानसे ज्ञान होता है। शास्त्राभ्यास करनेवालोंको उसका शाब्दिक ज्ञान होता है। वर्त्तमान समयमें जो ईश्वर प्राप्त करनेके साधन दिखलाये जाते हैं वे वेदवेदांतसे विरुद्ध हैं। वर्तमान समयमें मूर्तिपूजा ईश्वर प्राप्ति का प्रथम साधन माना जाता है और मुझे मूर्तियोंके साथ कुछ राग द्वेष नहीं है। क्योंकि मूर्तियोंने आज तक मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं किया है। आर्यसमाज मूर्तिपूजाका खण्डन करता है, इस कारण उससे कई लोग दूर रहते हैं। वस्तुतः मूर्तिपूजा का खण्डन आर्यसमाज नहीं परन्तु मूर्तिपूजक स्वयं ही करते हैं। दिवालीके दिनोंमें मूर्तिको स्वच्छ करनेके लिये खटाई इत्यादिसे रगड़ २ कर साफ करते हैं और ऐसा करते समय मूर्तिटूट भी जाती है। आर्यसमाजी मूर्त्तिको छूते तक नहीं तो फिर वे खण्डन करते है ऐसा क्यों कहा जाय ? आर्यसमाजियोंने कभी एक भी मूर्ति नहीं तोड़ीहै, मूर्तिका वास्तविक खण्डन तो उसके पुजारीही करते हैं। ईश्वर प्राप्त करनेका साधन मूर्तिपूजा नहीं किन्तु ज्ञान और श्रवण है। वेदमें ईश्वरको नित्य, अजन्मा और अनामय कहा है।

स्वामीजीने यहाँ अनेक प्रमाण वेदके दिये थे और ईश्वरका अवतार हो नहीं सकता ऐसा सिद्ध किया था। ब्रह्मकी सर्वव्यापकताके लिये एकही उपमा है

और वह आकाश है। अब जो पोलमें आकाश है वह क्या यहांसे दूर जा सकेगा? वेद पर सबसे अधिक आक्षेप करने वाले जैन हैं। वे कहते हैं कि, जब तुम ईश्वरको सर्वव्यापक मानते हो तो वह चल फिर सकता है वा नहीं? यदि नहीं चल सकता तो क्रिया कैसे कर सकता होगा। मैं उनको उत्तर दूंगा कि वस्तुतः ईश्वरमें क्रिया नहीं है, परन्तु जैसे आकर्षण शक्ति अपने निजरूपमें रहते हुये भी असर करती है, उसी तरहसे ईश्वर भी असर करता है। विष्णुके चार हाथ हैं वे बैकुण्ठमें रहते हैं। उनकी स्त्रीका नाम लक्ष्मी है तथा जय और विजय नामके द्वारपाल हैं। यह सब पौराणिक बातें आप सब जानते हो, इसलिये कहनेकी जरूरत नहीं है। यदि अमेरिकामें मैं व्याख्यान देता तो मुझे ये बातें विस्तारसे कहनी पड़ती। ऐसा कहनेका भावार्थ यह है कि अवतार माननेवाले भगवान्‌को एक स्थानमें बैठा हुआ मानते हैं। *अवतार शब्द 'तृ' धातुसे निकला है और अव उपसर्गसे उसका अर्थ उतरनेवाला* होता है। अब जो ईश्वरको सर्वव्यापक मानते हैं वे उसको ऊपरसे उतर कर देवकीके गर्भमें गया ऐसा कभी नहीं मानेंगे। क्योंकि उतर वही सकता है, जो नीचेको न हो। चारों वेदोंमें अवतार शब्दतक नहीं है।

मैंने चारों वेद ध्यानसे देखे हैं, उनमें ईश्वरके अवतारोंकेलिये एक शब्द भी नहीं है। ज्यादह क्या कहा जाय? कई हिन्दू कहते हैं कि तुम स्त्रीको ग्यारह पति करनेके लिये कहते हो, परंतु यह हमारा कथन नहीं है। पुराणमें विद्या देवीने २१ वार पुनर्लग्न किया ऐसा लिखा है। युधिष्ठिरने अनेक पति होनेके दृष्टान्त द्रुपद राजाको सुनाये थे। द्रौपदीके पांच पति थे। तब शास्त्रोंको छिपाकर आर्य-समाजको नियोगके असत्य अर्थ करनेवाला कहना क्या दुष्कर्म नहीं है? पुराणमें यह कथा है कि पृथ्वीपर राक्षसों ने देवोंको अति कष्ट दिया है जिससे वे विष्णु के पास गये और पृथ्वीने गौका रूप धारण किया। उसकी प्रार्थना सुन विष्णु ने अपनी मूंछके दो बाल दिये जिनमें एक काला था और दूसरा श्वेत। काला बाल देवकीके गर्भमें गया और उसमें कृष्ण उत्पन्न हुये और श्वेत बालसे बलभद्र हुये। यही बात अनेक पुराणोंमें है। उनमें कहा है कि, कृष्ण विष्णु की मूंछके काले

बालका अवतार है। परन्तु पीछेसे उसे चन्द्रकी सोलह कलाका अवतार कहा है। यह आपसमें कैसा विरोध है! भागवतकी योग्यता इससे जाती रहती है। कई अवतारको गवर्नर जनरलकी उपमा देते हुए कहते हैं कि जैसे गवर्नर जनरल जेलमें जाता है और कैदी भी जेलमें जाते हैं। वैसे ईश्वर भी तब स्वेच्छासे कैदीकी भलाई के लिये कारागृहमें जाता है जब कि जीव देहरूपी बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता, अब जन्मकी थ्यूरीमें हिन्दू क्या मानते हैं। कर्मके अनुसार उत्तम और निकृष्ट शरीर न्यायी ईश्वर देता है। वेदांतका ऐसा अपूर्व दृढ़ सिद्धान्त है कि कर्मके बिना जन्म होती ही नहीं। तब ईश्वरने क्या कर्म किया कि उसको जन्म धारण करनेकी जरूरत हुई। अपने कर्मसे जो कारागृहमें पड़ता है वह अपनी इच्छासे बाहर नहीं निकल सकता। राम स्वयं ही अपने कर्मके लिये क्या कहते हैं। स्वामीजीने रामायणके श्लोकों के अर्थ दिखलाके कहा कि जब लंकामें लक्ष्मण मूर्छित हुये और हनुमान् औषधी लेने गये थे, उस समय श्रीरामचन्द्रजी अपने मूर्छित भ्राताका शरीर गोदमें लेकर विलाप करते हुये कहते है कि हे देव! मैंने पूर्व जन्ममें बहुत अपराध किये हैं, जिससे ऐसे दुःख उठाने पड़ते हैं इत्यादि। यह बात वाल्मिकीने लिखी है। उत्तर हिन्दुस्थानमें तुलसी कृत रामायणका प्रचार अधिक है और कईयोंका पाण्डित्य उसमेंही समाप्त हो जाता है। उसमें भी राम कहते हैं कि मेरे कर्मोंका फल कोई भी मिथ्या नहीं कर सकता। इससे सिद्ध होता है कि गवर्नर जनरल स्वेच्छासे जेलमें जाते हैं। रामादि स्वेच्छासे देहरूपी बन्धन में नहीं गये थे। परन्तु जो कैदीकी तरह कारागृहमें जाते हैं, कैदीके कपड़े पहिनते हैं और काम भी करते हैं। राम और कृष्णने भी दुनियामें जन्म पाकर कैदी रूप मनुष्यकी तरह बर्ताव किया है। तो फिर उनको गवर्नर जनरलकी उपमा देना मिथ्या हैं। क्या गवर्नर जनरल कैदीके कपड़े पहिनते हैं? क्या कैदीका काम करते हैं? इससे सिद्ध होता है कि, यह दृष्टान्त भ्रमयुक्त है अतएव धोखा देने-वाला है यह संसार बन्धन हैं ऐसा कहना भी उतना ही हानि कारक हैं।

वैष्णव भक्त कहते हैं कि वेदों से गीता श्रेष्ठ है, परन्तु स्वयं शंकर और कृष्ण भी वेद को श्रेष्ठ समझते हैं। अब गीता और वेद में विरोध हो तो गीता का

प्रमाण असत्य और वेद का सत्य ही मानना पड़ेगा। गीता में सब मन्तव्य हैं। रामानुज, वैष्णव, शैव, द्वैत, अद्वैत, भक्ति, ज्ञान सबका उसमें थोड़ा २ प्रतिपादन है। गीता एक खिचड़ी हैं। एक समय एक गवैया मूसल कपड़े में लपेट एक राजा के पास गया? और कपड़े में छिपाया हुआ मूसल दिखाकर कहने लगा कि यह संयुक्त बाजा है। यह अन्यान्य प्रकारके बाजों के साथ ही बजता है। राजा ने गवैयोंको बुलाया, तब वह नया गवैया भी मूसल को अंगुलियों को लगाकर बजाता हो ऐसा स्वांग करने लगा। राजाने कहा अब उसको बजाने दो। तब गवैयाने कहा कि यह तो संयुक्त बाजा है, अकेला नहीं बजेगा। यह साथ ही बजता है। चाहे आप बजा देखें। इसी तरह से गीता का भी है। गीता का प्रमाण स्वयं कुछ प्रतिपादन नहीं करता, परन्तु दूसरे के साथ जैसा चाहो वैसा बजा लो। मैं इसमें गीता का कोई दोष है ऐसा नहीं कहता, परन्तु वह स्वतः प्रमाण नहीं मानी जाती। "यदा यदा हि धर्मस्य" इत्यादि जो श्लोक हैं, वह वेदान्तदृष्टि से ठीक है। वेदान्त के अनुसार सब पदार्थ ब्रह्म है। तो पीछे कृष्ण ने क्या पाप किया कि वह ब्रह्म नहीं? इस श्लोक का ऐसा अर्थ होता है कि, कृष्ण मुक्तात्मा योगी होनेसे अपनी इच्छा के अनुसार जन्म पाने को कहते हैं। मुक्तात्मा योगी ईश्वर की ओर से ईश्वर की तरह ही उपदेश कर सकते हैं ऐसा भी कह सकते हैं परन्तु कृष्ण स्वयं अपने आपको ईश्वर कहें, ऐसे अज्ञानी हो यह असम्भव है। फिर ईश्वरके २४ अवतार कहें हैं! क्या वे सब भारत में ही हुये? अन्य देशों में अवतार क्यों न हुये? उन देशों ने क्या पाप किये? भारत में प्राचीन समय में अवतार हुये, अब क्यों नहीं होते हैं? जब अधर्म बहुत होता है तब धर्म का स्थापन करने के लिये अवतार होते हैं ऐसा कहा जाता है। वर्तमान समय में युधिष्ठिर इत्यादिके समय से दुःख अधिक हैं। एक गाय भी मरती न थी तो भी उस समय अनेक अवतार हुये और वर्तमान समय में जबकि लाखों गायें मारी जाती हैं तब ईश्वर अवतार क्यों नहीं लेता? भागवतकर्ताने ईश्वर के कृष्णावतार पर अनेक कलंक लगाये हैं। उसने मक्खन की चोरी की ऐसा कहकर फिर उसको महात्मा कहना यह ऐसा है कि मानो हमारे गुरु थोड़ी

शराब पीते हैं ऐसा कबूल करना और कहना कि वे एक बोतल पीते हैं परन्तु नशा नहीं चढ़ता। ऐसी दलील देकर फिर उसे महात्मा कहने के समान है। कृष्णपर महाभारत में दोषारोपण किया है। मृत्यु वश पड़े हुये दुर्योधन को मरा हुआ जानकर कृष्ण ने उसपर पैर रख "दुष्ट मर गया है ऐसा कहकर जाते हैं। उतने में दुर्योधन सचेत होकर कहता है मैं दुष्ट हूँ वा तू दुष्ट है यह सुन" ऐसा कहकर कृष्ण की दुष्टता सुनाता है। यह सुनकर कृष्ण लज्जित हुये और दुर्योधन पर देवोंने पुष्प वृष्टि की। महाभारत में कृष्ण के ऊपर थोड़े बहुत सच्चे झूठे दोष लगाये हैं परन्तु भागवतकर्ता ने कुछ भी कमी नहीं रक्खी। रामचन्द्र के ऊपर दो तीन कलंक हैं। मेरे मन्तव्यानुसार कृष्ण और रामचन्द्र की अपेक्षा भरत अधिक धार्मिक थे। क्योंकि उनपर किसी ने कलंक नहीं लगाया।

मेरा अपना विचार ऐसा है कि कृष्ण महात्मा प्रथम श्रेणी के राजद्वारी (डेप्लोमंटीस्ट) थे और वे ग्लेडस्टन और प्रिन्सबिस्मार्कको अपने पाकेट में रक्खें ऐसे थे। परन्तु उनमें राजद्वारी ही कुशलता केवल न थी वे विद्वान् भी ऐसे ही थे। वे वास्तविक श्रेष्ट थे। वे अर्जुन को कहते हैं कि, जिस तरह से मैं करता हूँ, उसी तरह से अन्य भी करें इसलिये मुझे सच्चा वर्ताव करना चाहिये। कृष्ण के ही युक्त कथनों से सिद्ध होता है कि वे रासलीला तथा गोपलीला जैसी क्रिया करने वाले नहीं थे, वे योगी थे। जो रसिक है और व्यभिचार को चाहते हैं उन्होंने कृष्ण के ऊपर आक्षेप रक्खें हैं। जो शराब पीना चाहते हैं वे देवी के नाम से पीते हैं। यह एक शराब पीने की और देवों के नाम से अपने आपको निर्दोष ठहराने की दुष्ट युक्ति है। कृष्ण के ईश्वर होने से उन्हें अनेक स्त्री भोक्तृत्व दोष नहीं लगाता है। ऐसा कहना बुद्धिमान् योग्य नहीं समझेंगे। यदि माना जाय कि योग्य है, तो भी उससे वे अपराधी हुये। कृष्ण राम इत्यादि महात्मा थे। उनको ईश्वर माननेवाले ईश्वर के गुण जानते नहीं है। रामने रावण को ही मारने के लिये अवतार लिया हो तो रावण को मारकर फिर क्यों रहे? रावण को मारने के लिये जन्म धारण की क्या आवश्यकता थी?

क्या वे रावण में व्यापक न थे ? क्या रावण को एक क्षण में मारने की उनमें शक्ति न थी ? अवतार के नाम से उनपर अनेक दोष लगाये हैं। पुराणों में अवतारों की विचित्र बातों का वर्णन बहुत है। समय हो गया है इसलिये मैं अन्त में यही कहूँगा। कि ईश्वर शरीर रहित निराकार, सर्वव्यापक, नित्य, सर्व शक्तिमान् और अजन्मा है। उसने मनुष्य, पशु, मछली इत्यादि का अवतार लिया ऐसा कहना उस परमात्मा के महान् गुणों को भूल जाना है। प्रत्यक्ष युक्ति और प्रमाण से विरुद्ध हैं। इसलिये मैं आशा करता हूँ कि आप किसी मनुष्य को ईश्वर के बदले में न पूजेंगे और उस निराकार परमात्माको ही ज्ञानपूर्वक भक्ति से पूजेगें।

——

प्रश्न—हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है। परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण कर राम-कृष्णादि अवतार लिए, इससे उसकी मूर्ति बनती है। क्या यह भी बात झूठी है ?

उत्तर—हाँ-हाँ झूठी। क्योंकि 'अज एकपात्' 'अकायम इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म-मरण और शरीर-धारण-रहित वेदों में कहा है। तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक अनन्त और सुख-दुःख इत्यादि गुण-रहित हैं, वह एक छोटे से वीर्य गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आ सकता है ? आता-जाता वह है कि जो एक-देशीय हो। और जो अचल अदृश्य, जिसके बिना एक परमाणु भी खाली नहीं है, उसका अवतार कहना जानो वन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

१५

मूर्तिपूजा वैदिक तथा युक्तिसिद्ध नहीं है।

स्वामी श्रीनित्यानन्दजी ने इस विषय पर एक प्रभावशाली तथा प्रमाणों से भरा हुआ व्याख्यान ता० २१-१-१९५५ शनिवार के दिन दिया था। उस समय प्रधान का स्थान जस्टिस चन्दावर कर को दिया गया था। श्रोताओं से हाल बिल्कुल भरा हुआ था। आरम्भ में स्वामीजी ने कहा मेरा आज का विषय आप लोगों को विज्ञापन द्वारा जतला दिया गया है। इस विषय पर कुछ कहने से पहिले "मनुष्य किसको कहते हैं" सो हमको जानना चाहिये "मत्वाकर्माणि करोति इति मनुष्यः" विचार करके बुद्धिपूर्वक जो कार्य करे उसको मनुष्य कहते हैं। इस व्याख्या के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को धर्म के कार्यों में शान्ति तथा बुद्धि पूर्वक हरेक विषय पर ध्यान देना चाहिये। परन्तु लोग इस विषय में आजकल जितनी गड़बड़ करते हैं उतनी किसी साधारण विषय में भी नहीं करते "जानस्टुअर्टमिल" चार प्रकार के मनुष्य बतलाते हैं (१) अपने मन्तव्य विरुद्ध कोई कुछ कहे तो उसको तुरन्त मारने के लिये खड़े होनेवाले। (२) अपने मन्तव्य विरुद्ध कुछ सुनकर भागनेवाले। अपने मन्तव्य विरुद्ध सुनकर वाद-विवाद करने के लिये खड़े होनेवाले (४) अपने मन्तव्य विरुद्ध सुनकर शान्ति पूर्वक उसपर विचार करने वाले। इनमें से चतुर्थ पंक्ति के मनुष्य श्रेष्ठ कहलाते हैं। इसलिये मैं आपसे विनती करता हूँ कि, आजका विषय आप लोग रागद्वेष छोड़कर सुनें क्योंकि जहाँ रागद्वेष तथा आग्रह रहते हैं वहाँ से धर्म हजारों कोस दूर रहता है। इसलिये यदि जो कुछ अपने को ठीक न जान पड़े तो प्रमुख की आज्ञानुसार निर्भय होकर बोलना चाहिये। मुझे शोक के साथ कहना पड़ता है कि यह विषय ऐसा है कि, इसका जैसा जंगली मसला और कोई न होगा। क्योंकि हमारे पूर्वजों को यह ख्याल न था कि, भविष्यत् में हमारी संतति ऐसी

गच्चार होगी कि ईश्वर के स्थान में पत्थर, घास आदि पदार्थों को पूजने लगेगी। यदि आप वेद तथा उपनिषदादि सत्य शास्त्रों को पढ़ें तो मालूम होगा कि कहाँ तो पूर्वजोंका निराकार ब्रह्म का ज्ञान और कहाँ मूर्तिपूजा ?

इस विषय को समझाने के लिये मैं आपको एक दृष्टान्त दूंगा। एक पत्थर लेकर उसके टुकड़े करो। एक टुकड़े का फूल बनाओ। दूसरे का चूहा और तीसरे की गाय बनाओ। पत्थर के फूल के पास एक सच्चा फूल रक्खो। और फिर देखो कि उड़ता हुआ भ्रमर आकर सच्चे फूल पर बैठता है वा पत्थर के फूल पर ! मैं निश्चय करके कहता हूँ कि वह सच्चे फूलपरही, आकर बैठेगा। वैसे बिल्ली सच्चे चुहे पर झपटे मारेगी और पत्थर की गाय भी दूध न देगी। यद्यपि ये पदार्थ हमलोगों के रोज के देखे हुये हैं और ये बनावट भी उनके जैसे बनी हैं तो भी वे सच्चे पदार्थों जैसा हमारा काम नहीं देते तथा पशु आदि को भी सच्ची वस्तुको पहचान लेने की तथा उस पर बैठने और उससे उपयोग लेने की बुद्धि होती है। हमलोगों की बुद्धि ऐसी मारी गई है कि, सत्य क्या है तथा असत्य क्या है। सो भी हमको मालूम नहीं होता है। वास्तव में मेरा आक्षेप उनपर नहीं है कि जिनको सत्यासत्यका ज्ञान नहीं है। परन्तु आक्षेप उनपर है कि जो जानते हैं कि सत्य क्या है तो भी अपने आत्मा के विरुद्ध बर्ताव करते हैं। उनको मैं तो क्या परन्तु हमारे पूर्वजभी आत्म हत्यारे कह गये हैं। जब ऊपर कहे पत्थर के पदार्थ सच्चे पदार्थों की तरह हमारा काम नहीं देते हैं तो ईश्वर की मूर्ति तो किस प्रकार हमको लाभ पहुँचा सकती हैं !

अब हम विचार करेंगे कि ईश्वर की मूर्ति हो सकती है या नहीं। कोई फोटोग्राफर कहे कि मुझे हवाका फोटो लेना है अथवा मनका फोटो लेना है तो वह कदापि नहीं ले सकता है। तो जिस चीज की मूर्ति हम बनाना चाहते हैं तो हमको जानना चाहिये कि वह वस्तु क्या है तथा हमारे पूर्वज भी वेदादि सत्य शास्त्रों के समय से महाभारत तथा तत्पश्चात् श्रीमच्छंकराचार्य के समय तक कैसी मानते थे। और उसके पीछे लोग कैसी मानने लगे। यह देखना उचित

है। ईश्वर के विषय में आजकल चार मत हैं। (१) साकारवाद (२) निराकार वाद (३) साकार निराकार (४) निराकार है परन्तु साकार हो जाता है। परन्तु अब देखना चाहिये कि इस विषय में वेद, उपनिषद शास्त्र और युक्ति क्या कहते हैं। वेद और उपनिषदों में दो प्रकार के मन्त्र हैं एक तो साकार समझाने वाले दूसरे निराकार समझानेवाले। यह मत कितने ही आदमियों का है जैसे "सहस्रशीर्षा" इत्यादि उस पुरुष के सहस्र सिर हैं। सहस्र आँखें तथा सहस्र पग है। और वह परमेश्वर भूमि तथा सब ब्रह्माण्ड को व्याप्त करके दश अंगुल (संख्या को) भी उल्लंघन करके वर्तमान हैं। परन्तु ऐसा अर्थ करने वालों से पूछना चाहिये कि जो ईश्वर के हजार शिर हों तो दो हजार आँखें होनी चाहिये। और पग हाथ भी दो-दो हजार होने चाहिये। और आगे का आधा मन्त्र कहता है कि वह परमात्मा सब जगह व्यापक है। अब विचारने का स्थान है कि जो ईश्वर को हजार शिरवाला साकार मानें तो जहाँ शिर होंगे वहाँ पैर न होंगे जहाँ पैर होंगे वहाँ हाथ न होंगे तो सर्व व्यापक न रह सकेगा। इस मन्त्र का अर्थ प्राचीन भाष्यकार महीधर जिसको सनातनी लोग प्रमाण मानते हैं इस प्रकार करते हैं :—

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सभूमि ँ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाँगुलम् ॥१॥

य० ३१ मं० १

महीधरभाष्यम्।

अव्यक्तमहदादिविलक्षणश्चेतनो यः पुरुषः पुरुषान्नपरं किञ्चिदित्यादि श्रुतिषु प्रसिद्धः सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराजाख्योऽस्ति। कीदृशः; शहस्रशीर्षा, सहस्रशब्दो बहुत्ववाची। संख्यावाचकत्वे सहस्राक्ष इति विरोधः स्यान्नेत्रसहस्रद्वयेन च भाव्यम्। ततः सहस्रमसंख्यानि शीर्षाणि शिराँसि यस्य सः शिरोग्रहणं सर्वावयवोपलक्षणम्। यानि प्राणिनां शिराँसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तः पातित्वात

तस्यैवैतिसहस्रशीर्षत्वम्। एवमग्रेपि। सहस्राक्षः सहस्रमक्षीणि यस्य सः। अक्षिग्रहणं सर्वज्ञानेन्द्रियोपलक्षकम्। सहस्रपात्। सहस्रं पादा यस्य सः। पादग्रहणं सर्वकर्मेन्द्रियोपलक्षकम्। सः, पुरुषो भूमिं प्रह्माण्डलोकरूपां सर्वतः तिर्यक्ऊर्ध्वमधश्च स्पृत्वा व्याप्य दशांगुलपरिमितं देशमध्यतिष्ठत् अतिक्रम्यावस्थितः। दशांगुलमित्युपलक्षणं ब्रह्माण्डाद्बहिरपि सर्वतोव्याप्यावस्थित इत्यर्थः। इत्यादि—

भावार्थ :—अव्यक्त महत् आदि विलक्षण विशेषणों से युक्त जो चेतन पुरुष है उससे परे कुछ नहीं है यह श्रुति में प्रसिद्ध है। ऐसा पुरुष जो सब प्राणियों के समष्टिरूप ब्रह्माण्ड देहवाला है, उसको विराट् कहते हैं। उसीका वर्णन इस सूक्त में है। उस पुरुषको सहस्रशीर्षा कहते हैं। इस जगह सहस्र शब्द बहुत्ववाचक है, जो संख्यावाचक लेवें तो आगे सहस्राक्ष शब्द आया है, इससे मन्त्र में वदतोव्याघात (परस्पर विरुद्ध) दोष आता है। क्योंकि जो हजार शिर हों तो दो हजार आखें होनी चाहिये, इसलिये जिसमें सब प्राणियों के शिर रहते हों वही सहस्रशीर्षा सब प्राणिमात्र उससे व्याप्य रूप सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये उनके अनेक शिर उसीके शिरों के समान वर्णन किये गये हैं। इसी प्रकार आगे के सहस्राक्षादि शब्दों के विषय में भी समझना चाहिये। (सहस्राक्षः) जिसके अनेक आखें हों, आँख के ग्रहण से सब इन्द्रियों का ग्रहण होता है। (सहस्रपात्) जिसके असंख्य पैर हैं पात् ग्रहण करने से गति (mobtion) का ग्रहण होता है; वह पुरुष (पुरि—संसारे शेते इति पुरुषः) (परमात्मा) ब्रह्माण्ड में सब जगह ऊपर नीचे आदि चारों तरफ व्याप्त होकर दशांगुल परिमित को भी उल्लंघन किये हुये हैं अर्थात् ब्रह्माण्ड के बाहर भीतर सब जगह व्यापक है। इसी प्रकार पुरुषसूक्त के तीसरे मन्त्र में भी शब्द आया है पाद् शब्द आने से स्वार्थी लोग बिचारे भोले लोगों को उलटा सीधा समझाते हैं। यथाः—

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥२॥

यजः अ० ३१ मं० ३.

महीधरभाष्यम् ।

अतीतानागतवर्तमानकालसम्बद्धं जगद्यावदस्ति एतावान् सर्वोपि अस्य पुरुषस्य महिमा स्वकीयसामर्थ्य विशेषो विभूतिः न तु वास्तवं स्वरूपम् । वास्तवपुरुस्तु अतः अस्मात् महिमां जगज्जालात् ज्यायांश्च अतिशयेनाधिकः एतदुभयं स्पष्टीक्रियते अस्य पुरुषस्य विश्वा सर्वाणि भूतानि कालत्रयवर्तीनि प्राणिजातानि पादश्चतुर्थांशः अस्य पुरुषस्यावशिष्टं त्रिपात् स्वरूपम् अमृतं विनाशरहितं तत् दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशे स्वरूपेऽवतिष्ठत इति शेषः । यद्यपि सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेत्यामां नात् तस्य परब्रह्मणः इयत्तायाः—अभावात् पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्यम् तथापि जगदिदं ब्रह्मरूपापेक्षयाल्पमिति विवक्षितत्वात् पादोपन्यासः ।

भावार्थः—यह जो पूर्व मन्त्रमें कहा है सो सब परमात्माकी महिमा है । परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप तो इससे भी महान् है । आगे इसका स्पष्टीकरण है कि यह त्रिकालाबाधित जगत् तो इस परमपुरुषका चतुर्थांश मात्र है । इस पुरुषके बाकी तीन पाद उसीके रूपमें हैं । यद्यपि सत्यज्ञानमय तथा अनन्तश्रुतिप्रतिपादित ब्रह्मकी इयत्ता—हद्दत्ता—नहीं बान्धा जा सकती इसलिये पादचतुष्टय का निरूपण करना अशक्य हैं । तो भी यह जगत् ब्रह्मकी अपेक्षासे अल्प है । ऐसा कहनेकी इच्छासे पादका अलंकाररूपसे वर्णन किया है ।

जब परमात्मा पृथिवी आदि तत्वोंसे भी परे तथा व्यापक है तो फिर साकार कैसे हो जब सनातनधर्मवालोंके नाममात्र भाष्यकार ईश्वरको साफ शब्दोंमें निराकार ठहराते हैं तो आधुनिक पोथाधारी उसको तोड़ मरोड़कर साकार ठहरानेका यत्न करते हैं । यह भी एक जमानेकी खूबी है । ये लोग ऐसा भी मानते हैं कि वेद ईश्वरने रचे हैं तो क्या ईश्वर ऐसा मूर्ख था कि एक जगह अपने आपको साकार कहे और दूसरी जगह निराकार कहे ! यह तो प्रमत्तगीत हुआ । सनातनधर्मी ईश्वरको भी "अपने समान" बनाना चाहते हैं । एक दूसरा मन्त्र यजुर्वेदके ४० वें अध्यायमें आया है उसका प्रमाण देकर ये लोग ईश्वरका शरीर ठहराना चाहते हैं । वह मन्त्र यह है:—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।३।

ई० पृ०—८. शंकरभाष्यम्।

योऽयमतीतैर्मन्त्रैरुक्त आत्मा स स्वेन रूपेण किंलक्षण इत्याहायं मन्त्रः। सपर्यगात् स यथोक्त आत्मा पर्यगात् परिसमन्तादगादगंतवानाकाशवद्व्यापीत्यर्थः। शुक्रम् शुद्धम् ज्योतिष्मद्दीप्तिमान् इत्यर्थः। अकायमशरीरो लिङ्गशरीरवर्जित इत्यर्थ अव्रणं अक्षतं। अस्नाविरं स्नावा शिरा यस्मिन्न विद्यन्त इत्यस्नाविरम्। अव्रणमस्नाविरमित्याभ्यां स्थूलशरीरप्रतिषेधः शुद्धं निर्मलम् विद्यामलरहितमिति कारणशरीरप्रतिषेधः। अपापविद्धं धर्माधर्मादिपापवर्जितम् शुक्रमित्यादीनि वचांसि पुल्लिंगत्वेन परिणेयानि।

यह भाष्य पूनेकी आनन्दाश्रम ग्रन्थमालामें छपी ईशोपनिषद्के शंकर भाष्यमेंसे लिया है।

भावार्थः—पहिलेके मन्त्रोंमें जो आत्माका वर्णन किया है वह कैसा है सो इस मन्त्रमें दिखाया है। यथोक्त आत्मा सर्वव्यापक है। शुद्ध अर्थात् ज्योतिष्मान् अथवा दीप्तिमान् स्वयंप्रकाश है। अकायम् अर्थात् शरीररहित है। आचार्य अकाय शब्दसे लिंग शरीरका प्रतिषेध करते हैं। अव्रण अर्थात् शरीरके सब छिद्रों से रहित तथा नाड़ी नसके बन्धनमें न आनेवाले—अव्रण तथा अस्नाविर इन दो शब्दोंसे स्थूल शरीरका प्रतिषेध किया है। शुद्ध अर्थात् अविद्यादि दोषोंसे रहित है। शुद्ध शब्दसे कारण शरीरका प्रतिषेध किया है। वह परमात्मा पाप अर्थात् धर्म और अधर्मादिसे पापोंसे रहित है। इत्यादि इस प्रकार अर्थ करके जब भगवान् शंकर उव्वटाचार्य, ब्रह्मानन्द सरस्वती, शंकरानन्द, पण्डित रामचन्द्र आनन्द भट्टोपाध्याय तथा अनन्ताचार्य ये टीकाकार ईश्वरके तीनों प्रकारके शरीरों का निषेध करते हैं। तो हमारे सनातनियोंको न जाने क्यों भ्रम हुआ जो मानने

लगे कि ईश्वरका शरीर अलौकिक हैं। व्यासजीके वेदान्त सूत्रपर शंकराचार्यजी लिखते हैं कि :—

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः।

वे० सू० अध्याय २, पाद २, स० ४०,

शंकरभाष्यम्।

अथ लोकदर्शनानुसारेणेश्वरस्यापि किंचित् करणानामायतनं शरीरं कामेन कल्प्येत, एवमपि नोपपद्यते। स शरीरत्वे हि सति संसारिवद्भोगादि प्रसंगादीश्वरस्याप्यनीश्वरत्वं प्रसज्ज्येत॥

भावार्थः— लोगोंकी तरह ईश्वरका शरीर बनावें तो वह भी नहीं बन सकता है क्योंकि जो ईश्वरका शरीर मानें तो भूख प्यासादि लगेंगे इसका ईश्वरत्वही नहीं रहेगा। इसलिये उस परमात्माका शरीर नहीं होता हैं।

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि॥

वे० स० अ० ३ पा० २ सू० ११

शंकरभाष्यम्।

तत्रोभयलिंगश्रुत्यनुग्रहात् उभयलिंगमेव ब्रह्मेत्येवं प्राप्ते ब्रूमः। न तावत् स्वत एव परस्य ब्रह्मणः उभयलिंगत्वमुपपद्यते। नह्येकं वस्तु स्वत एव रूपादिविशेषोपेतं तद्विपरीतञ्चेत्यवधारयितुं शक्यं विरोधात्

भावार्थः—श्रुति ब्रह्मको साकार निराकाररूपसे वर्णन करती है। इसलिये कोई कहे कि परमात्मा दोनों प्रकारका हो सकता है तो इसका जवाब यह है कि परब्रह्मका अपना या इस प्रकारका दोनों प्रकारका रूप नहीं हो सकता है क्योंकि एक वस्तु अपने विशेषरूपसे जुदे प्रकारके विरुद्ध गुण होनेके कारण दो प्रकारकी

नहीं हो सकती है। जैसी गति है। वैसी स्थिति नहीं हैं उजाला सो ही अन्धेरा नहीं है। शीतही उष्णता नहीं है। इसके ऊपर भगवान् शंकराचार्य कहते हैं, कि ईश्वरको साकार मानकर उसकी मूर्ति बनाना सर्वथा वेदविरुद्ध है; इसी पादके चौदहवें सूत्रके भाष्यमें शंकराचार्य साफ शब्दोंमें ईश्वरको निराकार ठहराते हैं।

अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्।

वे० सू० अ० पा० सू० १४

शंकरभाष्यम्।

रूपाद्याकाररहितमेव हि ब्रह्मावधारयितव्यं। दिमत् कस्मात्तत् प्रधानत्वात्। अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्, अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं, दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः यस्मादेवं जातीयकेषु वाक्येषु यथाश्रुतं निराकारमेव ब्रह्मावधारयितव्यम्।

भावार्थः—रूपादि आकार रहित ब्रह्म है इस विषयमें श्रुतिके उदाहरण अस्थूलमनणुअह्रस्व आदि दिये हैं। अर्थात् वह ब्रह्म स्थूल नहीं है, अणु नहीं है, छोटा बड़ा नहीं है, विना रूपनाशरहित दिव्य अमूर्तिमान् अज आदि विशेषण युक्त है, इसलिये ब्रह्म निराकारही है।

युक्तिसे भी ईश्वर साकार नहीं ठहरता है; क्योंकि दुनियांमें छ वस्तुयें साकार हैं। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र। बाकी सब निराकार हैं। जो ईश्वर साकार होवे तो इन छमेंसे एकसे वह बना होना चाहिये। कितनेही लोग "अग्निर्मूर्द्धा दिवः" इस मन्त्रसे बतलाते हैं कि अग्नि उसका शिर है सूर्य्य चन्द्र उसके नेत्र हैं—इसी वेद के पुरुष सूक्त में लिखा है कि मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है। परन्तु ये सब अलंकार हैं। जैसे नृसिंह के विषय में लोगों ने अलंकार न समझ कर ऐसी कल्पना की कि आधा मनुष्य और आधा सिंह और उसी प्रकार चित्रों में भी इसका शरीर बनाने लगे। परन्तु सच पूछो तो उसका

अर्थ यह है "सिंह के समान बलवान् पुरुष" यजुर्वेद में कहा है "विश्वतश्चक्षुरुत" आदि य० अ० १७-१६ परमात्मा के सब जगह नेत्र, कान, हाथ, पैर, मुख हैं। जो यह मन्त्र साकार विषयका ही मानें तो सब जगह होने से एक जगह होने का निषेध हो गया। शतपथ में कहा है कि "बाहुर्वै बलम्" अर्थात् जहाँ-२ "बाहु" शब्द आवे उसका अर्थ बल समझना चाहिये। साकार माननेवालों पर यह प्रश्न होता है कि जो सूर्य्य चन्द्र को नेत्र कहें, तो उसका शिर क्यों नहीं दिखाई देता? परन्तु जो लोग उसको व्यापक मानते हैं, उसके विषय में यह दोष नहीं आता है।

अब परमात्मा को कैसे जानना चाहिये इस विषय में यजुर्वेद में कहा है "वेनस्तत्पश्ययन्निहितं गुहा" इत्यादि य० अ० ३२ मं० ८०

महीधर भाष्यम्—वेनः पण्डितो विदितवेदान्तरहस्यः तत् ब्रह्म पश्यत् पश्यति जानातीत्यर्थः। इत्यादि।

उस ब्रह्म को "वेन" अर्थात् पण्डित जिसने वेदादि सत्य शास्त्रों का अर्थ जाना है वही जाना है वही जान सकता है अर्थात् अज्ञानी जन नहीं जान सकते हैं। ईश्वर को साकार मानने से उसकी व्यापकता में भी दोष आता है, इससे वह सर्वज्ञ तथा सर्वान्तर्यामी भी नहीं रह सकता है। साकार पदार्थ हमेशा नाशवान् होता है। शास्त्रों का यथावत् मर्म न जानने से लोग आजकल जैसे मन में आता है खींचातान करते है।

एक समय एक पण्डित जी रसोई करते थे, उनके पास एक शिष्य बैठा था और वहाँ दही भी रक्खा था। इतने में पण्डित जी जरा पानी लेने को गये और शिष्य को कह गये "कौवे से दही की रक्षा करना" अर्थात् देखना कि कौवा दही खा न जावे। शिष्य ने कहा कि अच्छा। पश्चात् कुत्ता आकर दही खा गया। गुरुजी ने आकर पूछा कि दही कहाँ गया? उसने कहा कि कुत्ता खा गया। गुरुजी ने पूछा कि तूने रक्षा क्यों नहीं की? शिष्य ने कहा आपने तो कौवे से रक्षा करने को कहा था। इसी प्रकार पूर्वापर समझे बिना अर्थ करने

से भी अनर्थ होता है। यह बात सत्य तथा धर्मानुकूल है। इसलिये कहता हूँ। मुझे कुछ समाजका पक्ष अथवा सनातन धर्म सभा के साथ वैर नहीं है। क्योंकि समाज मुझे कुछ धन नहीं देता, वैसे ही सनातन धर्म मण्डल कुछ मेरी हानि नहीं करता है परन्तु ऋषियों के मत के अनुसार जो धर्म है वही मैं कहता हूँ।

साकार माननेवालों में परस्पर विरोध होता है।

क्योंकि कोई कैसा ही स्वरूप बनाता है कोई कैसा ही। यह बात हम आज तक प्रत्यक्ष देखते हैं, कि शैव और वैष्णवों में कितना विरोध है। इनके शिव विष्णु पुराण भी एक दूसरे की निन्दा करते हैं। जो ईश्वर साकार ही हो तो उसके माता पिता कौन होंगे और उनके लिये भी यही प्रश्न होंगे, ऐसा होने से अनवस्था दोष आवेगा, इसलिये ईश्वर निराकार है। और उसी को मानना चाहिये, आजतक किसी जगह परब्रह्म की मूर्ति देखने में नहीं आई, हाँ रामकृष्ण आदि की तो अवश्य देखने में आती हैं। इत्यादि ऊपर के प्रमाणों से स्पष्ट मालूम होता है, कि ईश्वर निराकार है जो लोग मूर्तिको ही परब्रह्म मानते हैं वे तो अज्ञान ही हैं।

कितने ही मनुष्य कहते हैं, कि पाषाणों में तो देव नहीं है, परन्तु भावना में देव है। मैं कहता हूँ, कि जो भावना फल देनेवाली हो तो पीतल में सोने की भावना करो, और उसको सोने के भाव से बेंचो, और फिर देखो क्या हाल होता है। पूर्व मीमांसा में कहा है कि जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसे ही जानने तथा मानने को भावना कहते हैं, शायद कोई कहे कि और चीजों के बारे में ऐसा न हो परन्तु ईश्वर साकार है, इसलिये हमारी भावना फली भूत होती है। कोई भक्त पंसारी के यहाँ मिश्री लेने गया पंसारी ने भूल में फिटकरी दे दी व कहा कि लो ठाकुरजी के भोग लगा लो, पुजारी ने भी शुद्ध भाव से ठाकुर जी के भोग लगाया। फिर सब लोगों को प्रसाद बांटा। सब के मुँह कड़वे हो गये! मेरा कहना इतना ही, कि जो भावना सच्ची ही होती तो उस पंसारी भक्त तथा पुजारी को सच्ची भावना करके भोग लगानेपर सब प्रसाद पानेवालों

के दाँत क्यों कड़वे हो गये ? इससे सिद्ध होता है, कि हमारी भावना से वस्तुओं के गुणों में किसी तरह का फेर नहीं पड़ सकता है, जैसे अन्धेरे में पड़ी हुई रस्सी को साँप समझने से उसमें जहर नहीं व्याप्त होता है वैसे ही जड़ को ब्रह्म समझने से जड़ पदार्थ ब्रह्म नहीं हो सकता। अब देखना चाहिये, कि वैदिक समय में मूर्तिपूजा थी वा नहीं यज्ञयागादि जो होते थे उनके उपर बहुत से ग्रन्थ बने हैं वेदोंमें एक मन्त्र नहीं ऐसा मन्त्र नहीं है कि जिसमें पाषण, अथवा काष्ठ, वा ऐसे ही और किसी पदार्थ की मूर्ति बना कर पूजना कहा हो। भगवद्गीता में ही कोई मुझे बतावे तो मैं आज ही आर्यसमाज का पक्ष छोड़कर सनातन मण्डल का अनुगामी हो जाऊं कितने मनुष्य कहते हैं कि यदि परमात्मा निराकार हो, तो उसका ध्यान कैसे हो, इसलिये ध्यान के लिये मूर्ति होनी चाहिये। इसके उत्तर में इतना ही कहना है, कि ध्यान का और मूर्ति का कुछ सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि ध्यान के लिये सांख्य में कहा है—"ध्यानं निर्विषयं मनः" अर्थात् पाँचों इन्द्रियों का विषयों से अलग होना ही ध्यान है। मूर्ति को देखना यह चक्षु इंन्द्रिय का विषय है। तथा कृष्ण भी गीता के छठे अध्याय में कहते हैं कि :—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रिय क्रियः।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

गीता अ० ६ श्लोक ११

न बहुत ऊंचा न बहुत नीचा हो ऐसे आसनपर पहले कुश बिछावे पश्चात् मृग चर्म और ऊपर कपड़ा बिछा उसपर बैठकर चित्तवृत्तियों को एकाग्र करके आत्मशुद्धि के लिये परमात्मा (सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म) का ध्यान करें। आजकल गीता बहुत माननीय समझी जाती है। उसमें भी जब मूर्ति का विधान नहीं है, तो फिर यह सीढ़ी का पहला दण्डा कैसे हो सकता है ? कहीं भी इस प्रकार

ध्यान करने का उपदेश नहीं है। साकार का न तो ध्यान होता है जैसे कि यह दीवाल है। इसको देखकर फिर आखें बन्द करके मन में विचार करूं कि मेरे पास दीवाल है, और मैं अपना हाथ हिलाऊं। तो क्या यह कल्पित की दीवाल, मेरे हाथ को रोक सकेगी? क्या यह कोई कह सकता है कि भूख अथवा बुद्धि किस प्रकार की है? जब बुद्धि आदि नित्य काम में आनेवाली चीजों की मूर्ति नहीं बनाई जा सकती है तो फिर ईश्वर की मूर्ति कैसे बन सकती है?

बाल्मीकीय रामायण में रामचन्द्र की मूर्तिपूजा करने का कहीं भी वर्णन नहीं आता है। हाँ ऐसा वर्णन तो है, कि दोनों काल सन्ध्या करते थे। कोई कहे मूर्तिपूजा को ज्ञान प्राप्ति का साधन मानने में क्या हरज है? तो इसका जवाब तो वेदों ही में दे दिया है कि :—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳरताः ॥९॥

यजु० अ० ४०

शङ्करभाष्यम्। अधुना व्याकृताव्याकृतोपासनयोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निन्दीच्यते। अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये असम्भूतिं सम्भवनं सम्भूतिः सा यस्य कार्यस्य सा सम्भूतिः तस्याः अन्या असम्भूतिः प्रकृतिः कारणमविद्या अव्याकृताख्या तामसम्भूतिमव्याकृताख्यां प्रकृतिं कारणम् अविद्यां कामकर्मबीजभूतामदर्शनात्मिकामुपासते, ते तदनुरूपमेवान्धं तमोऽदर्शनात्मकं प्रविशन्ति। ततस्तस्मादपि भूयो बहुतरमिव तमः प्रविशन्ति, य उ सम्भूत्यां कार्यब्रह्मणि हिरण्यगर्भाख्ये रताः।

जो प्रकृति अर्थात् जगत् के जड़ कारण की उपासना करते हैं, वे अज्ञान रूपी अन्धकार में हैं। और ईश्वर के स्थान में कार्य जगत् की उपासना करते हैं वे उससे भी विशेष अन्धकार में हैं और जड़ हैं। यजुर्वेद के अध्याय ३२ के तीसरे मन्त्र में कहा है कि—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

महीधर—तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किंचिद्वस्तु नास्ति। अर्थात् उस (परब्रह्म) की मूर्ति है ही नहीं।

आजकल पुजारी अथवा साधु ईश्वर के नाम से दान ले आलसी होकर पेट भरते हैं। और दरिद्रता तथा अनाचार बढ़ाते हैं। शीतकाल में ठाकुर जी के सामने आग की (अंगीठी) रखते हैं। कोई विचार करे तो मालूम होगा कि पत्थर को कभी ठंढ या धूप नहीं लगती है। यदि आपका कोई मित्र, आपके फोटो को इस तरह करे, तो आप उसपर कैसे गुस्से होंगे? जो मूर्ति को देखने से ज्ञान होता, तो रामचन्द्र जी मूर्ति एक युरोपियन के सामने (जिसने) उसका इतिहास कभी न सुना हो धरो क्या वह उसे देखकर जानेगा कि वे ऐसे पराक्रमी सत्पुरुष थे। इसलिये ज्ञानका साधन मूर्ति नहीं। परन्तु विद्या है। उपनिषद में कहा है कि "आत्मा वारे द्रष्टव्यो श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" ब्रह्म को जानना सुनना तथा उसका निदिध्यासन करना चाहिये। आप दो बालकों को लेकर एकको शास्त्र पढ़ावें, और दूसरे को मूर्तिपूजा करावें फिर २५ वर्ष के हो जाने पर, उन दोनों से, ईश्वर के सम्बन्ध में प्रश्न करें और देखें, कि किसको ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान हुवा है। भला जो मूर्ति में ही ज्ञान मानते हो, तो क्या सूर्य कुछ छोटी मूर्ति है, कि जो दूसरी मूर्ति बनाते हो? सूर्य को देखके ही ईश्वर का ज्ञान क्यों नहीं होता। ईश्वर निराकार है, इसलिये प्रथम सृष्टि के निराकार पदार्थों का ज्ञान होना चाहिये, लोग ईश्वर अपने विचारों के अनुकूल बनाना चाहते हैं। जो अन्धविश्वास रखना चाहते तथा जिनमें विचार शक्ति नहीं उनको मैं तो क्या ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते! कितने ही लोग इस विषय में अग्निका दृष्टांत देते हैं, कहते हैं कि जैसे अग्नि व्यापक है, इससे वह प्रकट भी हो सकती है? वैसे ही ईश्वर व्यापक होने पर भी एक जगह प्रकट हो सकता है। इसके उत्तर में शंकराचार्य ही कहते हैं कि अग्निवर्षणका एक रस व्यापक है। इसलिये उसमें घटती बढ़ती नहीं हो सकती अर्थात् वह किसी जगह विशेष रीति से प्रकट नहीं होता है। अग्नि की तरह ईश्वर में किसी तरह का विकार नहीं होता है क्योंकि वह निर्विकार है। इतिशम्

इसके पश्चात् सभापति माननीय जज मि०चन्दावरकर के प्रकटकिये हुए विचार

मि० चन्दावर करने भाषण के विषय में कहा कि स्वामी नित्यानन्द ने जो विचार युक्त तथा विद्या से पूरित भाषण दिया है और बड़ोदे से खास यहाँ आये

हैं, इसके लिये वे धन्यवाद योग्य हैं। आजकल जिस प्रश्नपर विशेष चर्चा हो रही है, सो यद्यपि कोई नया विषय नहीं है, तथापि स्वामी नित्यानन्दने तोड़ मरोड़ किये बिना तथा विना पिष्ट पेषण के अपने विषय को जिस उच्च शिखरपर पहुँचा दिया है, उसे श्रोताजनोंको एकाग्रचित हो सुननेका का मौका मिला है, और अच्छे विचार बनाने का अवसर मिला है। मूर्तिपूजा क्या है यह समझे बिना तकरार करना व्यर्थ है। लोकमत अनुसार ईश्वर की पूजा अनेक प्रकार से की जाती है। और इसीका कारण हिन्दू धर्म अनेक भागों में बट जाता है। जिस चीज में ध्यान लगाने से ऊँची स्थिति को चढ़े वही सच्ची मूर्तिपूजा है। बाकी अज्ञानी लोग मूर्ति में ही ध्यान किया करते है, इससे वे ऊँची स्थिति को नहीं पहुँच सकते हैं। मूर्ति से कुछ भी परिपूर्णता नहीं आती है। जैसे कोई विद्यार्थी परीक्षा में पास होने के लिये अच्छा टाइम टेबल बनाता है और उसके अनुसार नया अलार्म टाइमपीस घड़ी रखकर रोज क्रम अनुसार अभ्यास चलाता है। परन्तु यदि उसका मन ही निर्बल होवे तो यह सब अच्छा ? और टाइम टेबल भी किस काम का ? इसलिये एक ही वस्तु में परमेश्वर को मानने के बदले मन को ऊँची स्थिति में लाने के लिये परमेश्वर को पहचानना सीखना चाहिये। और जब एक ईश्वर में सच्चा अभिमान आ जाय तो फिर निरर्थक चीजों की जरूरत नहीं रहती है। तुकाराम जैसे सच्चे भक्त जब पंढरपुर में जाते थे तो वहाँ मंदिरों के होते भी उनमें न जाकर अच्छी सभाओं में जाना पसंद करते थे। इससे मस्तक की शक्तियाँ खिलकर उन्नत होती थी। ईश्वरभी कहता है, कि जैसे रूप में जैसे मन से तुम मेरे पास आओगे, उसी तरह से मैं तुम्हारे पास आऊंगा और जो तुम पाषाण के साथ आओगे तो मैं तुमको पाषण दूंगा भगवद्गीता में कहा है कि ईश्वर तुम्हारे हृदय में रहता है। बड़े २ वीर पुरुषों के चरित्रों के दृष्टांत अपने सामने रखकर काम लेने से ही प्रजा की उन्नति होती और जो तुम स्वयं मन वचन और कर्म से पवित्र होगे तो तुम अपने परमेश्वर को प्राप्त कर सकोगे, ऊँचे शिखर पहुँचने के लिये ऊँचे आचरण ग्रहण करने में ही पूजा का आशय समाया है ऐसे विचार फैलाये बिना सिद्धि होने को नहीं इस बात पर देश के उदय का आधार है। और उसकी चर्चा होने से मैं खुशी हुआ हूँ, पश्चात् प्रमुख का उपकार मानकर सभाविसर्जन की गई थी।

१६

मनुष्यका कर्तव्य

श्री स्वामी नित्यानन्दजीके ता० २७-१०-१८९५ को
लक्ष्मीविलास राजमहल बड़ोदामें दिये हुए
व्याख्यानका सारांश—

आरम्भमें स्वामीजीने ईश्वरप्रार्थना करके व्याख्यान देना शुरू किया, उस समय श्रीमान् सरकार दिवान साहेब बहादुर, श्रीमंत रावसाहेब संपतराव गायकवाड़, स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी उपस्थित थे।

स्वामीजी बोले, सृष्टिमें हम दो वस्तु देखते हैं, एक जड़ व दूसरी चैतन्य, अर्थात् चलन होना जड़ वस्तु याने अत्यंत सूक्ष्म पदार्थसे लेकर अत्यंत प्रचंड पर्वतादि इनकी गणना निर्जीव पदार्थोंमें होती है, सूक्ष्म दर्शक यंत्रकी सहायता लेकर चैतन्य वस्तुका अब विचार करते है।

दृश्य पदार्थ कईएक निर्जीव हैं तोभी वे सृष्टिका नाश क्षणभरमें कर डालते हैं, जैसे अग्नि वायु जल वगैरह निर्जीव हैं, पतंग सजीव है तोभी वह दीपकपर झड़प मारकर अपने प्राण गमाता है, अग्निकी सहायतासे आदमी अपनेलिये अन्न पकाता हैं और उसके प्रकाशसे अन्धकारका निवारण कर लेता है, रेल-गाड़ी सरीखे लोकोपयोगी यंत्रमें भाफ उत्पन्न कर लेता है और उसके द्वारा यंत्रमें गति उत्पन्न करता है और वह गति कई कोसतक गाड़ी चलानेके काममें आती है; तथापि उस यंत्रकी गति रोकनेका काम मनुष्यके बिना नहीं हो सकता।

मैं कौन हूँ? इस प्रश्नका उत्तर मैं आत्मा हूँ। ईश्वरके अस्तित्वमें अनेक मत हैं, कोई कहता है ईश्वर हैं ही नहीं, कोई कहता है यह जगही ईश्वरमय है, कोई कहता है अकाशमें ईश्वर है, किसी बालकपर यदि मेस्मेरिजमका प्रयोग किया जावे तो वह बालक अपना ज्ञान भूलकर उस प्रयोग करनेवालेके स्वाधीन होकर रहता है, उसी प्रकार हम मनुष्योंपर संसारमायाका प्रयोग हुआ हैं, इसलिये हमारा कर्त्तव्य इस जगतमें क्या हैं और यह जगत् क्या वस्तु है इस विषयमें हममें अज्ञान भरा हुआ है, सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे अवलोकन करनेपर बहुत सूक्ष्म वस्तुएं हमें नजर पड़ती हैं, परन्तु उनकी यथार्थ कल्पना हमें नहीं होती है। पृथ्वी की अपेक्षा सूर्यमंडल साढ़े तेरा लाख गुना बड़ा है और वह अनन्त तारागणोंसे

युक्त रहता है, तात्पर्य इस जगत्की उत्पत्ति कैसे हुई, इसका कर्ता कौन है यह विषय बड़ा गहन है। श्रुतियों-नेभी इस विषयपर अपने हाथ कानोंपर रखे हैं, मनुष्य जातिके शरीरके परिमाणसे उसकी आँखें बहुत छोटी हैं, और उन आखों की पुतलियां तो औरभी छोटी है. परन्तु, उनसे वह इस जगत्में चाहे जितनी बड़ी वस्तु देख सकता है, उसी प्रकार यह जगत् इतना प्रचंड और विस्तृत है तो भी उसका, याने, जगत्का ज्ञान उसे अपने ज्ञानचक्षुसे हो जाता है। स्वप्नमेंभी यह जगत् जाग्रत अवस्थाके सदृश हमें नजर पड़ता है, परन्तु उस जगत्को देख नेवाली आंखें औरही हैं और वे ज्ञानचक्षु कहलाते हैं, इस विषयपर हर्ट स्पेन्सर वगैरा बड़े-बड़े तत्ववेत्ता झगड़ रहे हैं। जो कुछ हो, हालमें हमें तो "मनुष्यका कर्त्तव्य" इस विषयपर विचार करना है, महाभारत और चरकादिकोंके सर्वमान्य ग्रंथोंमें आत्माका रक्षण प्रथम बतलाया गया है परन्तु मनुष्य जाति यह अपना कर्त्तव्य योग्य रीतिसे करना नहीं जानती, गरीबसे लेकर महाराजातक सबकी एक ही अवस्था है। कोई मजदूर पैसेके लालचसे अपनी शक्तिके बाहर बोझा उठाता है, और अपनी तबियत खराब करता है, उसी तरह कोई विद्यार्थी शीघ्र पास होनेसे और रोजगारके लोभसे अपनी शक्तिसे बाहर परिश्रम करके अपना जीवन गमाता है, उसी प्रकार कई लोग शक्तिके बाहर काम करके और कोई लोग अधिक आहार करके, और ऋतुमानको न देखकर, अपनी प्रकृति खराब कर लेते हैं, रोगी होना प्रारब्धमें नहीं लिखा है, मनुष्य प्रमादसे अपनेको रोगी बना लेता है, मनुष्य शरीरके अवयव घड़ीके चक्रोंके सदृश है, और वे चक्र जब बिगड़ते हैं, तब वे पहिलेकी नांई दुरुस्त नहीं हो सकते, एक बार प्रकृति बिगड़कर रोगग्रस्त हो गई तो वह फिर औषध करनेसेभी पहिलेकीसी नहीं होती, इसलिये प्रकृति निरोगी रखना मनुष्यका आद्यकर्त्तव्य है।

दूसरा कर्तव्य उद्योग करना, बहुत से लोग भाग्यवादी बन कर उद्योग नहीं करते। परंतु उनकी यह भूल है। बौद्ध व जैन धर्म में पुनर्जन्म माना है: उसीके अनुरोध से लोग भाग्य का अवलंब करते हैं, कृश्चयन लोग प्रारब्ध नहीं मानते, जो लोग प्रारब्ध वादी बनकर उद्योग करना छोड़ते हैं, उनकी स्थिति कच्चे घड़े के सदृश है, और उनकी गणना मूर्खों में होती है, जो-जो वस्तुएँ अपने सामने आती हैं, वे प्रारब्ध से नहीं बनी हैं, उद्योग को छोड़कर कोई पुरुष विद्वान् नहीं हुआ है, और भाग्य के भरोसे उसको विद्या नहीं आती, कितने परमहंस ऐसे होते हैं, कि उनके मुख में ग्रास छोड़ना पड़ता है परंतु वह ग्रास चबाने की क्रिया

उनको खुद करनी होती है अर्थात् उस ग्रास को चबाकर निगलना पड़ता है, दो सदृश विद्यार्थी, परीक्षा में प्रविष्ट होते हैं, और उनमें से एक पास और दूसरा नापास होता है, ऐसे अवसर में प्रारब्ध मानना पड़ता है, और हमारे हिंदु धर्मशास्त्र में उसे बीजरूप माना है, परंतु वह बीजरूप प्रारब्ध सदुद्योगरूपी भूमि में बोकर अच्छा फलवान् बनाना अपना कार्य है, केवल भाग्यवादी बनने से फल प्राप्ति नहीं हो सकती। उद्योग के विषय में हमारे हिन्दुस्थानी लोग बहुत पीछे पड़े हुये हैं, वे समुद्रयात्रा को धर्म के विरुद्ध मानते हैं। परन्तु यजुर्वेद अ०६ में समुद्रपर्यटन लिखा है, राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण अमेरिका गये, और वहाँ से बकदाल्भ्य ऋषि को अपने साथ ले आये ऐसा महाभारत में लिखा है। मनुस्मृति में लिखा है कि पूर्व काल में ब्राह्मण सर्व वर्णों की कन्याओं से विवाह करते थे, काश्मीर देश में आज भी मुसलमानों का छुआ अन्न ब्राह्मण खाते हैं, बाल्मीकीय रामायण में परमपूज्य मार्कन्डेय ऋषि का मिल्लन स्त्री शबरी के हाथ रोटी खाना लिखा है, महाराज युधिष्ठिर के गृह में हजारों दासियाँ अन्न परसती थीं; और वैसे हीं समुद्र पर्यटन धर्मशास्त्र में निषिद्ध नहीं माना है। जातिभेद प्रथा चलाने से हमारे समाज में बड़ी हानि हो गई हैं, और हो रही हैं, परन्तु ईश्वर के यहाँ मनुष्यजाति एक मानी गई है, ऐसा न होता गाय, घोड़ा, भैंस, इनमें जैसा भेद नजर पड़ता है, वैसा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादिकों में भी पड़ता। बैल और भैंस इनके संयोग से सन्तति नहीं होती, परन्तु ब्राह्मण शूद्री इनके संयोग से सन्तति होती है, इससे यह सिद्ध होता है, कि जातिभेद जो मनुष्य समाज में प्रचलित हैं वे झूठ हैं, जाति, कर्म से मानी गई है, जैसे डाक्टरी का धन्दा करनेवाले को डाक्टर कहते हैं परन्तु उसके पुत्र को डाक्टर नही कहते, वैसे ही ब्राह्मण के पुत्र को ब्रह्मज्ञान हुवे विना ब्राह्मण नहीं कह सकते, तात्पर्य यह है कि, इस जातिभेद की प्रथा समाज में प्रचलित होने से हमरा देश अत्यन्त दुर्दशा से भर गया भर गया है, यह दुर्दशा से भर गया है, यह दुर्दशा उठाकर अपने देशभाइयों को सत्यमार्ग में लोकर छोड़ना यह अपना पवित्र और अवश्य कर्तव्य है। चलता है, सो चलने देना, और भाग्य में जैसा लिखा है, वही होगा, ऐसा विचार करने से हमारा देश उच्च श्रेणीपर कभी आरोहण न करेगा।

तीसरा कर्तव्य यह है कि मनुष्योचित प्रकार से गृहस्थाश्रम करना, आजकल जो हम अपनी प्रजा को अशक्त देखते हैं, इसका कारण बालविवाह है, इस बाल विवाह से अनेक अनर्थ हो रहे हैं, परन्तु उस तरफ किसी की दृष्टि नहीं है,

ऋग्वेद तथा अथर्व वेदों में लिखा है, कि सुशिक्षिता होकर तरुणता प्राप्त करके विवाह करे, विवाह में कन्या का वय कम से कम १८ और पुरुष का २५ होना चाहिये, परन्तु आजकल इस वेदवाक्य के विरुद्ध शादियों हो रही है, ५ या ६ लड़की से और आठ या नौ बरस के लड़के का लड़की से विवाह हो जाता है, इस आठ या नौ बरस के लड़के का विवाह क्या है, इसका तनिक भी ज्ञान नहीं रहता, विवाह कार्य में स्त्री पुरुषों में होने वाले करार अथवा प्रतिवचन दोनों तरफ के उपाध्याय ब्राह्मण आपस में पढ़ लेते हैं। महाराजा मैसूर ने अपने राज्य में १२ वर्ष के भीतर की कन्या का विवाह होना सरकारी कायदे से रोका है. बालविवाह से बहुत तरह के नुकसान हैं, कन्याका गर्भाशय परिपूर्ण न होने के कारण उसकी सन्तान हीनवीर्य होती है, ऐसा वैद्यकशास्त्रों का निश्चित मत है, तौभी हमलोग आँखें खोलकर इसका विचार नहीं करते!! देखो, सादे कपड़े में बर्फ रखने से उसका पानी हो जाता है और ऊनी कपड़े में रखने से वैसा का रहता है, इसी तरह हम लोगों के मनपर लोगों का निन्दारूप उर्ण वस्त्र ऐसा दृढ़ बैठा है, कि सुधाररूप वायु का उसमें प्रवेश नहीं होने पाता, परन्तु इस प्रकार से लोगों की निन्दा का विचार करने से देश की स्थिति कभी अच्छी नहीं होगी।

अभी थोड़े रोज पेश्तर आर्यसमाजने एक पुरुषको जिसने ख्रिस्ती धर्मको अंगीकार किया था, उसे फिर अपने धर्ममें प्रविष्ट कराया, यह उदाहरण विचारने योग्य है। दूसरी बात यह है, कि लड़कीका विवाह छोटी उम्रमें होनेसे उसका विद्याभ्यास बिलकुल नहीं होने पाता, इस कारण उसकी सन्तानभी शिक्षाविहीन होती है, बच्चेको बालकपनमेंभी अच्छी शिक्षा मिलना योग्य है, परन्तु माता अशिक्षित रहनेसे वह उसको शिक्षा देनेमें असमर्थ होती है, माता और पिता दोनोंही सुशिक्षित होने चाहिये, तभी सन्तान सुयोग्य हो सकती है; छोटे बच्चेको अधिक मिठाई खिलाना अच्छा नहीं है, यदि, उसको वह देनी ही तो विचार करके देनी चाहिये; यदि ऐसा न किया तो वह बालक मनमानी खा जायगा, और उसका परिणाम अनिष्ट होगा, इसलिये सुशिक्षित मा बापके बालककी इच्छा को बिलकुल दबाकर रखना ठीक नहीं, उसकी बुद्धि बढ़ती जावे इस तरहसे शिक्षा देनी चाहिये, मातापिताओंका उपदेश बालकपर बड़ा परिणामकारक होता है, इस स्त्रीशिक्षाके विषयमें श्रीमान् महाराजा सहाबने बड़ी कृपा की है, (तालियां) आज जो विषय पढ़ाये जाते हैं, वे निरुपयोगी होनेसे सुधार होना

चाहिये, उसी प्रकार उच्च प्रतिका शिक्षण देनेमें इंग्रेजी भाषाका ज्ञान आवश्यक हो गया हैं, उसके सीखनेमें भी बहुत काल व्यतीत हो जाता है। इसकाभी कुछ विचार होना चाहिये, नीतिशिक्षामें भी कुछ परिवतन होना अवश्य है, और उससे अनुभविक ज्ञान होना चाहिये, मुंहका जमाखर्च किस कामका नहीं, पाठकगण निर्भय होने चाहिये, अन्यथा वे उपदेश करनेमें असमर्थ होदे हैं। उसी तरह सरकारी कामदारभी खुशामदी न होने चाहिये, उनके खुशामदी होनेसे, राजाको योग्य सलाह उनसे नहीं मिलती, और इस प्रकारसे वे राजाके शत्रुबन जाते हैं. राजाको प्रजाका पालन निष्कपट भावसे करना चाहिये, और प्रजाको राजाका योग्य सन्मान करना चाहिये।

मनुष्य जन्म क्षण में नाश होने वाला है, और अन्त में उसके साथ कुछ भी नहीं जाता है, मुहम्मद गजनवीने अत्यंत क्रूरता से अपना खजाना भरा और अंत समय में उसे देखकर खूब रोया, वह बोला इस द्रव्य के प्राप्त करने में मुझे कितना अन्याय और कितना भयंकर कृत्य करना पड़ा था और अब इसका उपभोग कोई दूसरा ही करेगा, तात्पर्य यह है कि अनीति से द्रव्योपार्जन करने की अपेक्षा नीति से चलकर गरीब रहना अच्छा है और वही सुख का साधन है, इस प्रकार श्रीस्वामी जी ने ऊपर बतलाये हुवे विषय पर अपनी अस्खलित वाणी से श्रोतृसमुदाय को तन्मय करके छोड़ा।

यह भाषण १॥ घन्टे हुवा और तबतक श्रीमान् सरकार बड़ीउत्सकता से बैठकर सब भाषण सुनती रही, महाराजा साहेब ने स्वामीजी को अपना पूर्व वृत्तान्त कहने को कहा, और स्वामी जी ने थोड़े में कुछ कहा, स्वामी जी बोले कि मैं श्रीमाली जाति का ब्राह्मण हूँ, और मैंने काशी जी में रहकर संस्कृत भाषा का अध्यन किया, इसके सिवाय मैंने कुछ इंग्रेजी और फारसी भाषा भी पढ़ी है, लोगों को उपदेशकर उनको सन्मार्गवर्ती बनाना और इस तरह से लोगों की सेवा करना यह मेरे मन को निश्चय हो गया, और यह दीक्षा ले ली।

इस प्रकार से स्वामीजी का व्याख्यान और उनका आत्मचरित्र सुनकर महाराजा ने स्वामीजीकी विषय प्रतिपादन करने की रीति और उनके सभापाण्डित्य का वर्णन करके उनकी बड़ी प्रशंसा की और अपनी प्रसन्नता व्यक्त की।

Acc. No. 801

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पु
पु परिग्रहण क्रमांक
दयानन्द महिला म
4019